JIGYASA

As the name reflects itself Jigyasa is a Research Journal focused on gathering knowledge on the different issues of Arts, Linguistics and Social Sciences. It is a journal which generates appetite for knowledge amongst the social scientists, educationists, linguists, policy makers and the politicians and at the same time it also evolves the solutions. Our international and national experts of the subjects will be regularly guiding the society with their thought provoking papers and articles.

Centuries of human thought have pored over, why is there evil when there's also God. Why does God kill innocent children in an atrocious crime that they haven't had the slightest idea about? Above all, why does God scare us with his wrath.... and many more questions about our thoughts and society.

Our effort is to gather the knowledge from all nooks and corners of the society and at the same time to disseminate the same back to the society for its benefit. Let the knowledge be not the slave of a hard cover bound book or a journal. Let's come out with new ideas and theories to improve our society and the political system. We welcome all of you with this edition of our Journal and thank those who have contributed.

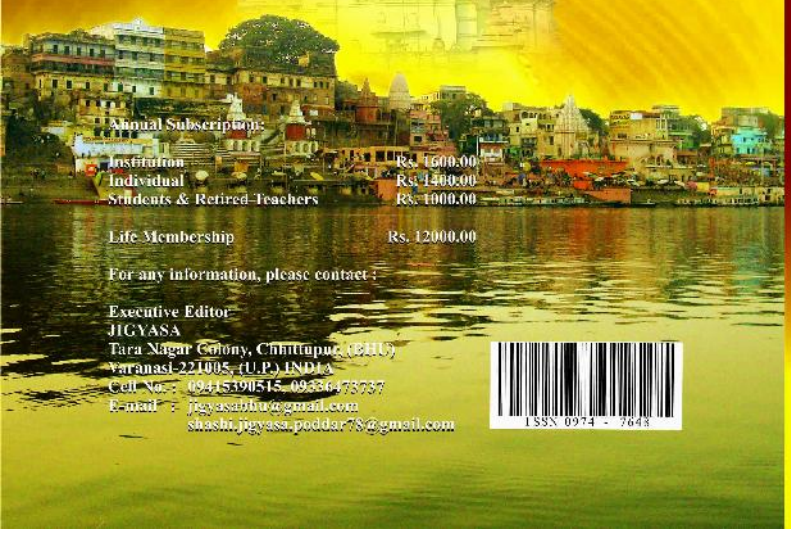

Annual Subscription:

Institution	Rs. 1600.00
Individual	Rs. 1400.00
Students & Retired Teachers	Rs. 1000.00
Life Membership	Rs. 12000.00

For any information, please contact :

Executive Editor
JIGYASA
Tara Nagar Colony, Chhittupur (BHU)
Varanasi-221005, (U.P.) INDIA
Cell No. : 09415190515, 09336473737
E-mail : jigyasabhu@gmail.com
shashi.jigyasa.poddar78@gmail.com

ISSN 0974 - 7648

JIGYASA Vol. 15 No. 1 March, 2022

UGC Approved Journal No - 40957
ISSN 0974 - 7648

JIGYASA

An Interdisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

जिज्ञासा

Chief Editor :
Indukant Dixit

Executive Editor :
Shashi Bhushan Poddar

Editor :
Reeta Yadav

(IIJIF) Impact Factor- 5.172

Regd. No. : 1687-2006-2007 **ISSN 0974 - 7648**

J I G Y A S A

AN INTERDISCIPLINARY PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

Chief Editor : ***Indukant Dixit***

Executive Editor : ***Shashi Bhushan Poddar***

Editor
Reeta Yadav

Volume 15 **March 2022** **No. I**

Published by
PODDAR FOUNDATION
Taranagar Colony
Chhittupur, BHU, Varanasi
www.jigyasabhu.com
E-mail : jigyasabhu@gmail.com
Mob. 9415390515, 0542 2366370

JIGYASA, ISSN 0974-7648, Vol. 15, No. I, March, 2022

Contents

- **हल्बा जनजाति की सामाजिक जीवनशैली** **1-6**
  ज्योति बाला, शोध छात्रा, शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नात., महाविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़
  डॉ. डी. एस. जगत, शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नात., महाविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़
- **मार्कण्डेय के कथा-साहित्य में जीवन-मूल्य** **7-11**
  सुनील हिमांशु बर्थवाल, शोधार्थी, हिंदी विभाग, बी.एन. मंडल वि. वि., मधेपुरा (बिहार)
  प्रो. (डॉ.) शिव कुमार प्रसाद, सेवानिवृत्त प्रोफेसर, हिंदी विभाग, बी.एन. मंडल वि.वि., मधेपुरा
- **गीति काव्यों का विकास** **12-19**
  गणेश शंकर पाण्डेय, सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. पी.जी. कालेज, आजमगढ़।
- **माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन।** **20-24**
  प्रदीप कुमार मिश्र, शिक्षक-शिक्षा संकाय
- **पंचवर्षीय योजना तथा कृषि एवं ग्रामीण विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन** **25-33**
  डॉ. सुनीता कुमारी, सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), अर्थशास्त्र विभाग, जे. एन. कॉलेज नेहरा, दरभंगा
- **जी एस टी (कर) का विश्लेषणात्मक अध्ययन** **34-40**
  डॉ. रमण कुमार ठाकुर, सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), अर्थशास्त्र विभाग, डी. बी. कॉलेज जायनगर, मधुबनी
- **राजनैतिक अपराध का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** **41-46**
  डॉ. अशोक कुमार, एम. ए., पी-एच. डी. (समाजशास्त्र), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
- **संगठित एवं गैर संगठित कामकाजी महिलाओं के शारीरिक स्वास्थ्य पर भोजन संबंधी आदतों का प्रभाव** **47-52**
  सुचिता कुमारी, शोध छात्रा, गृह विज्ञान, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

- **भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में जनता दल की भूमिका** **53-61**
  डॉ. लक्ष्मी कुमारी, शोध निर्देशिका, एसासेसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, जे.डी.वीमेंस कॉलेज, पटना
  नवरत्न कुमार, मकान सं - १७०/७ उत्तरी आनन्दपुरी पश्चिमी बोरिंग कैनाल रोड, पटना

- **बाल श्रमिकों के पृष्ठभूमि (आयाम) का विश्लेषणात्मक अध्ययन** **62-71**
  डॉ. सुनील कुमार सुमन, सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), मनोविज्ञान विभाग, डी. बी. कॉलेज जायनगर, मधुबनी

- **भारत के आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान** **72-78**
  डॉ. रत्न प्रकाश द्विवेदी, सहायक आचार्य-भूगोल, खरडीहा-महाविद्यालय, खरडीहा, गाजीपुर।

- **"पिछड़े मुसलमानों की राजनैतिक स्थिति" (एक समाजशास्त्री अध्ययन)** **79-81**
  जश्न परवेज, ग्राम+पो.-बनतारा, थाना-देवकुंड, जिला-औरंगाबाद

- **भारत में राजनैतिक दलों का सामाजिक संगठन** **82-87**
  अनामिका कुमारी, शोध छात्रा (राजनीति विज्ञान), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

- **महिला श्रमिकों की समस्या एवं समाधान** **88-92**
  प्रियंका कुमारी, अतिथि शिक्षक, अर्थशास्त्र विभाग, रामचरित्र सिंह महाविद्यालय, मंझौल (L.N.M.U.DBG)

- **भारत में महिला सशक्तिकरण : एक ऐतिहासिक अध्ययन** **93-102**
  पंकज सिंह कुशवाहा, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजीपुर

- **किशोरावस्था में बालिकाओं का पोषण और स्वास्थ्य** **103-110**
  पूजा पल्लवी, असि. प्रो. गृह विज्ञान, गया प्रसाद स्मारक राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बारी, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

- **भारत के संविधान में मौलिक अधिकार राज्य के कानून : एक संवैधानिक अध्ययन** **111-120**
  डॉ. सुखवीर सिंह, (विधि विभाग) आगरा कालेज आगरा।

- **भारतीय समाज में जाति की भूमिका** **121-124**
  डॉ. कनिका पाण्डेय, एसोसिएट प्रोफेसर, साहू रामस्वरूप महिला महाविद्यालय, बरेली, उ.प्र.

- **भारतीय कृषि में नवीन नीति** **125-128**
  डॉ. वीरेन्द्र कुमार दुबे, असिस्टेन्ट प्रोफेसर (भूगोल), श्री दुर्गा जी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चण्डेश्वर, आज़मगढ़ (उ.प्र.)
- **मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास में लोक संस्कृति का स्वरूप** **129-135**
  रामप्रकाश पटेल, शोध-छात्र, हिन्दी विभाग
- **भारत में महिला सशक्तिकरण : एक राजनीतिक दृष्टि** **136-144**
  डॉ. ब्रजेन्द्र सिंह, पोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, सल्तनत बहादुर महाविद्यालय, बदलापुर, जौनपुर, उ.प्र.।
  निशा देवी भारती, राजनीति विज्ञान विभाग, सल्तनत बहादुर महाविद्यालय, बदलापुर, जौनपुर, उ.प्र.।
- **भारत के प्रमुख 24×7 टेलिविजन समाचार चैनलों का वस्तुनिष्ठ अध्ययन** **145-151**
  सेवा सिंह बाजवा, Professor, Deptt. of Journalism and Mass communication, CDLU
  विरेन्द्र सिंह, Research Sacholar, Deptt. of Journalism and Mass Communication, CDLU
- **शिवपुरी ज़िले के चित्रित शैलाश्रय एवं उनका अध्ययन** **152-158**
  डॉ. शांतिदेव सिसोदिया, सा. प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर,म.प्र.।
  कु. श्वेता सिंह अहिरवार, शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर,म.प्र.।
- **एतिहासिक दृष्टिकोण से इटावा की शिक्षा, साहित्य, संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन** **159-163**
  डॉ. चन्द्रप्रभा, विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, पंचायत राज राजकीय महिला, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इटावा
- **ललित नारायण मिश्र : एक सच्चे समाजवादी** **164-167**
  वीणा कुमारी, शोध छात्रा, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

हल्बा जनजाति की सामाजिक जीवनशैली

*ज्योति बाला**
*डॉ. डी. एस. जगत***

हल्बा जनजाति का परिचय :

भारत में अनेक जनजातियां निवास करते है। प्रत्येक जनजाति की अपनी अलग विशेषताएं, बोलिया, प्रतीक रीति रिवाज है। सर्वप्रथम हम जनजाति के अर्थ को स्पष्ट करने के प्रयास करेंगे। जनजाति अग्रेंजी के TRIBE से बना है। जिसका अर्थ आदिवासी, आदिजाति या जनजाति होता है। साधारणतया यह माना जाता है। जनजाति की अपनी विशिश्ट भाषा, समाज व्यवस्था, संस्कृति, प्रजाति, पशु कथा, आदि होती है। प्रत्येक जनजाति एक निश्चित क्षेत्र में निवास करती है और उनके जीवन में अधिक एकरूपता पाई जाती है। किसी एक ही पूर्वज की संतान के रूप में जनजाति के सभी सदस्य एक दुसरे से संबंधित मानते है। रातफ लिंटन ने अपनी कृति कल्चरल बैकग्राउण्ड आफ पर्सनालिटी में कहा है कि सरलतम रूप में जनजाति ऐसी टोलियां का एक समूह है जिसका एक सानिध्य वाले भूखण्ड अथवा भूखण्डों पर अधिकारी हो और जिसमें एकता की भावना संस्कृति में गहन समानता बारम्बारता सम्पर्क तथा कतिपय सामूदायिक हितों में समानता से उत्पन्न हुई हो।

हल्बा जनजाति की उत्पत्ति :

हल्बा जनजाति की उत्पत्ति के संबंध में ठोस प्रमाण उपलब्ध नही है किन्तु इस जनजाति में प्रचलित किवदंती के अनुसार ये अपनी उत्पत्ति रूखमनी हरण के प्रसंग से जोड़ते है। हरण के समय बलराम ने सैनिकों को बल और पराक्रम के द्वारा रोक दिया था जिससे प्रभावित होकर सिपाहियों ने उनके अस्त्र हल एवं मूसल को अपना लिया। उन्ही सिपाहियों की संताने कालान्तर में हल से धान कि खेती करने लगे तथा मूसल से बहाना में कुटकर चिवडा बनाने लगे। हल्बा जनजाति की उत्पत्ति के संबंध में ठोस प्रमाण उपलब्ध नही है किन्तु इस जनजाति में प्रचलित किवदंती के अनुसार ये अपनी उत्पत्ति रूखमनी हरण के प्रसंग से जोड़ते है। हरण के समय बलराम ने सैनिकों को बल और पराक्रम के द्वारा रोक दिया था जिससे प्रभावित होकर सिपाहियों ने उनके अस्त्र हल एवं मूसल को अपना लिया। उन्ही सिपाहियों की संताने कालान्तर में हल से धान कि खेती करने लगे तथा मूसल से बहाना में कुटकर चिवडा बनाने लगे। हल एवं बहाना मूसल से संलग्न कार्यो के कारण हल+बा की उत्पत्ति से हल्बा कहलाए। पंडित

---

* शोध छात्रा, शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नात., महाविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़
** शासकीय दूधाधारी बजरंग महिला स्नात., महाविद्यालय रायपुर, छत्तीसगढ़

गंगाधर सामंत, शर्मा एवं ग्रिगर्सन ने हल से कृषि की कला में निपुण होने के कारण हलवाहक शब्द की व्युत्पत्ति से ये हल्बा कहलाए ऐसा मानते है।1

अपने क्षेत्र में हल्बा जनजाति की प्रतिष्ठा बहुत अधिक है, इनके क्षेत्रीय उपभेद क्रमशः बस्तरिहा एवं छत्तीसगढिया या भंडारा हल्बा है। इनके गोत्र दो प्रकार के है पहले प्रकार के गोत्र जैसे– कमलता, औरिया, गोही, मांजुर, एवं भृंगराज आदि टोटम पर आधारित है किन्तु अन्य गोत्र जैसे धाधर, प्रधान, मांकर, सहेरा, कांदेरी, डग्री, बघेल, इत्मिया, और पंवार क्षेत्रीय जातियों के नाम पर है।

ग्रिगर्सन के अनुसार भाषाई साक्ष्य भी यह सुचित करता है कि हल्बा आदिवासी जाति के है जिन्होने हिन्दु धर्म और आर्य बोली को ग्रहण किया है। उनकी बोली उडिया छत्तीसगढी और मराठी का विचित्र मिश्रण है। प्रत्येक भाषा का विकास महानदी क्षेत्र में हुआ है। अधिकांश हल्बा कबीर पंथी हो गए और वे साधारणतः मांस मदिरा से दूर रहते है।

सामाजिक जीवन :

हल्बा जनजाति के घर सामान्यतः कच्चे एवं मिट्टी से निर्मित होते है। जिनके उपर खपरैल या देसी कवेलू लगी होती है। अपने घरो को निर्माण ये स्वयं करते है। खपरैल से बनी छत के उपर बहुधा धान निकालने के बाद बचे अवशेष पैरा का प्रयोग करते है जिससे पानी से घर सुरक्षित रहता है। इनके गांव कई पारों में बंटे होते है। इनके साथ सामान्यतः गोड़, भतरा, मूरिया, माडिया आदि जनजातियों के लोग भी निवास करते है। दुर्ग जिले के हल्बा बाहुल्य ग्रामों मे हल्बा जनजाति के साथ अन्य जातियां भी निवास करते है।

घर की स्वच्छता पर हल्बा जनजाति की महिलाएं काफी ध्यान देती है। महिलाएं अपने हाथ पैर पर गोदना गोदवाती है। गोदने में कई विभिन्न प्रकार की आकृतियां होती है।

इस जनजाति में प्रायः पुरूष धोती, पटका, बंडी, सलूखा पहनते है। नवयुवक कुर्ता, पायजामा व पैंट शर्ट भी पहनते है। महिलाएं साड़ी–ब्लाउज पहनती है। पुरूष सिर पर पागा बांधते है। इनका मुख्य भोजन चावल, कोदो, कुटकी की बासी, मौसमी सब्जी आदि है। मांसाहारी लोग मुर्गा, मछली, बकरा आदि का भी का सेवन करते है।

उत्सव त्यौहारों व विभिन्न संस्कारों के अवसरों पर सल्फी, ताड़ी व महूवें की शराब देवी देवता को चढाकर पुरूष स्त्री बच्चे सभी पीते है।

शिक्षा, संचार एवं शासन द्वारा कई योजनाओं के चलते इनकें रहन–सहन खान–पान वस्त्र विन्यास, आभूषण आदि में काफी बदलाव आया है। जिससे यह जनजाति अन्य जनजातियों से काफी उपर है।2

सामाजिक परिवर्तन –

परिवर्तन काल गति का एक प्रमुख लक्षण है परिवर्तन का नियम है और चुंकि समाज भी उसी प्रकृति का एक अंग है इस कारण सामाजिक

परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है जो कि संस्कृति के अन्दर ही क्रियाशील कुछ शक्तियों का परिणाम होता है एक मानव शरीर को जन्म, विकास, ह्रास, और मृत्यु इन सभी स्तरों से गुजरना पड़ता है क्योंकि यह स्वाभाविक है। यही अध्ययन किये गये हल्बा समाज में दृष्टिगत होता है।

हल्बा जनजाति मुख्यतः दुर्ग जिले के मैदानी भागों में निवास करने वाली जनजाति है। हिन्दुओं एवं अन्य सभ्य जातियों के निरन्तर सम्पर्क में रहने के कारण इनकी सामाजिक स्थिति, शैक्षणिक स्तर, रहन–सहन, खान–पान, वस्त्र विन्यास, साज–श्रृंगार एवं आभूषण आदि में काफी परिवर्तन दृष्टिगोचर हुआ है हल्बा जनजाति में सामाजिक परिवर्तन के अध्ययन को निम्न बिन्दुओ में उल्लेखित किया गया है।

1. हल्बा जनजाति में सामान्य जीवन का प्रभाव
2. हल्बा जनजाति पर हिन्दु जाति का प्रभाव
3. हल्बा जनजाति में शिक्षा का प्रभाव
4. हल्बा जनजाति पर राजनीति का प्रभाव–
5. हल्बा जनजाति पर शहरीकरण का प्रभाव

1 हल्बा जनजाति में सामान्य जीवन का प्रभाव

सामान्य ग्रामीण परिवेश में एक ही गांव में अन्य जातियों के साथ रहने के कारण ग्राम्य जीवन के प्रभाव के साथ–साथ अन्य जातियों के प्रभाव भी हल्बा जनजाति में स्पष्ट रूप से दिखलाई देता है। सामान्यतः छत्तीसगढ़ के गांवों में तेली, लोहार, सोनार, ब्राम्हण जाति तथा अघरिया, गोंड़, बिझवार आदि जनजाति तथा गांडा, अनुसूचित जाति के लोग निवास करते है। इनके बीच रहने से हल्बा जनजाति के खान–पान एवं रहन–सहन पर अन्य जातियों का प्रभाव पडा है। इस जनजाति में कर्मा नित्य, पड़की, होली नृत्य काफी प्रचलित थे लेकिन समय के साथ–साथ ये कभी कभी ही सुनाई पडते है। इसी तरह इस जनजाति द्वारा गायी जाने वाली लोकगीतो में थनकुल, छेरछेरा, गौरा व सुआ गीत भी प्रायः लुप्तप्रायः होते जा रहे है। कृषि पद्धति भी एक सामान्य ग्रामीण कृषक की तरह देखी जा सकती है। ग्राम्य जीवन का यह प्रभाव पिछले कुछ वर्षो में बहुत अधिक पड़ा है। यहां तक की कुछ हल्बा कृषक कृषि कार्यो में ट्रैक्टर का भी प्रयोग करने लगे है इसलिए यह जनजाति अन्य जनजातियों से कुछ उच्च स्थिति में है।

2 हल्बा जनजाति में शिक्षा का प्रभाव

हल्बा स्त्री पुरूषों में शिक्षा का प्रभाव एवं उनके द्वारा उनकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। प्रत्येक हल्बा परिवार कम से कम प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा का महत्व समझ चुका है। माताएं अपने बच्चों को अक्षर ज्ञान कराना अतिआवश्यक समझती है ताकि भविष्य में वे हिसाब किताब एवं पुस्तकों को पढने मे सक्षम हो एवं राष्ट्रीय विकास की धारा से जुड़ सके। सक्षम आर्थिक स्थिति वाले माता पिता बारहवी तक उच्च शिक्षा में भी अपने बच्चों को भेजने का प्रयास करते है

किन्तु लडकियों के शिक्षा के संबंध में उनकी धारणाऐं कुछ भिन्न होती है लडकियां पराया धन होती है। अतः उन्हे गृह कार्य मे दक्ष करना उनकी पहली मानसिकता होती है। 3

3. हल्बा जनजाति पर हिन्दु जाति का प्रभाव

हिन्दुओं के निरंतर संपर्क में रहने के कारण हल्बा जनजाति विशेष प्रभावित दिखाई देती है। अपनें ग्राम्य देव के रूप मे ये दुल्हा देव, करिया घुरवा, माता देवाला, शीतला माता की पूजा करते है साथ ही हिन्दुओं के साथ पोला, होली, नवाखानी, रक्षाबंधन, दीवाली आदि त्यौहारों को मानते है। अपने कुल देव गुंसई, पुसई, कंवर देव, मौली माता आदि के साथ में ये हिन्दु देवी देवताओं की पुजा करते है और अपनें हिन्दुओं का भी भाग मानते है ।

4. हल्बा जनजाति पर राजनीति का प्रभाव

हल्बा समाज पर संगठित किए जाने के प्रयास से इनके जीवन मे राजनीतिक परिवर्तन आया है । स्थानीय राजनीति में पुरूष सक्रिय रूप से भाग लेने लगे है क्योंकि पंचायत राज व्यवस्था ने राजनीति के क्षेत्र में आगे बढने के अवसर प्रदान किए हैं। पंचायत राज व्यवस्था में अनेक पंचायते आदिवासियों के लिए आरक्षित हो गए हैं। इस कारण पंच, सरपंच आदि पदो के लिए चुनाव मे ये सक्रिय रूप से भागीदारी करने लगे है। स्थानीय राजनीति के द्वारा ये प्रदेश एवं युवा वर्ग के शिक्षित होने एवं कुछ युवा उच्च शिक्षा प्राप्त होने के कारण राजनीति को स्पष्ट रूप से समझने लगे है। छत्तीसगढ के हल्बा जनजाति में राजनीतिक जागरूकता के साथ आधुनिक जगत से जुडने की प्रक्रिया प्रारंभ हो गई है । इनका प्रत्यक्ष प्रमाण वर्तमान विधानसभा चुनाव है। इस चुनाव मे आदिवासी मतदाताओ मे राजनीतिक रूझान में जबरदस्त परिवर्तन दिखाई दिए है। शिक्षित वर्ग समाचार पत्रो, दूरदर्शन से राजनीतिक गतिविधियो के बारे में जानकारी रखने लगे है। अनुसुचित जनजाति के लिए आरक्षित सीटों से जहां परंपरागत रूप से लगातार कांग्रेस विधायक बनते आ रहे वहां सें भारतीय जनता पार्टी अथवा अन्य राजनीतिक दलो के प्रतिनिधि चुनकर छत्तीसगढ विधानसभा मे आये। हल्बा जनजाति के साथ अन्य आदिवासी समूह भी अपने जातियों के राजनीतिक सामाजिकरण में जुटे हुए हैं। उनके क्षेत्रीय सम्मेलन प्रादेशिक एवं अखिल भारतीय स्तर पर सम्मेलन होते है। जो उनके राजनीतिक सांस्कृतिक परिवर्तन का सबसे अच्छा उदाहरण है।4

5. हल्बा जनजाति पर शहरीकरण का प्रभाव

हल्बा जनजाति का अधिकांश भाग ग्रामों में निवास करते है। अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पुर्ति हेतू यह शिक्षा, चिकित्सा एवं अन्य कारणो से इन्हे शहर आना पड़ता है अतः हल्बा आदिवासियों पर शहरीकरण का प्रभाव भी स्पष्ट दिखाई देता है। शहरी जीवन के प्रभाव में आकर युवा वर्ग सिनेमा, गणेशोंत्सव, दुर्गा उत्सव, के समय झांकी दर्शन तथा अन्य त्यौहारों मे शहर

आते है इससे अनेक माता पिता पर आर्थिक बोझ पड़ता है। अधिक शिक्षित होने के कारण ये मजदुरी या अन्य छोटे कार्य करने में हिचकिचातें है। शासकीय नौकरी इन्हें आसानी से नहीं मिलती और छोटे छोटे कार्यो को करने में शर्म महसूस करते है। जिससे युवा वर्ग में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। और ये बेरोजगारी इनकी मानसिक अवस्था को प्रभावित करते है। जिससे नशे के आदि होने लगते है।3

हल्बा समाज और नारी

मनुष्य एक समाजिक प्राणी है, बदलते परिवेश में तुलनात्मक दृष्टि से हमारा समाज आज सबसे आगे है आदिकाल से ही नारी को देवी का रूप माना गया है। आज की नारी समाज मे अपने आप को सबसे ज्यादा बदलने की काशिश में लगी हुई है। समाज के रचना विधान में नारी का मां, पुत्री ,पत्नी आदि अनेक रूप है । वह सम परिस्थिती में नारी है विकट परिस्थिती में मां दुर्गा–भवानी है ।

पहले तो समाज की नारी घर परिवार तक ही सीमित रहती थी। घर मे बेटी, ससुराल में बहु बनकर घर की चहारदीवारी में अपनी घूंघट की आड में छिपी रहती थी, लेकिन बदलते परिवेश में अब नारी का स्थान पहले की तुलना में काफी परिवर्तित हुआ है। 5

शिक्षा, नौकरी, खेलकुद, राजनीति सभी क्षेत्रों मे समाज की नारियां आगे बढ़ रही हैं तथा अपनी भूमिका को प्रभावशाली ढंग सफलतापूर्वक निभा रही है। शिक्षा के महत्व को समाज ने स्वीकार किया है। शिक्षा के प्रचार प्रसार से समाज में जागरूकता आई है। मान्यताएं बदली है तथा बेटो के साथ साथ बेटियों को शिक्षित एवं योग्य बनाने की बात अब सभी ने लगभग स्वीकार कर लिया है। अब बेटियों को पराया धन मानकर चूल्हा चौका तक सीमित रखने की मान्यता पुरानी हो गई है। बदलते परिवेश को स्वीकारने में समाज के नारियों की महत्वपूर्ण भूमिका दिखाई देती है। शिक्षा में प्रवीणता प्राप्त कर तथा सेवा क्षेत्रों में उच्च पद प्राप्त कर नारियों ने हल्बा समाज की परम्परावादी सोच को बदलने तथा विकास की धारा को आगे बढाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। विकास की धारा में आगे बढने के लिए उन परम्पराओं रूढ़ियों तथा अंधविश्वासों को त्यागना होगा जो समाज को विकास की ओर बढने से रोकती है। यदि हम ऐसा नहीं करेंगे तो दुनिया आगे बढ़ जायेगी और हमारा समाज पीछे रह जाएगा। इसलिए सामाजिक परिवेश में बदलाव को स्वीकार करने के साथ–साथ पुरानी मान्यताओं में बदलाव भी बहुत जरूरी है। समाज की नारियां इस बात को समझने लगी है तथा घर–परिवार के साथ–साथ समाज को दिशा देने एवं सामाजिक विकास को आगे बढाने के लिए संघर्षरत है।

हल्बा समाज की नारियां अब इस बात को समझने लगी है कि समाज के भीतर अभी बहुत सी रूढ़िया अंधविश्वास मौजुद हैं जो समाज को आगे बढ़ने से रोकती है जैसे नशापान जादु टोना अंधविश्वास समाजिक

नियमों में भी कुछ प्रावधान अप्रासंगिक तथा पुरातनवादी प्रतीत होने लगे है। समाज के भीतर महिलाओं में इस दिशा में भी काफी जगरूकता देखने को भी मिल रही है अक्सर महिला मण्डलों में इन विषयों पर चर्चा होती है जब तक इस तरह की समाजिक बुराइयों पर प्रतिबंध लगाया जाएगा तब तक समाज को प्रगति की दिशा में आगे नही बढ़ाया जा सकता है। प्रशासन इस तरह की बुराइयों को नही रोक सकता है। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसी बुराईयों पर समाज में चर्चा हो और उसे दुर करने के उपाय किया जाए नियामावली में ऐसे प्रावधान जोड़ने के लिए समाज की नारियों की राय ली जावे यदि हमारा समाज बदलते परिवेश के अनुरूप अपने आपको नही ढाल सकता तो हमारे समाज का पिछड़ जाने का भय बना रहेगा। परिस्थितियों के बदलाव को समझना तथा उसके अनुरूप अपनें आपको ढालना आज की आवश्यकता है। अतः बदलते परिवेश के अनुसार समाज को नई उचाईयों तक पहुॅचाने के लिए नियमों एवं मान्यताओं में बदलाव लाना भी जरूरी है।

जहां हल्बा समाज की नारियां शिक्षा की धारा से जुड़ कर सफलता की नित नई सीढ़ियां चढ रही है वही समाज में आज भी नारियों का एक बहुत बड़ा ऐसा वर्ग मौजुद है पढ़ी लिखी होने के बाद भी समाज के निर्माण में सक्रिय भुमिका नही निभा पा रही है। यह वर्ग उन नारियों का है जो समझदार तो हो गई है लेकिन घर के भीतर अपने में ही मस्त है। घर में सुख सुविधा है जीवन सुख से कट रहा है तो वे समझती है कि समाज से हमारा क्या लेना–देना। यह अच्छी परिस्थिति नही है समाज के भीतर आप दुसरों के लिए प्रेरणा बन सकती है आपके आने से समाजीक संगठन मजबुत होगा, आपके जुड़ने से समाजिक कार्यक्रमों में सक्रियता आयेगी।

आज आवश्यकता इस बात की भी है कि पुरूष वर्ग इस बात को स्वीकार करें नारी के सहयोग को मान्यता दें प्रेरित करें तथा स्वंय भी सहयोग करें। समाज न अकेले पुरूष से आगे बढ़ सकता है और न ही अकेले नारी से समाजिक व्यवस्था के संचालन तथा प्रगति के लिए दोनों के बीच समन्वय की आवश्यता है नारी का स्वावलंबी होना पुरूष अहं का विषय नही बनना चाहिए बल्कि इसे आज की आवश्यता तथा समाजिक प्रगति के रूप में देखा जाना चाहिए यदि हम समाज के भीतर गाड़ी के दो पहिए के रूप में नारी एवं पुरूष को रख सकें तो समाज में प्रगति को संबल मिलेगा।

संदर्भ ग्रंथ :

1. कमलदेवी चटोपाध्याय – ट्रायब्लिज्म इन इंडिया
2. दामिनी चौधरी – ट्राइब गर्लस्
3. याम चरण दुबे – सांस्कृतिक मानव विकास परिचायक
4. विजय कर उपाध्याय – भारत में जनजातिय संस्कृति
5. ए. आर. एन. श्रीवास्तव – जनजातिय भारत
6. प्रदीप श्रीवास्तव एवं भवानी मुखर्जी–भारत का जनजातिय जीवन
7. दूर्ग गजेटियर

***

मार्कण्डेय के कथा-साहित्य में जीवन-मूल्य

*सुनील हिमांशु बर्थवाल**
*प्रो. (डॉ.) शिव कुमार प्रसाद***

सारांश

मार्कण्डेय गढ़े हुए कथानक के दौर में अनगढ़ स्थितिओं के साधक कहानीकार हैं। उनके कथा–साहित्य में यथार्थ बहुवचनात्मक है, इसलिए उनकी कहानियां आज अपने समय की बेहतर साक्ष्य के रूप में विद्यमान है। मार्कण्डेय का व्यक्तित्व एवं कृतित्व को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक सच्चे मन के ग्राम–कथाकार थे, जिन्होंने ग्रामीण वातावरण को अपने कृतियों में संजो दिया है। प्रेमचन्द के बाद विघटित होती ग्रामीण व्यवस्था और शहर की ओर प्रस्थान करते ग्रामीणों की दशा और दिशा को बहुत ही करीब से महसूस करते हुए समाज के बीच प्रस्तुत किया है। उनके व्यक्तित्व में चेतनशीलता, भावुकता, आत्मीयता, सजगता, सतर्कता, कल्पनाशिलता, तटस्थता, एकाग्रता, राजनीतिज्ञता, नियोजनबद्धता के साथ तन्मयता के गुण मिलते हैं।

मुख्य शब्द :–कथानक, अनगढ़, साधक, यथार्थ, बहुवचनात्मक, कृतियां, चेतनशीलता।

परिचय :

मार्कण्डेय का जन्म उत्तर प्रदेश के पीछड़े गाँव बराई में एक समृद्ध तथा संपन्न किसान परिवार में हुआ था। उनका बचपन का जीवन वहीं पर भाई–बहन के साथ बीता। वे गांव में ही प्रारंभिक शिक्षा, प्रतापगढ़ में प्रताप बहादुर कॉलेज से इण्टरमीडिएट की शिक्षा तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक के साथ अन्य उच्च शिक्षा ग्रहण की। उनके घुमक्कड़ प्रवृत्ति ने उन्हें एक स्थान पर बैठने नहीं दिया। वे बराई से प्रतापगढ़ चले गये, प्रतापगढ़ से प्रयाग तो प्रयाग से इलाहाबाद और अंततः वे सदा के लिए संसार भ्रमण पर निकल गये।

मार्कण्डेय ने अपने साहित्य में स्वाधीनता कालीन ग्राम–जीवन में आये हुए परिवर्तनों को वास्तविक रूप में अंकित किया है। उनके साहित्य लेखन तथा कथा साहित्य का केन्द्रबिंदु गांव ही रहा है। इसी कारण उनकी रचनाओं में ग्रामीण जीवन के किसान एवं मजदूर, दलित और भूमिहीन आदि के शोषण की कथा एवं व्यथा उनके कथा–साहित्य के हर पन्ने पर पिरोई हुई है। हालांकि उनकी कहानियां ग्रामीण जीवन की भुक्तभोगी अनुभूतियों की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। उनके पहली कहानी संग्रह

---

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, बी.एन. मंडल वि.वि., मधेपुरा (बिहार)
** सेवानिवृत्त प्रोफेसर, हिंदी विभाग, बी.एन. मंडल वि.वि., मधेपुरा

'पान–फूल' में आत्मीयता और कोमलता, 'महुए का पेड़' में तीव्र आक्रोश, 'हंसा जाई अकेला' में गांव के जीवन का नया धरातल छूने का प्रयास, 'भूदान' में नये संदर्भों और नयी वास्तविकता का अंकन, 'माही' में एकांतिक मैथुन का परिचायक, 'सहज और शुभ' में आर्थिक विपन्नता, अंधश्रद्धा विरोध एवं 'बीच के लोग' जैसी कहानी में बिचौलियों की प्रवृत्ति और चेतनशीलता की झलक परिलक्षित होती है। उनका उपन्यास–साहित्य अनेक विशेषताओं, समस्याओं तथा विषमताओं के उजागर करता है। 'सेम का फूल' एक विस्तृत प्रेम कहानी है तो 'अग्निबीज', स्वातंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण पूंजीवादी व्यवस्था के बीच बदलती सामाजिक स्थिति, जमीनदारी उन्मूलन, शोषक वर्ग की राजनैतिक सत्ता आदि को रेखांकित करता है। इनके एकांकी का 'पत्थर और परछायाँ' केन्द्र बिन्दु भी गांव ही रहा है। हर एक एकांकी नई समस्या लेकर आती है। जैसे 'पत्थर और परछाइयाँ' में परम्परागत पिता की मनोवृत्ति, 'चिड़ियाखाना' में अनैतिक समस्या और अर्थ–समस्या तथा 'मैं हारूँगा नहीं' में आर्थिक संकट ग्रस्त लेखक के परिवार की व्यथा आदि समस्याएं मिलती हैं। इसी कड़ी में 'कहानी की बात' जोकि समीक्षात्मक ग्रंथ है इसके पहले 'माया' पत्रिका में कई हिस्सों में प्रकाशित हो चुकी है। मार्कण्डेय के कथा–साहित्य में जीवन मूल्य अनुभूति की ही उपज है।

मार्कण्डेय की कहानियों में ग्रामीण समाज में स्थिति स्वतंत्रता कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक अंगों का सशक्त, सजीव वास्तविक एवं विश्वसनीय चित्रण मिलता है। इनमें सामाजिक जीवन में मानवीय संबंध, पारिवारिक संबंधों में पति–पत्नी का संबंध, माता–पिता और संतान के साथ–साथ भाई –बहन के संबंधों की श्रृंखला दिखाई पड़ती है। हालांकि आधुनिकता, अहम् भावना एवं वैयक्तिकता के कारण इन संबंधों में कहीं–कहीं अलगाव और टूटन भी दिखाई देती है। व्यक्तिवादीता, आत्मकेन्द्रिता स्वार्थांधता, पाश्चात्य सभ्यता तथा पारस्परिक कलह के कारण मार्कण्डेय की कहानियों में संयुक्त परिवार टूटते हुए नजर आते हैं। स्वाधीनता कालीन नैतिक मूल्यों में आये परिवर्तन को भी उन्होंने अपनी कहानियों के जरिए यथार्थ शैली में स्पष्ट किया है। यौन संबंधों को बड़े सफल ढंग से चित्रित किया है। रूढ़ि, परम्परा के दायरे में बंदिस्त नारी की वेदनाओं को अभिव्यक्ति करते हुए पुरुष की छद्म प्रवृत्ति को भी उन्होंने कड़ा विरोध किया है। वे राजनीति के ज्ञाता भी थे। इसी कारण से उन्होंने अपने कटु अनुभवों के कहानी के जरिए स्पष्ट किया है। चुनाव में आ रही अनैतिकता, जातीयता, गुटबंदी, पार्टी तथा कुटनीति का पर्दाफाश किया है। पंचायत में आयी सत्ताबाजी को भी अपनी कहानियों में चित्रित किया है। पुलिस में आयी खोखली प्रवृत्ति पर भी वे अपनी कहानियों के माध्यम से जोरदार तमाचा लगाया है। इसके साथ जात आधारित केन्द्रित राजनीति को भी उन्होंने बड़ी सजीवता से स्पष्ट किया है।

मार्कण्डेय ने प्रगतिशील विचारधारा का उद्देश्य केवल स्वाधीनता कालीन किसान एवं मजदूरों के शोषण का चित्रण करना हीं नहीं, बल्कि किये जाने वाले शोषण के प्रति किसान–मजदूर को सचेत करना है। उन्होंने अपनी कहानियों में संपत्ति को संपत्ति न मानकर श्रम को ही संपत्ति मानने के पक्ष में थे। उनका उद्देश्य था कि जब तक श्रम को संपत्ति नहीं मानेंगे तब तक समाज में समानता की कल्पना करना बेइमानी है। उनकी अधिकतर कहानियों में भूमिधर किसान भूमिहीन होते हैं और ठाकुर, जमीनदार तथा महान भूपति बनते हुए नजर आते हैं। यह बात उद्‌घाटित करने के पीछे लेखक का एक ही मक्सद है कि 'भूमि उसी की होनी चाहिए जो भूमि जोतेगा'। मार्कण्डेय कुछ कहानियों द्वारा यह बताना चाहते थे कि ग्रामीण जीवन की अनेक योजनाओं द्वारा सामूहिक विकास होने के बजाए ग्राम में चंद व्यक्ति का व्यक्ति विकास होता है। इसी व्यक्ति विकास का वे अपनी कहानियों द्वारा खंडन करते थे। साथ ही शिक्षा–व्यवस्था में भ्रष्टाचार और आर्थिक विपन्नता में जिता ग्राम शिक्षित युवक की दुःख एवं उनके गाथा को यथार्थ ढंग से अभिव्यक्त किया है। 'दाना–भूसा' एवं 'प्रलय और मनुष्य' में क्रमशः अकाल की स्थिति में किसान किस तरह मानवीय मूल्य बनाये रखता है और बाढ़ पीड़ित स्थिति में भी महाजनी सभ्यता के लोग मानवी मूल्यों को नष्ट करते हुए अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं इसे बड़े कलात्मक ढंग से बताया गया है।

वे एक जागरूक कहानीकार थे उन्होंने अपनी कहानियों में देवी–देवताओं के प्रति ग्रामीण लोगों की अंध धारणा को भी स्पष्ट किया है। कुछ कहानियों से तो स्पष्ट होता है कि घर में यदि किसी को बुखार आता है तो उसे अस्पताल ले जाने के बजाए देवी–देवताओं को मनौती चढ़ाने की बात कहीं जाती है। अज्ञान और निरक्षर होने के कारण अधिकतर पात्रों में अंधश्रद्धा और अंधविश्वास स्पष्ट रूप से झलकता है। ग्राम में धर्मांधता होने की वजह से गांव में ढोंगी–पुरोहित किस तरह ग्रामीण लोगों का शोषण करते हैं, उसका भी उन्होंने पर्दाफाश किया है। गांव का नजदीकी संबंध होने के कारण मार्कण्डेय की कहानियों में ग्रामीण संस्कृति का सजीव चित्रण मिलता है। उनकी कहानियों में वाद्‌य, विदाई–समारोह, लोकगीत, लोककथा, रामलीला, क्रीड़ा एवं त्यौहार के जरिए ग्रामीण संस्कृति का दस्तावेज पेश किया है।

मार्कण्डेय की कहानियों में किसान–मजूदर के शोषण की समस्या का चित्रण वास्तविक रूप से हुआ है। उनका उद्देश्य शोषण एवं शोषण के विरूद्ध जागरूक कर संघर्ष के लिए तैयार करना है। ठाकुर, जमीनदार, पटवारी, ठेकेदार, अधिकारी वर्ग विकास योजनाएं आदि के द्वारा होने वाले शोषण का सजीव चित्रण उनकी कहानियों में पर्याप्त मात्रा में मिलता है। उनकी कहानियों में अनाज की समस्या भी दिखाई देती है। यह समस्या मूलतः ठाकुर एवं महानों के गोदाम भर कर रखने की प्रवृत्ति से निर्माण होती

है। इसलिए बाढ़, अकाल के साथ ठाकुर, महान भी इस समस्या के मुख्य जिम्मेदार हैं। इस बात को उन्होंने 'धुन; कहानी में अभिव्यक्त किया है। उनका मानना है कि गाँव वैद्यकीय सुविधा से अछूत हैं। वैद्यकीय सुविधा का अभाव और वैज्ञानिक दृष्टि न होने के कारण गाँव के लोग अंधश्रद्धा से ही ग्रस्त दिखाई देते हैं। यही कारण है कि उनकी कहानियों में पात्र ढोंगी और साधु और देवी–देवताओं को मनौती आदि की ओर अधिक आकर्षित होती दिखाई देती है। विवेच्य कहानियों में दहेज लेने के मूल में धन तो प्रमुख है किन्तु उससे भी साथ प्रतिष्ठा और गिरी हुई मानसिकता की बात झलकती है। इस समस्या का विरोध करने वाला केव एक ही पात्र है वह है बुचऊ। उसके जरिए उन्होंने इस समस्या के समाधान की भी बात करते हैं। उनका कहना है कि इस समस्या के समाधान के लिए सबसे पहले शिक्षित, पढ़े–लिखे युवक को आगे आना चाहिए। उन युवकों को अपनी शादी के समय दहेज का कड़ा विरोध करना चाहिए। अनमेल विवाह का चित्रण कुछ ही कहानियों में मिलता है लेकिन वह बड़ा यथार्थ और मार्मिक है। आधुनिक विचारधारा का होने के कारण वे बाल–विवाह प्रथा से केवल पाठक को परिचित हीं नहीं करना चाहते थे बलिक उसे गाँव की स्थिति के प्रति भी सचेत करना चाहते थे।

मार्कण्डेय साम्यवादी विचारधारा से प्रेरित होने के कारण विवेच्य कहानियों में उन्होंने नौकरानी नारी की समस्या का बड़ा ही सजीव चित्रण किया है। इस समस्या का समाधान भी 'वासवी की माँ' में बताया गया है। उनका विचार था कि कि परिवार के हर सदस्य को नौकरानी के साथ एक परिवार के सदस्य की भांति व्यवहार करना चाहिए। बालकामगार की चित्रण में कहानीकार के बाल–मनोविज्ञान के ज्ञान का परिचय होता है। जातिवाद की समस्या का चित्रण भी बड़ी मार्मिकता से किया है। वे स्वयं क्षत्रिय होते हुए भी अस्पृश्यता की समस्या का इतना जीवंत चित्रण पेश किया है कि लगता है उसने भोगे हुए यथार्थ को ही व्याख्याचित किया है। भूमि–समस्या के जरिए स्वाधीन कालीन 'जमीनदार उन्मूलन' की ढोंगी प्रवृत्ति पर करारा व्यंग्य किया है। जमीनदारी उन्मूलन का लाभ केवल कागज पर ही है न कि वास्तविक जीवन में। लेखक ने भूमि–समस्या के समाधान को भी स्पष्ट किया है कि 'भूमि उसकी होनी चाहिए जो जातेगा।'

स्पष्ट है कि उनकी कहानियों में चित्रित ग्रामीण समाज–जीवन में धार्मिक एवं राजनीतिक चेतना भी परिलक्षित होती है। शिक्षा के प्रभाव स्वरूप ग्रामीण समाज की नई पीढ़ी रूढ़ि परंपराओं के प्रति विद्रोह करती हुई दृष्टिगोचर होती है। इस तरह मार्कण्डेय ने अपनी कहानियों में ग्रामीण–जीवन की विविध समस्याओं का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया है।

संदर्भ :

1. साहित्य दृष्टि–आचार्य विनोबा, सुमन जैन, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 2006
2. हंसा जाई अकेला– प्रशुराम हिन्दी संस्थान, दिल्ली, 1 जनवरी, 2012
3. हंसा जाई अकेला– रूपसागर हंसा पेपर बैक, रिगी प्रकाशन, 1 मार्च, 2017
4. मार्कण्डेय– पान–फूल, कहानी संग्रह
5. मार्कण्डेय– महुए का पेड़, लहर प्रकाशन, इलाहाबाद
6. पान–फूल कहानी संग्रह

***

गीति काव्यों का विकास

गणेश शंकर पाण्डेय *

मानव हृदय भावनायुक्त होता है। भावना का जीवन से अटूट सम्बन्ध है। मानव जीवन के अन्तर्गत राग–वैराग–द्वेष–प्रेष–धर्म–सहिष्णुता है। प्रगाढ़ रूप में अनुभूत भावना ही काव्य रूप में परिणत हो जाती है। भावना परिस्फुटित काव्य मावन जीवन का स्वरूप प्राप्त करना है। भावना से पूरित हृदय की तरंगित ध्वनियां गुन्जरित गीतों के रूप में अभिव्यक्त होती है, जिसमें यौवन की अल्हड़ता, श्रृंगार के संयोग एवं वियोग पक्ष के मनोरम रूप बाल सुलभ चपलता, सांसारिक असारता तथा भक्ति की प्रधानता के साथ ही बाल वृद्ध मनःस्थितियों एवं विशिष्ट क्षणों के अन्तर्गत जागृत भाव विशेष समाविष्ट होते हैं। इनमें काव्यत्व के साथ–साथ संगीतात्मकता की प्रधानता विद्यमान रहती है। ऐसे पदबन्धों का गान सवाद्य किया जा सकता है। सत्यं शिवं सुन्दरम् की सुकोमल एवं मुधरिमा मण्डित अभिव्यक्ति इन्हीं गीति काव्य का पृथक काव्यांग के रूप में विवेचन नहीं हुआ है। तथापि गीति काव्य के आदि बीजतत्व अथवा उद्‌गम ऋचाओं में ही दृष्टिगत होते हैं। ऋग्वेद की अनेकशः ऐसी ऋचाओं की उपलब्धि होती है, जिनमें गीति काव्य की पूर्ण रम्यता विद्यमान रहती है। ऋग्वेद के अन्तर्गत विविध साहित्यिक विधाओं की परम्पराओं के मूल बीज निहित है। इसके अनेकशः मन्त्रों में आत्मानुभूति विषयक तत्व अनुस्यूत है। चाहे उसस् सूक्तों को आधार बनाकर गीति काव्य का अन्वेषण किया जाय अथवा विष्णु, सवित, इन्द्र, वरुण, अदिति आदि सूक्तों के अन्तर्गत विहित गीति तत्वों की मौलिकता देखी जाय। इन सभी सूक्तों में देवगुणों की भाव विह्वलता के साथ कृत निरूपण–गीतिमयता से परिविहित है। यम–यमी एवं पुरुरवा–उर्वशी जैसे संवाद सूक्तों में जहां एक और नटकीय मूलतत्वों की उपलब्धि होती हो वहीं दूसरी ओर इन्हीं में निहित श्रृंगारिक भावनाओं से गीति काव्य के मूल तत्वों का भी निदर्शन होता है। सन्देह काव्य के भी बीज वचन ऋचाओं में प्रकृष्ट रूप में किये गये हैं। जिसका उत्कृष्ट उदाहरण सरमा नामक कुतिया के सन्देश का प्रसंग निरूपित है। अक्ष सूक्त भी गीति काव्यों का बीजांकुरण रूप है, जिसमें जीवन के कटु अनुभव भेद हैं। अक्ष की विनाशशीलता का निरूपण है। अक्षवारण मानव कल्याण हेतु है। अल्पतम सम्पत्ति एवं अपनी पत्नी में सन्तुष्टि प्राप्त करने का उत्तम सन्देश है।

अक्षै मां दीप्यः कृषिभित्कृषष्व .....[1]।

इस प्रकार अक्षसूक्त करुण काव्य श्रृंखला की प्रथम कड़ी है। उषस् सूक्तों में ऋषि की कोमलकान्त पदावली में अनुस्यूत सुमनोरम भावाभिव्यक्ति

---

* सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. पी.जी. कालेज, आजमगढ़।

गीति तत्व के आदिरूप है, जिससे मानव मन की प्रकृति के अलौकिक दर्शन होते हैं। बीति–विभावरी बेला में उषा अपने अंक में सूर्य देव को उपस्थित करती हुई चित्रित है। उषा जहां सूर्य की जननी रूप है वहीं यत्र–तत्र सूर्य की प्रियतमा के रूप में भी प्रस्तुत की गयी है।[2] इन सूक्तों का दर्शन भावात्मकता से परिपूरित है। उनके रागात्मक भाव गीति काव्य के प्राण तत्व हैं। चन्द्ररथा उषस् से सम्बन्धित प्रत्येक सूक्त गीति काव्य के आदि बीज तत्व हैं, जिसमें पूर्णभाव स्वातंत्र्य, मार्मिक अनुभूति, तरूणी लावण्य तथा नैसर्गिक सुषमा एवं संगीतात्मकता विद्यमान है। भावसान्द्रता के उदाहरण रूप में द्रष्टव्य है–

उषोदेव्यमर्त्या विभाहि, चन्द्ररथा सूनृता ईरयन्ती।
आत्वावहन्तु सुममासों अश्वा हिरण्यवर्णा पृथुपाजसाये।।[3]

यम–यमी संवाद सूक्त में मानव हृदय की रागात्मक प्रवृत्ति का निरूपण नैतिकदायित्वों के पूर्ण निर्वाह के साथ किया गया है, जिसमें यम–यमी दोनों सहोदर होते हुए एकान्त में जिस पर संवाद करते हैं, उनमें जहां यमी द्वारा कामान्धता का प्रदर्शन नैतिकता को दूर रखकर किया गया है, वहीं नैतिकता के आदर्श का पूर्ण निर्वाह करते हुए यम द्वारा भाई बहन के सम्बन्ध को दृढ़ता एवं पवित्रता प्रदान किया गया है। जबकि यमी का सीमा पार होकर यौन सम्बन्ध हेतु प्रजापति तक को उदाहरण में प्रस्तुत कर दिया जाता है। पुरुष के पौरुष को दुत्कारा जाता है। तथापि यम भारतीय धर्म की रक्षा में प्रखर रूप से प्रदर्शित है। यमी का क्रोधित मन जब यह कहता है कि–

किं भ्रातासद्यऽनाथं भवति, किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात्।
कामभूता वह्ने तद्रापामि, तन्वा में तन्वं सं पिपृग्धि।।[4]

अर्थात् वह कैसा भ्राता है जिसके रहते भगिनी अनाथ हो जाय, और भगिनी ही क्या जिसके रहते भ्राता का दुख दूर न हो? मैं काम मूर्छिता होकर नाना प्रकार से बोल रही हूँ। यह विचार करके भली–भाँति मेरा संभोग करो। इससे एक ऐसे नारी का प्रणय निवेदन व्यक्ति होता है जो काम के उद्दाम प्रवाह में प्रवाहित होती उस नदी के रूप में है, जो अपनी मर्यादा को भी आप्लावित कर लेना चाहती है। साथ ही संयमित यम को अपने कातर स्वर में बांधती हुई कहती है कि–

वतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयं चाविदाम्।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।।[5]

अर्थात् हाय यम! तुम दुर्बल हो, तुम्हारे मन और हृदय को मैं कुछ नहीं समझ सकती। जैसे रस्सी घोड़े को बाँधती है तथा लता जैसे वृक्ष का आलिंगन करती है। वैसे ही अन्य स्त्री तुम्हें अनायास ही आलिंगन करती है परन्तु तुम मुझे नहीं चाहते। किन्तु अडिग मन वाला यम भाई बहन के पवित्र सम्बन्धों का निर्वहन करता हुआ यमी को अन्य पुरुष के वरण हेतु उपदिष्ट

करता है, जो सर्वथा उचित ही है। यद्यपि इन ऋचाओं से रसाभास होता है। क्योंकि बहन हृदय में भाई के प्रति दाम्पत्य रति अनौचित्य, रस–पथ में बाधक है। तथापि इनमें रति का अस्तित्व स्वीकरणीय है। इन मन्त्रों में प्रस्तुत अनुभूति की स्वाभाविकता, भाषा सारल्य एवं सरसता गीति काव्य की थाती कही जा सकती है।

इसी प्रकार सूर्यासूक्त भी गीति काव्य की मौलिकता से मण्डित है, जिसमें दाम्पत्य रति का संभोग पक्ष प्रस्तुत किया गया है। सूर्या–सोम परिणय प्रसंग का चित्रण जिस रूप में किया गया है। वह रागात्मक अनुभवों की अभिव्यक्ति है। साथ ही श्रृंगार का वर्णन उस ऋचा में अपनी सीमा से पार होता हुआ भी दृष्टिगत होता है, जिसमें सुरत का चित्रण नग्नता के साथ प्रस्तुत है। ध्यातव्य है कि गीति काव्य का विकास इन्हीं भावाभिव्यंजनाओं के साथ होता है।

उपरिलिखित तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि सर्वप्रथम ऋग्वेद के अन्तर्गत ही गीति काव्य के बीज तत्व उपलब्ध होते हैं। इस समय रागात्मक लोक साहित्य की सर्जना प्रमाणित होती है। जैसा कि डा0 एस0एन0 दास गुप्त का कथन है कि ऋग्वेद एक मात्र प्रकृति चित्रण एवं स्तुतियों से ही नहीं आपूरित है अपितु इसमें मानव मन के विकारों की भी अभिव्यंजना प्रस्तुत करने वाली ऋचायें भी समाहित हैं। प्रकृति विषयक रति के अतिरिक्त, दाम्पत्य रति एवं यौन भावना की अदम्य स्थिति के सूचक सूक्त भी संकलित हैं।

ऋग्वेद के अनन्तर यजुषों एवं साम मन्त्रों के अतिरिक्त अथर्वसाहित्य भी गीतिकाव्य की विकास परम्परा को प्रस्तुत करता है। सम्पूर्ण वैदिक कविता प्रकृति के सौन्दर्य की विविधता से ओत–प्रोत है, जिसमें सामूहिक अथवा वैयक्तिक हर्ष एवं विषादादि की सम्पादन बेला में गेय मन्त्रों का स्वरूप गीति काव्यपरक रहा है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में 'समग्र वैदिक संहितायें देवताओं की विशिष्ट स्तुतियों से मण्डित हैं। गीतियों का उदयस्थान तो स्वयं वेद ही है।

पूर्वलिखित विवेचनाओं से यह प्रमाणित होता है कि गीति काव्य के मूल बीज वैदिक संहिताओं में ही उपलब्ध होते हैं। ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद साहित्य कर्मकाण्ड एवं ज्ञान काण्डपरक् होने के कारण भाव प्रधानता से यद्यपि विमुख हैं। तथापि इनमें वर्णित विषय मानव को अन्तर्मुखी होने के लिये बाध्य करता है, जो गीति काव्य में अन्तः प्रधान गुण के विकास का ज्ञापक है।

वैदिक साहित्य के अनन्तर लौकिक संस्कृत साहित्य गीति काव्य का अक्षय भण्डार उपस्थित करता है, जिसका शुभारम्भ आदि कवि बाल्मीकि से होता है। रामायण का आदि काव्यत्व स्वतः प्रसिद्ध है। महर्षि बाल्मीकि का उद्‌गम शोक ही, श्लोकत्व को प्राप्त कर काव्य सरिता की अजलधारा प्रवाहित करता है। जैसे–

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काम मोहितम्।।[6]

महर्षि बाल्मीकि विरचित काव्य में प्रगाढ़ अनुभूतिमय श्लोकों अथवा उक्तियों की न्यूनता नहीं है। इसके बहुशः प्रसंग रसपेशल, आकर्षक एवं गेय हैं, जो गीति काव्य के विकास परम्परा में प्रधान रुपेण सहायक हैं। ऐसी जनश्रुति रही है कि वेदों के अनन्तर महर्षि बाल्मीकि द्वारा ही सर्वप्रथम छन्दों की रचना की गयी और बाल्मीकि रामायण के पश्चात ही संगीत में कई नवीन लक्षण निर्धारित किये गये तथा राग–रागनियों को भी उत्पन्न किया गया। बाल्मीकि के अनेक संदेशधारकों में भी गीति काव्य की पुष्टि होती है। रामायण सन्देश प्रेषण से आपूरित है। यथा– राजा जनक का सन्देश महाराजा दशरथ के पास, सुग्रीव का सन्देश राम के पास, राम का सन्देश सीता के पास तथा सीता का सन्देश प्रमुख हैं। गीति काव्य में मानव मन के विह्वल मन से उद्भूत अपने प्रियजनों को सन्देश प्रेषित किया जाना एक पथ का सोपान सिद्ध होता है।

रामायण उत्तरवर्ती लौकिक संस्कृत साहित्य का महाकाव्य महाभारत भी गीति काव्यों की परंपरा का निर्वाहक रहा है। यद्यपि एक ओर यह इतिहास ग्रन्थ होते हुए धर्म–अर्थ–काम एवं मोक्ष रूप पुरुषार्थ चतुष्ट्य का प्रतिपादन करता है, तो दूसरी ओर उसकी घोषणा रही है कि "यदि हास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वाचित्" जो समस्त सांसारिक वर्ण्य विषय के उपस्थापन की चुनौती है। इससे ही सिद्ध किया जा सकता है कि महाभारत में गीति काव्य की परंपरा का अवश्येव अग्रेषण प्राप्त है। इनमें भावात्मक गेयता के विविध प्रसंग चित्रित हैं। यथा द्रोपदी स्वयंवर के अनन्तर महाराज द्रुपद के अर्न्तद्वन्द का चित्रण। इसी प्रकार संदेश हारकों में कौरवों तथा पाण्डवों के श्रीकृष्ण और नल दमयन्ती का संदेश हारक हंस अद्वितीय है। स्पष्ट है कि महाभारत गीति के तत्वों से मण्डित है। तदन्तर संस्कृत गीति काव्यों के प्रांजल काव्य प्रणेता महाकवि कालिदास का स्थान है। यद्यपि बौद्धों की गाथायें भावात्मकता से अभिपूरित हैं। उनमें गीति तत्वों की अतिशयता के दर्शन होते हैं। शान्त रस धारा में प्रवाहित यह गीति काव्य का ही रूप है। इसीलिए पाश्चायत्य विद्वान विण्टर नित्ज ने इन्हें ऋग्वेद तथा कालिदास के मध्यवर्ती सर्वोत्कृष्ट गीति काव्य के रूप में प्रतिष्ठा प्रदान की है।[7]

वस्तुतः बौद्ध काल में व्यक्तिगत सचेतना के विकास के कारण तत्कालीन साहित्य भी व्यक्तिगत हर्ष–विषाद एवं आशा–निराशा की विशिष्टता से भरा हुआ है। बौद्ध ग्रन्थ की गाथाओं में जीवन की असारता, नश्वरता एवं क्षणभंगुरता के चित्रण के साथ ही वैराग्य सम्पन्न भिक्षु–भिक्षुणियों के अनुराग एवं उत्साह की भी अभिव्यक्ति दी गयी है। इनको प्रकृति सौन्दर्य से मण्डित किया गया है। करुण रस की अभिव्यंजना गाथामय है, जो गीतात्मक ही है। रूपक साहित्य के बहुशः स्थल गीतिपरक्

सरल मुक्तकों से अलंकृत है। प्रबन्ध काव्यों की भी गीतिमय चारूता से मण्डित किया गया है। किन्तु महाकवि कालिदास का मेघदूत गीति काव्यों की विकास परम्परा में उत्तम एवं सुव्यवस्थित गीति काव्य है। मेघदूत से लेकर अद्यावधि गीति काव्य की सृजनशीलता अविछिन्न रूप में दृष्टिगत होती है। इस सुदीर्घ विकास परम्परा का प्रवाह्मान रूप मेघदूत, घटकर्पर काव्य, भर्तृहरि के शतक, चौर पंचाशिका, गाथा सप्तशयी, पवनदूत, आर्यासप्तशती, सूर्यशतक, आनन्द मन्दाकिनी, भामिनी विलास, प्रेमावली शतक आदि प्रधान गीति काव्यों के द्वारा व्यक्त होता है। इतना ही नहीं नूतन रचनाओं से इस काव्य विधा को समृद्ध किया जा रहा है। इस प्रकार संस्कृत गीति काव्यों के विकास की एक सुदीर्घ तथा अक्षुण्य परम्परा रही है। जैसा कि परमानन्द शास्त्री के शब्दों में ..... संस्कृत गीति काव्य बड़ा ही समृद्ध है। उसका यह गुण समृद्धि दीर्घकालीन विकास परम्परा का परिणाम है। ऋग्वेद में यत्र–तत्र प्रकट हुई यह क्षीण निर्झरणी अनेक व्यापक घटनाआं के फलस्वरूप विभिन्न दशाओं में प्रवाहमान जनमानस की सहस्र धारा प्रवृत्ति का संग न पाकर भावों की शान्त समतल भूमि पर कल–कल ध्वनि से बढ़ने लगी थी। अनेक मनीषियों ने उस पावन गंगा में स्नान किया और असंख्य लोगों को इसके रसामृत का प्रसाद बांटा। कुछ ने विशेष–विशेष स्थानों पर गोता लगाकर थाह ली और अपनी पहुँच के अनुसार गहराई को अंकित किया.....। ऋग्वेद की गंगोत्री से निकलने के पश्चात् बौद्ध की गाथाओं की अलकनंदा से निकल कर ही गीति काव्य की यह गंगा अपना व्यक्त स्वरूप प्राप्त कर सकी है। कालिदास का मेघदूतम् उसका हरिद्वार है जहाँ शीतल रस का अथाव प्रवाह पद तरंगों की सुन्दर संगीत ध्वनि के साथ सहज समतल गति से आगे बढ़ता है और जयदेव का गीत गोविन्द वह तीर्थराज है, जहाँ श्रृंगार और भक्ति की गंगा यमुना का लोक विश्रुत पदशैली की अन्तः सरस्वती से अभूतपूर्व संग होता है।[8] डा0 शास्त्री का यह विचार गीति काव्यों की विकासशीलता के सम्बन्ध में स्तुत्य है। इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में उद्धृत विचारों से यह स्पष्ट होता है कि गीति काव्य की स्वतन्त्र विधा का विकास विलियम बेक ने प्रथमतः 1586 ई0 में किया था, जबकि भारत के अन्तर्गत गीति काव्य इस काल तक अपने चरमोत्कर्ष पर आसीन था। अस्तु हमारे गीति काव्य का विकास आंग्ल साहित्य की अपेक्षा अति प्राचीन है, जो अद्यावधि सतत रूप से चला आ रहा है।

पूर्वलिखित विवेचन से निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संस्कृत गीति काव्यों के बीजत्व वैदिक मन्त्र संहिताओं में उपलब्ध होते है, जिसके स्फुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित लौलिक साहित्य का विविध विधाओं के समर्थन के साथ मेघदूत से लेकर अद्यावधि अक्षुण्य रूप से उपलब्ध होता है।

गीति काव्य को शास्त्रीय दृष्टि में खण्डकाव्य की संज्ञा प्राप्त है। खण्ड काव्य एक देशानुसारी होते हैं।[9] काव्य की स्फुट रचना ही मुक्तक का

अभिधान प्राप्त है, जिसमें कथा प्रवाह का कोई बन्धन नहीं होता है। मुक्तक का अर्थ मुक्त होता है, जिसका प्रत्येक पद्य अन्य पद्यों की आकांक्षा से पूर्ण मुक्त होता है।[10] उसे मुक्तक कहा जाता है। इसमें पूर्वापर संबंधविहीन मुक्तक पद्यों का समावेश होता है। इन पदों में भावपूर्णता एवं स्वतंत्रता होने पर भी रसाभिव्यक्ति में न्यूनता नहीं आने पाती है।[11] इनमें एक पक्षीय भावाभिव्यक्ति के साथ ही किसी क्षण विशेष में उद्‌भूत एक ही भाव की प्रधानता वाले पद्यों की बहुलता रहती है। चमत्कारिकता उनके प्रत्येक पद्य का प्रधान एवं अनिवार्य अंग है।[12] इतना ही नहीं अपितु मुक्तक काव्य के अन्तर्गत रसपरिपाक का समावेश अत्यन्त आवश्यक है। जैसा कि आनन्दवर्धनाचार्य ने लिखा है कि मुक्तक काव्य में प्रबन्ध काव्यों की भांति कवियों का रसाभिनिवेश दृष्टिगत होता है।[13] यद्यपि काव्यशास्त्रियों की दृष्टि में प्रत्येक काव्य विधा के लिए रसात्मकता अपेक्षित रही है। किन्तु गीति काव्य के लिये यह अपरिहार्य है। आचार्य उपाध्याय का यह विचार है कि "भाव सान्द्रता के अभाव में कोई भी उक्ति गीति की महनीय संज्ञा नहीं प्राप्त कर सकती।"[14] गीतियों में व्यक्तिगत अनुभूतियां, आदर्श प्रधानता तथा भावनायें प्रधान रुपेण चित्रित होती है, जिसका आधार उत्कृष्ट मनोवेग ही होता है। वस्तुतः जीवन के मनोवेग जब घनीभूत होकर परिणित होते हैं, तब गीति काव्य का जन्म होता है। गीति काव्य इन अव्यक्त मनोवेगों को व्यक्त करता है। वह रसाप्लावित हुए कवि के आत्मा को कण्ठ देता है। यही उसकी वृत्ति है। उसमें उनका कलापन है, और यही उसकी उपयोगिता है। अतएव गीत अथवा गीति मात्रगान ही नहीं अपितु वह भावात्मक अभिव्यक्ति जो स्वोद्‌भूत ही गीति कहलाता है। ऐसी रचना गीति काव्य के नाम से अभिधेय है। डॉ0 चन्द्रशेखर पाण्डेय के शब्दों में– गीतिकाव्य वास्तव में रूप और रस की मधुर कोमल भावनाओं से समृद्ध एक ललित काव्य है, जिसमें श्रृंगार रस शरीर की आवश्यकता न होकर मन का विलास है।[15] वस्तुतः सुख–दुःख की भावावेशमयी अवस्था का विशेष गिने शब्दों में स्वर साधना के अनुरूप चित्रण कर देना ही गीत है। आधुनिक हिन्दी समीक्षक डॉ0 भगीरथ मिश्र जी ने गीति काव्य का परिभाषा निम्न शब्दों में कही है। "गेयत्व और सघन आत्मानुभूति जिस कविता में एक साथ पायी जाती है, उसी को गीति काव्या मानना चाहिए। गीति काव्य प्रगति काव्य के नाम से भी अभिहित किया गया है। किन्तु काव्य नाम अधिक उपयुक्त है। क्योंकि गीति काव्य के अन्तर्गत आभ्यन्तरिक भावनाओं की प्रधानता के साथ–साथ रागात्मकता भी रहती है। वैयक्तिक अनुभूतियों की विशिष्टता के कारण गीति काव्य उस भावना विशेष की अवस्था में सृजित होता है। जब भावावेश से सम्प्रेरित कवि के निजी उद्‌गार काव्योचित भाषा में स्वतः अभिव्यक्त हो जाते हैं। यद्यपि इन भावों को कवि के निजी जीवन से आगे सम्बन्ध की अपेक्षा आवश्यक नहीं होती, तथापि वे किसी पात्र अथवा कवि के ही अनुभवजन्य होते हैं। आत्मवादपरक् रचना को गीति काव्य कहा जाता है। पाश्चात्य विद्वानों ने

गीति का मूलाधार आत्मवाद ही माना है। हडसन के अनुसार आत्मानुभूति की सघनता और औचित्य की अपेक्षा, गीति काव्यों में सदा की जाती है। भावों की भाषानुरुपता उसकी अपनी विशिष्टता है। विशुद्ध गीति किसी एक ही चित्तवृत्ति की अभिव्यक्ति करती है। गीति संक्षम गुणोपेत हैं। क्योंकि संक्षिप्तता उसकी प्रकृति है। उसे कलेवर की लघुता, घनीभूत भाव का सान्द्रण ही व्यक्त करता है। वस्तुतः गीति काव्य आत्मानुभूतियों की तीव्रता से ही काव्योचित भाषा के रूप में स्वाद्भूत होते हैं। जैसा कि डा0 चन्द्रशेखर पाण्डेय ने लिखा है कि सुख–दुःख की अनुभूति, जब तीव्र से तीव्रतम हो जाती है तब उसी आवेश में उदात्त एवं अनुदात्त ध्वनियों के सामंजस्य से कवि के कण्ठ से जो शहद निकल पड़ते हैं। वे ही गीति की संज्ञा पा सकते हैं।[16] वास्तविकता तो यह है कि गीति काव्य महाकाव्यों का निर्ब्याज एवं विकसित स्वरूप होता है। क्योंकि प्रबन्ध अथवा महाकाव्य कविता का अच्छादित रूप है। जबकि गीति काव्य विकसित कविता का निखरा स्वरूप, यदि प्रबन्ध काव्यों को आम्रफल की संज्ञा दी जाय, जिस फल का आस्वादन उसके छिलके–रेशे तथा गुठली के मध्य सूक्ष्म रसकर्षण से किया जाता है, तो गीति काव्यों को उसी आम्रफल का द्रवरूप रस ही कहना चाहिए, जिस रस का आस्वादन सद्यः बिना किसी श्रम के किया जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि गीति काव्यों की परम्परा अति प्राचीन है, जो वैदिक मंत्र संहिताओं से उद्भूत होकर अद्यतन अविछिन्न रूप में विकसित हुई है। इस विकास क्रम में रामायण एवं महाभारत उपजीव्य महाकाव्यों का अनुपम योगदान है। गेयता, भावमयता तथा जीवनदर्शन आदि गीतिकाव्य के प्राणतत्व हैं।

इन्हीं विशिष्टताओं के कारण गीति काव्य अनेकविध रुपों में विकसित हुआ है। गीति काव्य रूप, सौन्दर्य एवं सरस भावों से संकलित काव्य है, जिसमें मानव की सुखदुःखमयी अवस्थाओं का चित्रण अत्यन्त संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थिका :

1. ऋग्वेद संहिता 10–34
2. वही, 3.61.17
3. वही, 3.61.2
4. वही, 10–10–11
5. वही, 10–10–13
6. बाल्मीकि रामायण
7. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर।
8. संस्कृति गीति काव्य का विकास, पृ0 10
9. साहित्य दर्पण 6.239
10. वही, 6.314

11. ध्वन्यालोक 337–36
12. अग्निपुरण
13. ध्वन्यालोक, पृ0 182
14. संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ0 349
15. संस्कृत साहित्य की रूपरेखा, पृ0 263
16. वही, पृ0 336

***

माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन।

*प्रदीप कुमार मिश्र**

मानव जीवन में कुछ न कुछ अनुभव अवश्य होते रहते हैं, जो कि समय की गति के साथ–साथ बढ़ते जाते हैं। इन्हीं अनुभवों से कुछ सामान्य सिद्धान्त जन्म लेते हैं, ऐसे सामान्य सिद्धान्तों को जो समस्त जीवन को एक विशिष्ट कला एक दर्शन के रूप में परिवर्तित कर देते हैं, और उसके पथ–प्रदर्शक के रूप में कार्य करते है, 'मूल्यों' अथवा 'वैल्युज' के नाम से जाना जाता है। व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए जो कुछ आदर्श, विचार तथा वस्तुओं को साधन के रूप में धारण करता है, वे धारण की गयी बातें उसके लिए कुछ मूल्य रखती हैं।

शिक्षा में मूल्य एक बहुआयामी प्रत्यय हैं, जिसका सम्बन्ध शिक्षा के प्रत्येक पक्ष से हैं। जीवन के उद्देश्य शिक्षा के उद्देश्यों पर ही आधारित हैं। अतः शिक्षा के उद्देश्य स्वयं ही मूल्यबद्ध हैं, उद्देश्यों की व्युत्पत्ति मूल्यों से हुई है। प्रत्येक विद्यार्थी के अन्दर आध्यात्मिक गुणों एवं मूल्यों का होना आवश्यक है। आध्यात्मिक गुण जैसे शान्ति, प्रेम, पवित्रता, सत्यता इत्यादि सच्चे मार्गदर्शक की तरह जीवन के प्रत्येक मोड़ पर सदा मार्गदर्शन करते हैं। आध्यात्मिक ज्ञान से मन और बुद्धि पर आन्तरिक अनुशासन स्थापित होता है।

स्वतंत्रता के बाद औद्योगीकरण की तीव्र प्रक्रिया के साथ ही भौतिकता की चकाचौंध में आध्यात्मिक मूल्य का पतन तेजी से हो रहा है। इसका स्पष्ट प्रभाव शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर दिखाई देता है। किसी भी राष्ट्र का निर्माण उसकी कक्षाओं में प्रदान की जाने वाली शिक्षा पर निर्भर करता है। आज के समय में यह सबसे बड़ी आवश्यकता है कि ज्ञान–विज्ञान और तकनीकी विकास के युग में आध्यात्मिक मूल्यों के विकास पर समुचित ध्यान दिया जाय।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आध्यात्मिक मूल्य का विशेष स्थान होता है। आध्यात्मिक मूल्य मानव के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति के व्यवहार में नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य प्रेरणा का कार्य करते हैं तथा किसी के जीवन को लक्ष्य का निर्धारण करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक मूल्य व्यक्ति के साथ–साथ समाज व राष्ट्र की प्रगति निर्भर करती है। शिक्षा व्यक्ति के विकास तथा उसमें वांछित आध्यात्मिक मूल्यों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है और आध्यात्मिक मूल्य शिक्षा को दिशा प्रदान करता है।

---

* शिक्षक-शिक्षा संकाय

आध्यात्मिक मूल्य तार्किक विश्लेषण से दूर होता है। यह एक विश्वास है जो अदृश्य सत्ता के प्रति होता है। जब मनुष्य स्व के भाव से हटकर किसी अन्य चेतना को जानने, उसमें निवास करने या उसके प्रभाव के अधीन होना शुरू कर देता है तो यह आध्यात्मिकता है। आधुनिक काल में कुछ विद्वानों ने आध्यात्मिकता का तात्पर्य ईश्वर की सत्ता से स्वीकार करते है। ईश्वर की सत्ता और आध्यात्मिकता में कुछ समानता हो सकती है परन्तु दोनों अलग–अलग विषय है। आध्यात्मिकता आत्म स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाने को कहते है।

विद्यार्थी का उद्देश्य ज्ञान का अर्जन करना होता है। विभिन्न विषयों के अर्जित ज्ञान से ही उसकी पहचान होती है, परन्तु एक आदर्श विद्यार्थी में ज्ञान के साथ–साथ उसके अन्दर श्रेष्ठ मानसिक गुणों एवं मानवीय मूल्य का होना आवश्यक है। परन्तु विद्यार्थियों का जिज्ञासु एवं कोमल मन संसार की अनेक आकर्षक बुराइयों की ओर आकर्षित हो जाता है। इससे वे अपने उद्देश्य से भटक जाते हैं एवं नशीले पदार्थों के सेवन का शिकार हो जाते है। जीवन के सबसे ऊर्जावान और कीमती समय को नष्ट कर देते है। आध्यात्मिक एवं मूल्य शिक्षा विद्यार्थियों के जीवन का मार्गदर्शन करके जीवन की मंजिल को सहज बनाती है।

विद्यार्थी के स्वभाव से ही उसके मूल्यों के बारे में पता चलता है कि विद्यार्थी का स्वभाव भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में अलग–अलग होता है। इनके मूल्यों के द्वारा ही विद्यार्थी के सभी क्रिया–कलापों के बारे में पता चलता है। हमारी भारतीय संस्कृति प्राचीनकाल से लेकर वर्तमान समय तक मूल्यों को विकास का तत्व माना गया है। आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इन्हीं मूल्यों के सहारे आगे बढ़ा जा सकता है। आज भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव पड़ने से हमारे मूल्यों में ह्रास हो रहा है। इन्हीं मूल्यों के ह्रास के कारण आज लूटपाट, मारपीट, घूसखोरी तथा आतंकवाद को बढ़ावा मिल रहा है।मानव का स्वभाव एक दूसरे से भिन्न है और उसमें परस्पर व्यक्तिगत विभिन्नता है। ये विभिन्नताएँ शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रकट होती हैं। आधुनिक युग में जहाँ व्यक्ति के दैनिक जीवन में वैयक्तिक विभिन्नता दृष्टिगत हो रही है वहां समस्त मनोवैज्ञानिक परीक्षणों से विशेष रूप से शैक्षिक क्षेत्र में सहायता लेकर विद्यार्थियों के व्यक्तिगत विचारों, उनकी अभिवृत्तियों एवं उनके मूल्यों का ज्ञान कर उनका उपयोग उचित दिशा में करना शैक्षिक जीवन में अत्यन्त उपयोगी होगा।

इस शोध मे शोधार्थी ने माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं को सम्मिलित किया हैं। माध्यमिक विद्यालय उच्च प्राथमिक विद्यालय के बाद की संस्था है जिसमें 9, 10, 11 तथा 12 की कक्षाएँ सम्मिलित की जाती हैं। शिक्षा की दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कड़ी है, माध्यमिक स्तर से ही छात्रों के कार्य क्षेत्र के भविष्य का निर्माण होता है। यह शैक्षिक जीवन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण काल होता है। माध्यमिक विद्यालय के उपरान्त छात्र

महाविद्यालय में प्रवेश करता है।

समस्या कथन–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु समस्या को निम्न शीर्षक दिया गया है–

'' माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन ।''

समस्या के उद्देश्य

अध्ययन समस्या को दृष्टिगत रखते हुये निम्नलिखित उद्देश्य का चयन किया गया है–

1. माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएँ–

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्यों के आलोक में निम्नलिखित 'शून्य परिकल्पना की रचना की गयी है –

1. माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध–प्रविधि

अध्ययन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त विधि के रूप में वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत आने वाली सर्वेक्षण विधि को उपयुक्त पाया। अतः अध्ययन में वर्णनात्मक अनुसंधान विधि के अन्तर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में गोरखपुर जिले के माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययरत् हिन्दी माध्यम के 100 एवं अंग्रेजी माध्यम के 100 छात्र–छात्राओं को लिया गया है। इस शोध में अध्ययन हेतु यादृच्छिक विधि से न्यादर्श का चयन किया गया है। शोधकर्ता ने निम्न प्रकार से अपनी समस्या से सम्बन्धित माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं का चयन किया गया है।

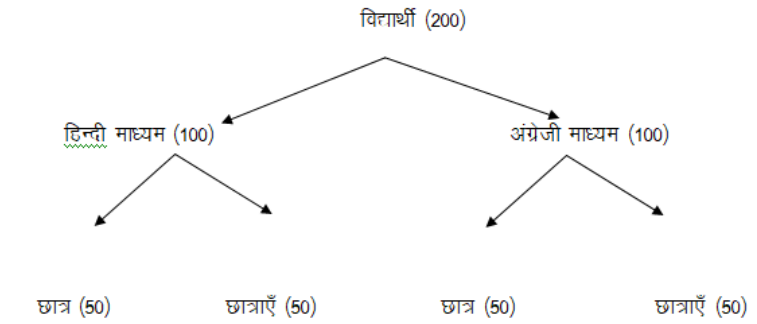

उपकरण– माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य का अध्ययन करने के लिए डॉ0

एस0 पी0 गुप्ता का वैयक्तिक मूल्य मापनी का प्रयोग किया गया है जिसमें कुल आठ प्रकार के मूल्यों का विवरण दिया गया हैं। शोधार्थी ने उसमे से आध्यात्मिक मूल्य का ही विशलेषण किया हैं।

प्रयुक्त सांख्यिकीय प्रविधियाँ–

एकत्रित आँकड़ों के विश्लेषण एवं विवेचन हेतु समस्या की प्रकृति के अनुरूप मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–अनुपात सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्तों का प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण एवं व्याख्या

उद्देश्य–1 माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन करना।

H_1 माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य में सार्थक अन्तर है।

H_2 माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका – 1

माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य का मध्यमान, मानक विचलन एवं टी– अनुपात

क्र0 सं0	समूह	संख्या (N)	मध्यमान (M)	मानक विचलन (SD)	मध्यमानों का अन्तर (M_1-M_2)	मानक त्रुटि (S_{ED})	टी– अनुपात (C.R.)	सार्थकता स्तर एवं सारिणी मान	परिणाम
1	छात्र	100	170.78	11.80	23.09	2.13	10.85	0.05 (1.97)	0.05 सार्थकता स्तर पर सार्थक
2	छात्राएं	100	147.69	17.71					

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट है कि छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य का मध्यमान क्रमशः 170.78 एवं 147.69 है और मानक विचलन क्रमशः 11.80 तथा 17.71 है। तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि उक्त मध्यमानों में अन्तर के टी– अनुपात (C.R.) का माान 10.85 है जो . 05 सार्थकता स्तर पर तालिका मान 1.97 से अधिक है अतः शून्य परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है। और परिकल्ना H_1 स्वीकार की जाती है । दोनों मध्यमानों पर दृष्टिपात करने से स्पष्ट है कि **माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य** में सार्थक अन्तर है। निष्कर्षतः **माध्यमिक स्तर के छात्राओ का आध्यात्मिक मूल्य छात्रों** की अपेक्षा उच्च पायी गयी।

निष्कर्ष–

इस प्रकार हम देखते है कि आध्यात्मिक मूल्य के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि यह विद्यार्थी जीवन में बहुत उपयोगी है। ये हमारी शिक्षा सिद्धान्त के मूल तत्त्व है। इन्हें अस्वीकृत नही किया जा सकता है। आध्यात्मिक मूल्य के

सन्दर्भ में शोधार्थी द्वारा एक सर्वेक्षण किया गया जिसमे शोधार्थी ने माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य का तुलनात्मक अध्ययन किया और पाया कि– माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के आध्यात्मिक मूल्य में सार्थक अन्तर है। निष्कर्षतः माध्यमिक स्तर के छात्राओ का आध्यात्मिक मूल्य छात्रों की अपेक्षा उच्च पायी गयी। ऐसा इस कारण हो सकता है कि छात्राए परिवार के अधिकाधिक सम्पर्क में रहती है माता–पिता एवं परिवार के अन्य बरिष्ठ सदस्यों के निकट होने के कारण उनके व्यवहार एवं अन्य विचारों का उन पर अधिक प्रभाव पडता है। माता के सम्पर्क में होने के कारण उनमें माता के आध्यात्मिक विचारों का उन पर व्यापक प्रभाव पडता है। छात्राओं का सामाजिक सम्पर्क कम होने के कारण सामाजिक कुरीतियों से दूर रहना भी आध्यात्मिक मूल्य के उच्च होने का एक कारण हो सकता है। छात्राओं का सरल स्वभाव एवं पूजा–पाठ एवं धार्मिक कार्यो मे अधिक रूचि होना भी आध्यात्मिक मूल्य को बढावा देता हैं। वही छात्रों का समाज के निकट होने के कारण , परिवार में कम समय व्यतीत करने के कारण एवं धार्मिक कृत्यों मे रूचि कम लेने के कारण आध्यत्मिक मूल्य कम पायें गये है। छात्र व्यस्क होते ही स्वयं को माता–पिता से दूर कर् लेता है एवं स्वतंत्र रहना चाहता हैं ऐसे में परिवारिक वातावरण का उस पर कम प्रभाव दिखता हैं। हमारे देश का दुर्भाग्य है कि पाश्चात्य भौतिकवादी संस्कृति को बढ़ावा मिल रहा है। पाश्चात्य संस्कृति का न कोई मानक है और न ही जीवन जीने का दृष्टिकोण है। हमारे नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्य सर्वश्रेष्ठ है। इसे बनाए रखने की आवश्यकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. डॉ0 ह्रदय नारायण मिश्र– 'उन्नत नीतिशास्त्र', शेखर प्रकाशन, इलाहाबाद (2000), पृ0 99
2. प्रो0 संगमलाल पाण्डेय– 'नीतिशास्त्र का सर्वेक्षण'', सेन्ट्रल पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद (1991), पृ0 10
3. शुक्रनीति 1.56 – नयनान्नीतिरुच्यते, कामन्दकीय नीतिसार 2.15
4. हितोपदेश 2.75 – विपन्नायां नीतौ सकलमवशं सीदति जगत् ।?
5. 'इंटरनेट से प्राप्त सूचना।
6. वर्मा, प्रीति एवं श्रीवास्तव, डी0एन0, (2004) : **मनोविज्ञान एवं शिक्षा में सांख्यिकी**, आगरा,विनोद पुस्तक मंदिर।
7. सरीन एवं सरीन, (1977) : **शैक्षिक अनुसंधान विधिया**, आगरा–2, विनोद पुस्तक मन्दिर।
8. सारस्वत, मालती, (1984) : **शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा**, लखनऊ, आलोक प्रकाशन।

***

पंचवर्षीय योजना तथा कृषि एवं ग्रामीण विकास का विश्लेषणात्मक अध्ययन

*डॉ. सुनीता कुमारी**

सारांश – बारहवीं योजना के दृष्टिपत्र के अनुसार मांग पक्ष में अर्थव्यवस्था में कुल मिलाकर व प्रतिशत की वृद्धि से 4 प्रतिशत की वृद्धि की मांग पैदा होने की आशा है। जिसमें खाद्यान्न मांग में प्रतिवर्ष दो प्रतिशत की वृद्धि होगी और गैर–खाद्यान्न में 5 से 6 प्रतिशत की वृद्धि होगी। चुनौती यह है कि बढ़ती हुई आय के साथ बढ़ रही भारत की जनसंख्या का पेट कैसे भरा जाय। 1981–90 के दशक में कृषि की उत्पादकता में 1. 62 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हो रही थी। जबकि 1991–2000 के दशक में यह वृद्धि केवल 1.55 प्रतिशत ही थी। 2001–20 की अवधि में कृषि का विकास प्रतिवर्ष 3.5 से 4 प्रतिशत की दर से होता है तो कृषि उत्पादकता में 1.72 से 2.08 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी और यदि कृषि उत्पादन में 3.8 प्रतिशत से 4.8 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो उत्पादकता में 1.9 से 2.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि होनी चाहिए। स्वतन्त्रता पश्चात भारत के समग्र आथिक सामाजिक विकास की आवश्यकता तीव्रता से महसूस की गई। विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ था। भारत के पास विश्व के कुल भू क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत भाग है किन्तु उसे विश्व की कुल जनसंख्या के 16 प्रतिशत का पालन पोषण करना पड़ता है। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाना आवश्यक हो गया। देश की समृद्धि प्रत्यक्षतः कृषि तथा उद्योग के विकास पर निर्भर करती है। इस तथ्य को महसूस करते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि को अधिक महत्व दिया गया। देश में अभूतपूर्व खाद्य की कमी को देखते हुए यह आवश्यक भी था। बढ़ती हुई मुद्रा स्फीति, शरणार्थियों का दबाव तथा देश के विभाजन के बाद बर्बाद अर्थव्यवस्था का सर्वांगीण विकास को आधार मानकर प्रथम पंचवर्षीय योजना की ब्यूह रचना की गई। 1950–51 की तुलना में दालों के उत्पादन में वृद्धि हुई किन्तु योजना काल में इसका उत्पादन 1.7 गुना हुआ है। कुल खाद्यान्नों में दाल का भाग 16.5 प्रतिशत था जो कि घटकर 2009–10 में 6.7 प्रतिशत रह गया है। खाद्यानों के संबंध में पहले खतरा नजर नहीं आ रहा था लेकिन अब स्थिति चिन्ताजनक है। विभिन्न अनुमानों के अनुसार वर्ष 2020 तक हमें 224 लाख टन से लेकर 296 लाख टन दाल की आवश्यकता होगी। दीर्घकालीन अनाज नीति से जुड़ी एक उच्च स्तरीय समिति के निष्कर्षों के मुताबिक यह मांग 260 लाख टन की होगी। वर्ष 2020 में इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें दालों के उत्पादन स्तर को 191 लाख टन से बढ़ाते

* सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), अर्थशास्त्र विभाग, जे. एन. कॉलेज नेहरा, दरभंगा

हुए इसमें 69 लाख टन का इजाफा करना होगा। इसके लिए कृषि संबंधी रणनीति में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है।

1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत को व्यापक निर्धनता व्यापक बेरोगारी, कृषि की न्यू उत्पादकता औद्योगिक विकास की समस्याओं का सामना करना पड़ा। मार्क्स और एंजल्स के वैज्ञानिक समाजवाद के आधार पर सोवियत रूस ने अपने देश के विकास लिए समग्र राष्ट्रीयकरण पर आधारित आयोजन को अपनाया। सोवियत रूस की योजनाओं की सफलता से प्रभावित होकर पंडित जवाहर लाल नेहरू ने भारत के आर्थिक विकास के लिए लोकतांत्रिक समाजवाद पर आधारित आयोजन को स्वीकार किया। भारत ने पूंजीवाद और वैज्ञानिक समाजवाद के बीच के रास्ते को स्वीकार करते हुए मिश्रित अर्थव्यवस्था के ढ़ांचे को भारत के लिए स्वीकार किया जिसमें सार्वजानिक क्षेत्र के साथ निजी क्षेत्र की भूमिका को भी स्थान दिया गया। समाजवादी समाज की स्थापना करने के लिए निर्धन एवं निम्न जीवन स्तर व्यतीत करने वाले लोंगो के लिए चिकित्सा, शिक्षा, खाद्य, कपड़ा, आवास आदि, मूलभूत आवश्यकताओं की व्यवस्था करना है। भारत के पंचवर्षीय
योजनाओं में इन्ही उद्देश्यों को लेकर चल रही है। स्वतन्त्रता पश्चात भारत के समग्र आथिक सामाजिक विकास की आवश्यकता तीव्रता से महसूस की गई। विश्व के अन्य देशों की तुलना में भारत प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ा हुआ था। भारत के पास विश्व के कुल भू क्षेत्र का 2.4 प्रतिशत भाग है किन्तु उसे विश्व की कुल जनसंख्या के 16 प्रतिशत का पालन पोषण करना पड़ता है। 1901 में भारत की जनसंख्या 23.6 करोड़ थी जो 1951 में बढ़कर 36. 1 करोड़ हो गई। बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न उत्पादन को बढ़ाना आवश्यक हो गया। देश की समृद्धि प्रत्यक्षतः कृषि तथा उद्योग के विकास पर निर्भर करती है। इस तथ्य को महसूस करते हुए प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि को अधिक महत्व दिया गया। देश में अभूतपूर्व खाद्य की कमी को देखते हुए यह आवश्यक भी था। बढ़ती हुई मुद्रा स्फीति, शरणार्थियों का दबाव तथा देश के विभाजन के बाद बर्बाद अर्थव्यवस्था का सर्वागीणं विकास को आधार मानकर प्रथम पंचवर्षीय योजना की ब्यूह रचना की गई। प्रथम पंचवर्षीय योजना में कृषि क्षेत्र को प्राथमिकता करते हुए खाद्य सुरक्षा की अवधारणा को महत्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया। खाद्य सुरक्षा से अभिप्राय है– मानवीय जीवन को कायम रखने के लिए सभी को अनाज, दालों, दूध एवं दूध के उत्पाद, सब्जियॉ, फल, मछली, अण्डे और गोश्त को शामिल कर सकते हैं। खाद्य अतिरेक वाले देश खाद्य अतिरेक का प्रयोग एक ऐसे हथियार के रूप में करते हैं कि कई देशों को बड़ी ताकतों की नीतियों के प्रति घुटने टेकने के लिए मजबूर कर देते हैं। भारत ने यह अनुभव किया है कि खाद्यों के बारे में संधि करना कितना कठिन है। खाद्य सहायता के साथ जुड़े हुए राजनीतिक बन्धनों से राष्ट्रीय अभिमान को ठेस अवश्य लगती

है। नेहरू ने कहा था जैसे ही हम खाद्य में आत्मनिर्भर हो जाते हैं तभी हमारे लिए प्रगति और विकास करना संभव होगा। पहली पंचवर्षीय योजना अपने उद्देश्यों में सफल रही है।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना में कृषि के स्थान पर भारी तथा मूल उद्योगों को प्रोत्साहित किया गया। परिणामतः खाद्यान्न की समस्या पुनः उत्पन्न हो गई तृतीय पंचवर्षीय योजना में कृषि को फिर प्राथमिकता प्रदान की गई। चतुर्थ पंचवर्षीय योजना में कृषि को प्राथमिकता दी गई जिससे कि देश कृषि के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता बन सकें। पांचवी योजना में गरीबी उन्मूलन एवं आत्मनिर्भरता के उद्देश्य को स्वीकार किया गया। छठवीं योजना में सर्वाधिक प्राथमिकता अधिकाधिक रोजगार सृजन करने वाले और निर्धन व्यक्तियों के जीवन स्तर पर बहुत प्रभाव डालने वाले क्षेत्रों को दी गई सातवीं योजना में गरीबी कम करने, उत्पादकता बढ़ाने व रोजगार के अवसर में वृद्धि को प्राथमिकता प्रदान की गई है। आठवीं योजना में रोजगार सृजन, खाद्य पदार्थो में आत्मनिर्भरता तथा समाज सेवाओं को प्राथमिकता प्रदान की गई। नवीं योजना में ग्रामीण विकास, मूल्यों में स्थायित्व, समाज को न्यूनतम मूलभूत सेवायें प्रदान करना, जनसंख्या वृद्धि को रोकना, महिलाओं और कमजोर वर्ग के लोंगो को शक्तियॉ प्रदान करना, पंचायती राज को बढ़ावा देना व आत्मनिर्भरता का लक्ष्य निर्धारित किया। दसवीं योजना में निर्धनता अनुपात में कमी, रोजगार के अवसरों में वृद्धि, साक्षरता प्रतिशत में वृद्धि, पेयजल उपलब्धता में वृद्धि का लक्ष्य निर्धारित किया गया। ग्यारहवी योजना में शिक्षा, स्वास्थ्य, गरीबी उन्मूलन तथा बुनियादी ढ़ांचे का विकास करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया।

तालिका क्रमांक–1

पंचवर्षीय योजना में विकास पिछले ग्यारह पंचवर्षीय योजनाओं में विकास के लक्ष्य एवं वास्तविक प्राप्ति निम्न प्रकार रही है–

क्र.	विवरण	लक्ष्य	वास्तविक प्राप्ति प्रतिशत प्रतिर्वष
	प्रथम योजना (1951–56)	2.1	3.60
	द्वितीय योजना (1956–61)	4.5	4.21
	तृतीय योजना (1961–66)	5.6	2.72
	चतुर्थ योजना (1969–74	5.7	2.05
	पंचवी योजना (1974–79)	4.4	4.83
	छठवी योजना (1980–85)	5.2	5.54
	सातवी योजना (1985–90)	5.0	6.02
	आठवीं योजना (1992–97)	5.6	6.68
	नवीं योजना (1997–2002)	6.5	5.5
	दसवीं योजना (2002–2007)	8.0	7.5
	ग्यारहवीं योजना (2007–2012)	9.0	8.0

देश में नियोजन के 67 वर्ष पूरे हो चुके हैं। इन वर्षो में देश ने निः सन्देह प्रगति की है। कृषि का उत्पादन बढ़ा हैं उद्योगो का विकास हुआ है। परिवहन एवं संचार सुविधाओं में वृद्धि हुई है। शिक्षा का प्रसार हुआ हैं। विदेशी व्यापार के आकार में समुचित विकास हुआ है। राष्ट्रीय आय, घरेलू बचत व विनियोग दरों में वृद्धि हुई है। हम आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर हुए हैं लेकिन अभी भी गरीबी, बेरोजगारी, मंहगाई तथा जनसंख्या को नियंत्रित करने में सफलता नहीं मिली हैं।

1.राष्ट्रीय एवं प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि– 1950–51 में चालू मूल्यों के आधार पर राष्ट्रीय आय 9678 करोड़ रू. थी प्रतिव्यक्ति की आय 255 रू. थी 2009–10 में यह बढ़कर क्रमशः 44,64,854 करोड़ रू. व 33,731 रू. हो गयी है। लेकिन अभी भी अन्य देशों की तुलना में भारत में प्रति व्यक्ति आय बहुत कम है जैसा कि निम्न विवरण से स्पष्ट है–

तालिका क्रमांक – 2

देश	प्रतिव्यक्ति आय (डालर)
भारत	1070
ब्रटेन	455300
जापान	38210
अमरीका	47580

2. कृषि क्षेत्र में विकास आर्थिक नियोजन के 61 वर्षो में कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। खाद्यानों का उत्पादन 1950–51 में 508 लाख टन था वह 2009–10 में बढ़कर 2182 लाख टन हो गया है। सिंचाई सुविधायें 1950–51 में 2.26 करोड़ हेक्टयर क्षेत्र में उपलब्ध थी वर्तमान में यह सुविधा 10.82 करोड़ हेक्टयर क्षेत्र में उपलब्ध है भारत में कृषि उत्पादन एवं सिंचाई की उपलब्धता को निम्न तालिकाओं में प्रदर्शित किया गया है –

तालिका क्रमांक–3

विभिन्न योजनाओं में कृषि एवं सिंचाई पर परिव्यय (करोड़ रूपय मे)

कृषि एवं सिंचाई	
पहली योजना	600 (31 प्रतिशत)
दूसरी योजना	950 (20 प्रतिशत)
तीसरी योजना	1750 (21 प्रतिशत)
चौथी योजना	3810 (24 प्रतिशत)
पांचवी योजना	8740 (22 प्रतिशत)
छठवीं योजना	26130 (24 प्रतिशत)
सातवीं योजना	48100 (22 प्रतिशत)
आठवीं योजना	1,01,150 (20.8 प्रतिशत)
नवीं योजना	2,01,442 (21.4 प्रतिशत)

दसवीं योजना	3,27,250 (20.2 प्रतिशत)
ग्यारहवीं योजना	6,74,105 (18.5 प्रतिशत)

खाद्यान्न उत्पादन –
तालिका क्रमांक–4

वर्ष	उत्पादन	वर्ष	उत्पादन मि. टन
1950–51	50.8	2000–01	196.8
1960–61	82.0	2006–07	217.3
1970–71	108.4	2007–08	230.8
1980–81	129.6	2008–09	234.4
1990–91	176.4	2009–10	218.2

उत्पादन में विभिन्न खाद्यान्नो की प्रवृति निम्न प्रकार रही है –
तालिका क्रमांक – 5 (उत्पादन मि. टन)

	उत्पादन	प्रतिशत	उत्पादन	प्रतिशत
चावल	20.6	40.6	89.1	40.8
गेहूँ	6.4	12.6	80.7	37.0
मोटे अनाज	15.4	30.3	33.8	15.5
दालें	8.4	16.5	14.6	6.7
योग	50.8	100.0	218.2	00.0

1950–51 की तुलना में दालों के उत्पादन में वृद्धि हुई किन्तु योजना काल में इसका उत्पादन 1.7 गुना हुआ है। कुल खाद्यान्नों में दाल का भाग 16.5 प्रतिशत था जो कि घटकर 2009–10 में 6.7 प्रतिशत रह गया है। खाद्यानों के संबंध में पहले खतरा नजर नहीं आ रहा था लेकिन अब स्थिति चिन्ताजनक है। विभिन्न अनुमानों के अनुसार वर्ष 2020 तक हमें 224 लाख टन से लेकर 296 लाख टन दाल की आवश्यकता होगी। दीर्घकालीन अनाज नीति से जुड़ी एक उच्च स्तरीय समिति के निष्कर्षों के मुताबिक यह मांग 260 लाख टन की होगी। वर्ष 2020 में इस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए हमें दालों के उत्पादन स्तर को 191 लाख टन से बढ़ाते हुए इसमें 69 लाख टन का इजाफा करना होगा। इसके लिए कृषि संबंधी रणनीति में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है।

तालिका क्रमांक – 6

कृषि उत्पादन की प्रकृतियॉ – खाद्यान्न फसलें (किलोग्राम प्रति हेक्टर)

फसलें	1950–51	1980–81	2000–01	2009–10
तिलहन	481	532	810	955

गन्ना (टन / हेक्टर)	33	58	69	66
कपास	88	152	190	395
जूट	1044	1130	1867	2356
आलू (टन / हेक्टर)	7	13	18	19
चाय	786	1491	1673	1500
काफी	—	624	959	1000
रबड	—	788	1576	1776

तिलहन क उत्पादन में लगभग दुगनी वृद्धि, गन्ना के उत्पादन में दूगनी वृद्धि, कपास के उत्पादन में गुनी वृद्धि, जूट के उत्पादन में 2.3 गुनी वृद्धि, आलू के उत्पादन में गुनी वृद्धि हुई है। चाय, काफी और रबड़ के उत्पादन में भी वृद्धि हुई हैं।

तालिका क्रमांक – 8

भारत का विश्व के विभिन्न देशों से तुलनात्मक

देश	गेहूँ	चावल	मूंगफली
फ्रांस	7449		
चीन	3885	6320	2986
अमरीका	2870		2869
भारत	2619	2102	794
जापान		6582	
इण्डोनेषिया			
अर्जेन्टीना		4260	2329

सन् 2012–13 में खाद्यान्न उत्पादन में 3 प्रतिशत की गिरावट संभावित है। 2011–12 में खाद्याान्न उत्पादन 257.44 मिलियन टन था। 2012–13 में यह घटकर 250 मिलियन टन हो जायेगा। कर्नाटक, महाराष्ट्र, गुजरात एवं राजस्थान में सूखे की स्थिति के कारण यह स्थिति बन रही है। खरीफ फसल के उत्पादन में 10 प्रतिशत अर्थात 117.8 मिलियन टन की गिरावट संभव है। कृषि उम्पादों का निर्यात बढ़ा है। 10 मिलियन टन चावल का तथा 3 मिलियन टन गेहूँ का निर्यात किया गया। दालों के आयात में देश द्वारा 10,000 करोड़ रूपये व्यय किये जाते हैं। दलहन एवं तिलहन के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने के लिए हर संभव प्रयत्न आवश्यक है।

तालिका क्रमांक – 9

(साधन लागत पर) सकल देशीय उत्पादन में कृषि

क्षेत्र का भाग (प्रतिशत में)		
मद	1950–51	2009–10
1. कृषि व संबंधित क्षेत्र	56.7	16.93
2. विनिर्माण आदि	13.7	25.77
3. सेवा क्षेत्र	29.6	57.30
योग	100	100

तालिका क्रमांक – 10
विभिन्न देशों में सकल देशीय उत्पादन में कृषि उत्पादन का प्रतिशत

देश	कृषि	देश	कृषि
ब्रिटेन	1	कोरिया गणराज्य	3
यू.एस.ए.	2	मलेशिया	10
फ्रांस	2	चीन	13
जापान	2	इन्डोनेशिया	16
जर्मनी	1	थाईलैण्ड	10
इटली	2	फिलीपीन्स	14
आस्ट्रेलिया	2	पाकिस्तान	23

बारहवीं योजना के दृष्टिपत्र के अनुसार मांग पक्ष में अर्थव्यवस्था में कुल मिलाकर व प्रतिशत की वृद्धि से 4 प्रतिशत की वृद्धि की मांग पैदा होने की आशा है। जिसमें खाद्यान्न मांग में प्रतिवर्ष दो प्रतिशत की वृद्धि होगी और गैर–खाद्यान्न में 5 से 6 प्रतिशत की वृद्धि होगी। चुनौती यह है कि बढ़ती हुई आय के साथ बढ़ रही भारत की जनसंख्या का पेट कैसे भरा जाय।

1981–90 के दशक में कृषि की उत्पादकता में 1.62 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि हो रही थी। जबकि 1991–2000 के दशक में यह वृद्धि केवल 1.55 प्रतिशत ही थी। 2001–20 की अवधि में कृषि का विकास प्रतिवर्ष 3.5 से 4 प्रतिशत की दर से होता है तो कृषि उत्पादकता में 1.72 से 2.08 प्रतिशत की वृद्धि करनी होगी और यदि कृषि उत्पादन में 3.8 प्रतिशत से 4. 8 प्रतिशत की वृद्धि होती है तो उत्पादकता में 1.9 से 2.5 प्रतिशत की वार्षिक वृद्धि होनी चाहिए। बीते दशक के दौरान भारतीय उद्योग जहॉ लगातार उत्साहवर्धक वृद्धि कर रहे थे भारतीय कृषि की स्थिति यथावत बनी रही। हर आने वाली सरकार ने अनेक उपाय किए किन्तु परिणाम संतोषजनक नहीं रहे। यह आश्चर्यजनक इसलिए भी कहा जायेगा क्योकि वर्ष 2008 को छोड़कर इस पूरी अवधि में मानसून
लगातार अनुकुल बना रहा और यह दशक नियमित वर्षा वाली कुछ लंबी अवधियों में शुमार किये जाने लायक दशा बना। इस अनुकूल आंरभिक

स्थिति के बावजूद कृषि क्षेत्र की विकास दर अल्प बनी रही इसका प्रमुख कारण सार्वजनिक निवेश का स्थिर बने रहना ही है। जब यह महसूस किया गया कि सिंचाई तथा अन्य मदों पर सार्वजनिक निवेष के त्वरित परिणाम हासिल नहीं हुए तो धन का आबंटन अन्य क्षेत्रों में किया जाने लगा। वैश्विक मंदी के उपरांत जब विशेषज्ञों की यह आमराय बनी कि मंदी के वर्षो में भारतीय उद्योगों को स्थिरता प्रदान करने वाली ताकत ग्रामीण भारत की उपभोक्ता वस्तुओं की मांग को बनाये रखना कृषि उत्पादकता की बढ़ोत्तरी से ही संभव है। भारत का धीमा आर्थिक विकास निश्चित रूप से चिन्ता का कारण हैं। आई.एम.एफ ने भारत के आर्थिक विकास दर को 6.1 प्रतिशत के स्थान पर 4.9 प्रतिशत अनुमानित किया है। प्रधानमंत्री के आर्थिक सलाहकार डॉ. रघुराजन ने कहा है कि भारत का आर्थिक विकास दर 5 प्रतिशत से कम नहीं होगा। आर्थिक विकास लोगों के कल्याण में वृद्धि का गारंटी नहीं है। भारत में पिछले दस वर्षो में आर्थिक विकास की दर जहॉ 8 प्रतिशत के आस–पास रही है वही गरीबी की दर में गिरावट तुलनात्मक रूप से कम रही है। एक ओर उच्च वर्ग एवं उच्च मध्य वर्ग के आयो में तीव्र वृद्धि हुई है। जबकि गरीबों की आय में उसी अनुपात में वृद्धि नहीं हुई हैं। 2004–05 के मूल्य के आधार पर प्रति व्यक्ति आय 38527 रू था जबकि 30 प्रतिशत गरीबों की आय शहरी क्षेत्र में 10308 रू. तथा ग्रामीण क्षेत्र में 8074 रू. था। आर्थिक विकास के साथ असमानता में कमी आवश्यक है।

क्या किया जाना चाहिए–

1. सरकार को अपनी नीतियों से एक ऐसा वातावरण प्रदान करना होगा जिसमें हमारे
2. किसानों और उद्यमियों की रचनात्मक भावना को पूरा समर्थन और प्रोत्साहन मिलें।
3. वृहद आर्थिक स्थिरता का वातावरण बनाये रखना।
4. कुशलतापूर्वक कार्य करने वाले बाजार सृदृढ़ वित्तीय प्रणाली
5. पारदर्शिता के साथ सुशासन और कानून के राज को प्रभावी ढ़ग से लागू करना
6. देश को अपनी आगोश में लपेटे नकारात्मकता की भावना से बचाना होगा।
7. पी.पी.पी. ;चनइसपबए चतपअंजमए`ममजवत चंतजदंतीपचद्ध को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
8. कृषि में 4 प्रतिशत विकास दर को प्राप्त करना बहुत आवश्यक है इससे जमीन की उत्पादकता 80 से 100 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती है।
9. सिंचाई की समुचित व्यवस्था
10. भारतीय किसानों की 50 प्रतिशत आबादी महिलाओं की है और खेती में काम करने वाले श्रमिकों में 60 प्रतिशत महिलाऍ हैं। महिला किसानों के सशक्तीकरण पर ध्यान देना आवश्यक है।
11. कृषि अनुसंधान को जल कुशलता पर ध्यान देना होगा और फसलों के ऐसे प्रकार विकसित करने होंगे जिनमें पानी की जरूरत कम हों।

12. राज्य सरकारें बुनियादी सुविधाओं के विकास और श्रमशक्ति भी दक्षता बढ़ाने की कोशिशें तेज करें तथा पिछड़े क्षेत्रों में उद्योग धंधे प्रांरभ किए जाएं।
13. उद्योगों का विकास ऐसा होना चाहिए जिसमें अधिक श्रमशक्ति लगाई जा सके और जो श्रमशक्ति लगाई जाय वह ग्रामीण क्षेत्रों से आई हुई हो।
14. गैर कृषि सेवाओं में वृद्धि कर नये रोजगार के अवसर पैदा किया जाय।
15. लम्बी अवधि में सब्सिडी से किसानों कों स्वतन्त्र करना होगा।
16. उन्नत किस्म के बीजों का उपयोग करना होगा।
17. राजकोषीय घाटे को 5.1 प्रतिशत से कमकर 3 प्रतिशत के स्तर पर लाना।
18. सबसे अधिक महत्वपूर्ण आर्थिक तत्वों के अतिरिक्त गैर–आर्थिक तत्वों को अधिक ध्यान दिये जानें की महती आवश्यकता है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि यदि कृषि की दुर्गति होती है और गरीबी एवं भूखमरी लंबे समय तक बरकरार रहती है वो नक्सलवाद का प्रसार और अधिक होगा। एक भूखा आदमी न तो तर्क को सुनता है और न ही धर्म को और न ही वह किसी प्रार्थना के आगे नतमस्तक होता है। जहॉ भुखमरी होगी वहॉ शांति स्थापित नहीं हो सकती। भारत में दुनिया के सबसे अधिक कुपोषित बच्चे, महिलाऍ एवं पुरूष हैं। आधुनिक उद्योग रोजगार रहित विकास को प्रोत्साहित करते हैं, जबकि कृषि, पशुपालन, मत्स्य–पालन, वानिकी तथा खाद्य प्रसंस्करण रोजगार परक विकास को प्रोत्साहित करते है। इसलिए कृषि को सबसे अधिक महत्व दिया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. दत्त एवं सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस चन्द्र एंड कंपनी प्रा0 लि0 रामनगर, नई दिल्ली, 2012।
2. भारत 2012, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार
3. डॉ. मामोरिया एवं एस.सी.जैन, भारतीय अर्थव्यवस्था, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2012।
4. डॉ. विवेक शर्मा, कृषि प्रबंध, अर्जुन पब्लिसिंग हाउस, अंसारी रोड, दरिया गंज, नई दिल्ली 2014।
5. डॉ. वी. सी. सिन्हा, डॉ. पुष्पा सिन्हा, भारतीय अर्थशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन एंड डिस्ट्रिब्यूटरर्स, आगरा, 2015।
6. डॉ. जयप्रकाश मिश्रा, कृषि अर्थशास्त्र, साहित्य भवन, आगरा, 2015।
7. डॉ. राजपाल सिंह, कृषि अर्थशास्त्र, बी. के. प्रकाशन, बागपथ मेरठ, 2016।

***

जी एस टी (कर) का विश्लेषणात्मक अध्ययन

*डॉ. रमण कुमार ठाकुर**

सारंश –

वस्तु तथा सेवा कर राष्ट्रीय स्तर पर वस्तु व सेवाओं के निर्माण, बिक्री और उपभोग पर एक व्यापक करारोपण है, 1950 के बाद भारतवर्ष का सबसे बड़ा कराधान सुधारों में वस्तु तथा सेवा कर महत्वपूर्ण स्थान रखता है, जो राज्य अर्थव्यवस्था प्रणाली को एकीकृत करने और सबके साथ समग्र विकास को बढ़ावा देने में सहायता प्रदान करेगा, वर्तमान में उपभोक्ता, कम्पनीयां व व्यवसाय लगभग 18 तरह के आरोपित अप्रत्यक्ष कर भार का भुगतान करते है परन्तु जीएसटी के लागू हो जाने के बाद इन सभी करों का अस्तित्व खत्म हो गया, जिससे समपूर्ण देश में एक ही अप्रत्यक्ष कर जीएसटी '' एक राष्ट्र एक कर'' के कथन को पूर्ण कर रहा है, पहले वस्तुओं व सेवाओं के उत्पादन से उपभेग तक के भिन्न–भिन्न चरण में भिन्न–भिन्न कर आरोपित होते थे परन्तु जीएसटी पर करारोपण उत्पाद के आपूर्ति पर कराधीन व्यक्ति द्वारा देय होगा, इस व्यापक अप्रत्यक्ष कर सुधार से भारत में कुछ महत्वपूर्ण आर्थिक सुधार व विकास होगे जिससे वस्तु तथा सेवाओं के एकीकृत कराधान प्रणाली के फलस्वरुप एक विश्वस्तरीय कराधान प्रणाली प्राप्त हई है। इस आलेख के अतंर्गत वस्तु एवं सेवा कर की अवधारणा एवं भारत में जीएसटी के लागू होने से वस्तु तथा सेवाओं पर लगने वाली कर दरों तथा पूर्व की कर दरों का विश्लेषण करना तथा परिवर्तन को समझना है।

प्रस्तावना

भारत में अप्रत्यक्ष कराधान के पहले चरण में सुधार तब शुरु हुए जब 1986 में चयनित मदों के लिए केन्द्रीय स्तर पर संशोधित मूल्यवर्धित कर वैट शुरु किया गया था वैट की जोरदार सफलता और इसमें आगे और सुधार करने की जरुरत को समझते हुए भारत सरकार ने 2007 में यह इंगित किया था कि 1 अप्रैल 2010 तक देश में एक लक्ष्य आधारित वस्तु एवं सेवा कर (G.S.T.) शुरु करने के लिए राज्य वित्त मंत्रियों की अधिकार प्राप्त समिति के परामर्श से उसकी रुप रेखा तैयार की जायेगी। अधिकार प्राप्त समिति ने इस पर विचार विमर्श किया और फिर अप्रैल 2008 में भारत में वस्तु एवं सेवा कर का मॉडल तैयार किया और यह सपना पूरा हुआ जब राज्य सभा में 203 मतों के साथ 3 अगस्त 2016 को वस्तु एवं सेवा कर

* सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), अर्थशास्त्र विभाग, डी. बी. कॉलेज जायनगर, मधुबनी

बिल पास हुआ और वर्तमान भारत सरकार ने इसे 1 अप्रैल 2017 से 16 सितम्बर 2017 के बीच प्रभावी होना संवैधानिक अनिवार्यता है।

देश के सामाजिक एवं आर्थिक विकास हेतु देश के प्रत्येक नागरिक का प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रुप से योगदान रहता हैं भारत में सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं के बदले नागरिकों को अपनी आय का कुछ हिस्सा सेवा के बदले देना होता है जिसे कर (Tax) कहा जाता है कर दो प्रकार का होता है– 1 प्रत्यक्षकर 2 अप्रत्यक्ष कर ।

वस्तु एवं सेवा कर एक अप्रत्यक्ष कर का उदाहरण है जो असंगठित क्षेत्र के कर्मचारियों के सामाजिक– आर्थिक एवं शिक्षा स्तर में सुधार करेगा जिस प्रकार सूर्य की किरणें गर्मियों में पृथ्वी से पानी का कुछ हिस्सा सुखा देती है और बरसात में फिर उसे वापस दे देती है ठीक उसी प्रकार केन्द्र सरकार द्वारा प्रदान की गई अलग–अलग सेवाओं के बदले में अलग–अलग कर लगाये जाते है जैसे– केन्द्रीय उत्पाद शुल्क, अतिरिक्त उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क, सेवा कर आदि। इसी प्रकार राज्य सरकार द्वारा भी कुछ कर लगाये जाते। जैसे– बिक्री कर, मनोरंजन कर, चुंगी कर, प्रवेश कर आदि। भारत में जितने भी अप्रत्यक्ष कर लगाये जाते है उनका भार अंतिम उपभोगताओं पर पड़ता है अन्तिम उपभोक्ता तो अपना कर को अदा कर देता है लेकिन वह कर सरकार तक पूर्णतयाः नहीं पहुंच पाता जिससे कर चोरी होती है हमारे देश में कर का 75 प्रतिशत भाग भी सरकार के पास नहीं पहुंच पाता इसका कारण कहीं न कहीं ये अलग–अलग प्रकार के लगने वाले कर है जो कर अपवंचन को बढ़ावा देते है और साथ ही वस्तु की कीमत पर भी असर डालते है इन सभी के समस्याओ के समाधान हेतु देश में एक कर की माँग ज्यादा हो गई है एक सर्वेक्षण में यह पाया गया कि 150 देश अबतब वस्तु एवं सेवा कर को अपना चुके है वस्तु एवं सेवा कर को अपनाने वाला विश्व का पहला देश फ्रांस है जिसने 1954 में वस्तु एवं सेवा कर को लागू किया जो काफी सफल भी हुआ (समसामयिकी महासागर, अक्टूबर 2016 पृष्ठ संख्या 90) इसी के तहत भारत की संसद ने 'एक राष्ट्र एक कर' वस्तु एवं सेवा कर को 3 अगस्त 2016 को मंजूरी प्रदान की जो 1 जुलाई 2017 से प्रभावी हुआ वस्तु एवं सेवा कर एक अप्रत्यक्ष कर है जो भारत को एकीकृत साझा व्यापार बनाने एवं केन्द्र एवं राज्यों के बीच व्यवहार के लिए कर प्रणाली की एकल व्यवस्था को पूरा कर रही है। इस कर व्यवस्था के लागू हो जाने के बाद केन्द्रीय स्तर के कर जैसे– उत्पाद शुल्क, सीमा शुल्क, केन्द्रीय बिक्री कर, सेवा कर और राज्य स्तर के कर जैसे– बिक्री कर, चुंगी कर, मनोरंजन कर, इत्यादि समाप्त हो जायेगें और 1 जुलाई 2017 जब यह लागू किया गया तो निम्न कर की दरें तय की गई है– दैनिक खाद्य वस्तुओ पर 5 प्रतिशत मानक दर 12 प्रतिशत और जो इन 5 प्रतिशत एवं 12 प्रतिशत के दायरे में नहीं आती है उन पर 18 प्रतिशत और इलेक्ट्रानिक वस्तुओं एवं ट्रांसपोर्ट वाहनों पर 28 प्रतिशत की दर से

कर लगेगा भारत में कर सुधार हेतु वस्तु एवं सेवा करको लागू करने की व्यवस्था की जा रही है वस्तु एवं सेवा कर लागू होने के बाद भ्रष्टाचार में कमी आयेगी पूरे देश में वस्तु एवं सेवा कर व्यापार को आसान बनायेगा और अंन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा को बढ़ावा देगा एवं कर तटस्थ बनाने के साथ–साथ यह विनिर्माण लागात को कम करेगा जिससे उपभोक्ता को वस्तु कम कीमत पर उपलब्ध होगी जिससे अंन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की स्थिति में सुधार होगा।

वस्तु एवं सेवा कर विधेयक देश का 122वॉ संविधान संशोधन है इसके तहत संविधान में नया अनुच्छेद 246(a) भाग(xi) जोड़ा गया है जो इसको संघ एवं राज्य एवं विधायिका को वस्तु एवं सेवा कर पर कानून बनाने की शक्ति देता है वस्तु एवं सेवा कर लागू हो जाने से लगभग डेढ़ दर्जन केन्द्र एवं राज्य के कर समाप्त हो जायेगें केन्द्र को वस्तु एवं सेवा कर से जो राशि प्राप्त होगी उसका वितरण केन्द्र एवं राज्य दोनों के बीच होगा इस विधेयक के तहत नया अनुच्छेद 279(a) जोड़कर वस्तु एवं सेवा कर परिषद् के गठन का प्रावधान किया गया है।

साहित्य सर्वेक्षण

डॉ0 आर0 वसंतगोपाल 2011, ''भारत में जी एस टीः अप्रत्यक्ष कर प्रणाली में एक बड़ी छलांग'' में निष्कर्ष के रुप में यह बताया कि भारत में वर्तमान जटिल कर प्रणाली से निर्बाध (निजात) जी एस टी पर स्विचिंग भारतीय अर्थव्यवस्था में तेजी लाने के लिए एक सकारात्मक कदम होगा। जी एस टी की सफलता दुनिया में 150 से अधिक देशों और एसिया में अप्रत्यक्ष कर प्रणाली के एक नई राह एवं नई दिशा की ओर ले जायेगी।

नितिन कुमार 2014, ने अपने शोध अध्ययन '' वस्तु एवं सेवा कर आगे की ओर उन्मुख'' मे निष्कर्ष के रुप में यह बताया कि भारत में जी एस टी के कार्यान्वयन को वर्तमान अप्रत्यक्ष कर प्रणाली द्वारा आर्थिक विरुपण हटााने में मदद मिली है और अपेक्षकृत अप्रत्यक्ष कर प्रभावी रहा है।

पंकी, सुप्रिया, काम्मा और रिचा वर्मा 2014,'' भारत में अप्रत्यक्ष कर प्रणाली के लिए वस्तु और सेवा कर –रामबाण'' में निष्कर्ष निकाला कि भारत में नई एनडीए सरकार जी एस टी के कार्यान्वयन के प्रति सकारात्मक है और यह केंद्र सरकार के लिए फायदेमंद है और इसे आई0 टी0 का बुनियादी व्यवस्था का प्रभावी माध्यम के रूप में साबित हुआ ।

जयप्रकाश 2014, अपने शोध अध्ययन ने उल्लेख किया है कि केन्द्रीय और राज्य स्तर पर जी एस टी से कर, व्यापार, कृषि और उपभोक्ताओं को इनपुट टैक्स सेट–ऑफ और सर्विस टैक्स की अधिक व्यापक कवरेज के जरिये ज्यादा राहत मिल जायेगी। जी एस टी में कई करों को कम करना और सी एस टी से बाहर निकलने का काम करना। उद्योग और व्यापार के उत्तर भी वास्तव में उत्साहजनक रहे है। इस प्रकार जीएसटी हमें अपने कर आहार को विस्तृत करने का सबसे अच्छा विकल्प

प्रदान करता है और हमें इस अवसर को शुरु करने के लिए याद नहीं करना चाहिए जब परिस्थितियां काफी अनुकूल है और अर्थव्यवस्थ केवल हल्की मुद्रास्फीति के साथ स्थिर वृद्धि का आनद ले रही है।

निशिया गुप्ता 2014, ने अपने शोध अध्ययन में उल्लेख किया कि भारतीय ढ़ाचे में जी एस टी का कार्यान्वयन होगा। वैट सिस्टम अप्रभावित वाणिज्यिक लाभों की ओर ले जाता है और अनिवार्य रूप से आर्थिक विकास में मदद करेगा जी एस टी उपभोग, व्यापार, कृषि और इसके लिए सामूहिक लाभ की संभावना में वृद्धि कर सकता है।

उद्देश्य

प्रस्तुत आलेख में वस्तु एवं सेवा कर की अवधारणा एवं भारत मे जी एस टी के लागू होने से वस्तु तथा सेवाओ पर लगने वाली कर दरों तथा इससे पूर्व की कर दरों का विश्लेषण करना तथा परिवर्तन को समझना।

क्रियाविधि

प्रस्तुत आलेख को पूर्ण करने के लिए विभिन्न पुस्तकों, राष्ट्र और अतंराष्ट्रीय पत्रिकाओं, सरकारी प्रतिवेदनों तथा विभिन्न वेबसाइटों के प्रकाशनों से प्राप्त द्वितीयक समंको के व्यापक अध्ययन पर केन्द्रीत है, जो वस्तु एवं सेवा कर के विभिन्न पहलुओं पर केद्रित है।

जी.एस.टी. की आवश्यकता दुनियाभर के कई देशों मे जी.एस.टी. लागू है लेकिन भारत में जो जी.एस.टी. लागू हुआ है। उसका महत्व व विशिष्टता इसलिए है क्योंकि यह भारत जैसे विशाल देश में लागू हुआ है। भारत सिर्फ एक देश नही है ब्लकि एक उपमहाद्वीप है। जहां 130 करोड़ लोग रहते है। अभी तक जिन देशों में जी.एस.टी. लागू है वहां इतनी आबादी नही है। दूसरी बात यह है कि भारत में 29 राज्य व सात केन्द्र शासित प्रदेशों में भी जी.एस.टी. लागू हुआ है (जम्मू – कश्मीर को छोड़कर)। इतना बड़ा संघीय बढोतरी होगी। टैक्स बेस बढ़ जाएगा। केन्द्र और राज्य का टैक्स से आय बढ़ेगी तो ढांचागत क्षेत्र की जरुरत और सामाजिक क्षेत्र की जरुरत जैसी चुनौतियों के लिए हम ज्यादा से ज्यादा खर्च कर पायेगे।

जी एस टी की अवधारण

जी एस टी राष्ट्र के इतिहास का सबसे बड़ा कर सुधार, वस्तु और सेवा कर का 30 जून 2017 मध्यरात्रि का संसद के सेंट्रल हॉल मे आयोजित समारोह में शुभारंभ किया गया। जी एस टी आम उपभोग की अधिकांश वस्तुओं की कीमतों को कम करने हेतु एकल कर है। वर्तमान में, कम्पनियां और व्यवसाय बहुत सारे अप्रत्यक्ष करों जैसे वैट, सेवाकर, बिक्री कर, मनरोजंनकर लक्जरी कर का भुगतान करते है जी एस टी लागू होने से इन सभी का अस्तित्व समाप्त हो गया है केवल एक ही कर है जिसकी निगरानी केन्द्र सरकार कर रही है और जो खपत के अंतिम बिन्दु पर होगा न कि

उत्पादन स्तर पर। माल और कराधान के एकीकरण से भारत को एक विश्वस्तरीय कर प्रणाली प्रदान की है जो अर्थव्यवस्था के विकास में योगदान दिया है वस्तु एवं सेवा कर के क्षरा विनिर्माण और सेवा क्षेत्र के अंतर उपचार के विकृतिया की समप्ति तथा राजकोषीय स्वास्थ्य में भी सुधार होगा।

भारत के कार्य स्वरुप

यह केन्द्र और राज्य के साथ एक सामान्य कर आधार पर आरोपित एक दोहरा जी एस टी है। वस्तुआं और सेवाओं की राज्य के अंदर आपूर्ति पर केन्द्र द्वारा लगाये गये कर को केंद्रीय जीएसटी कहा जायेग तथा राज्यों द्वारा लगाये करों को राज्य जी एस टी कहा जाता है। इसी प्रकार केंद्र द्वारा प्रत्येक अंतर–राज्य वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति पर एकीकृत जी एसअी लगाने तथा प्रशासित करने की व्यवस्था है। देश में जीएसटी व्यवस्था लागू होने से 50,000 हजार रुपये तक के माल को एक राज्य से दूसरे राज्य में भेजने पर ईबिल का प्रावधान किया गया है ताकि कर चोरी पर नजर रखी जा सकें। केंद्र के अधिकार में वस्तुओं के विनिर्माण (सिवारा मानव उपभोग के लिये शराब, अफीम नशीले पदार्थों आदि को छोड़कर) पर कर लगाने की शक्तियां है, जबकि राज्यों के अधिकार में वस्तुओं की बिक्री पर कर लगाने की शक्तियां प्रदान की गई है।। अंतर–राज्य बिक्री के मामले में केंद्र सरकार को वस्तुओं की बिक्री पर कर (केंद्रीय बिक्री कर) लगाने की शक्ति है लेकिन कर पूरी तरह से राज्यों द्वारा एकत्र किया जाता है। जहां तक सेवाओं का प्रश्न है, केवल केद्र को सेवा कर लगाने के लिये सशक्त किया जाता है। संविधान का अनुच्छेद 246ए केंद्र और राज्यों का कर लगाने और जी एस टी एकत्र करने के लिए सशक्त करती है।

जीएसटी के लागू होने से उपरोक्त वर्णित वस्तुओं एवं सेवाओं में कमी आई है इसके साथ ही 153 आम जरूरतों की वस्तुओं को ई–बिल लेने की आवश्यकता से मुक्त किया गया है साथ ही साथ भारत में आयात और बेचने वाले मोबइल फोन के लिए कर दर जो 17 प्रतिशत से 27 प्रतिशत तक थी वह अब 12 प्रतिशत हो गई है अतः मोबाइल फोन पर जीएसटी लगने से इनकी कीमतों में कमी आई है और साथ ही LPG, केरोसिन, आभूषण तथा मुद्रा को उन वस्तओं में शामिल किया गया है जिन्हें वस्तु एवं सेवा कर व्यवस्था के तहत परिवहन में ई परमिट लेने से छूट दी गई है। इसके साथ ही जीएसटी का कुछ क्षेत्रों पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ा जो निम्न है– बीमा एवं बैंकिग सेवाये, होटल एवं रेसटोरेंट सेवाओं तथा पान मसाला, ब्राण्डेड गुटखा सिगरेट जैसी वस्त ुओं तथा सेवाओं पर जीएसटी लगने से कर दरो में वृद्धि हुई है।

जी.एस.टी. की समस्या –

- **इलेक्ट्रानिक मोड़ से कठिनाईयाँ** – जी.एस.टी. में पंजीयन से लेकर टैक्स रिटर्न फाइल तक के सभी कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से किए जायेंगें जिससे व्यापारियों तथा आम आदमियों की परेशानियाँ बढ़ी।
- **जी.एस.टी. रिटर्न भरने में समस्या** – जी.एस.टी. रिटर्न भरने हेतु उचित ज्ञान माध्य व प्रभावशाली रूप रेखा के अभाव होने के कारण आम व्यक्तियों एवं व्यापारियों को समस्याएँ।
- **सरकार की तैयारी नहीं** – जी.एस.टी. को 1 जुलाई 2017 को लागू कर दिया गया किन्तु वर्तमान समय तथा भविष्य में भी वस्तु की दरों में परिवर्तन होने के कारण व्यापारी तथा उपभोक्ताओं सभी को समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, जिसका मुख्य कारण सरकार की तैयारियों में कमी का होना है।
- **बैंक खाते की जानकारी से भय** – इन्टरनेट बैंकिंग एवं अन्य इलेक्ट्रानिक माध्यमों के उपयोग से कई ऐसे मुद्दे सामने आये है जिससे खातों के पैसों में फेरबदल हुई है। जी.एस.टी. में खाते की जानकारी से व्यक्तियों में इसका भय बना हुआ है।

समाधान –

भारत सरकार द्वारा लागू किये गये वस्तु एवं सेवा कर का मुख्य उद्देश्य जहाँ एकीकृत साझा बाजार को विकसित करना था वही जी.एस.टी. के कठिन नियमों और दरों के कारण छोटे व्यापारी तथा निर्यातक इससे अभी सन्तुष्ट नहीं रहे जिससे सरकार द्वारा इसमें कुछ परिवर्तन किये गये है। माल एवं सेवा कर निर्यातकों और छोटे व्यापारियों के लिए त्रि–मासिक रिटर्न भरने की अनुमति दी गई है। हाल ही में वित्त मंत्री अरूण जेटली ने कहा कि ''जी.एस.टी. परिषद ने पिछले तीन महीनों के कार्यान्वयन के अनुभव पर विचार किया है और छोटे व्यापारियों को इसमें राहत दी है और छोटे करदाताओं का अनुपालन भार घटा दिया गया है।'' टी.डी.एस./टीसी. एस. प्रावधानों का पंजीकरण और संचालन, मार्च 2018 तक स्थगित किया जायेगा। परिषद द्वारा निर्यातकों के लिए छः महीने की कर राहत की सुविधा दी गई हैं तथा निर्यातकों के लिए अप्रैल 2018 तक सरकार द्वारा नये डिजिटल ई–वॉलेट सिस्टम उपलब्ध कराये जाये।

निष्कर्ष

जी एस टी बिल से देश के जटिल कराधान प्रणाली के लिए एक वरदान साबित हुआ है। यह देश की जीडीपी अनुपात को सक्रिय रुप से सुधारने का प्रयास करेगा तथा मुद्रास्फीति को भी बाधित करेगा। जी एस टी ने विभिन्न प्रकार के क्षेत्रों जैसे FMCG, Auto, तथा सीमेंट आदि के मुकाबले विनिर्माण क्षेत्र को प्रतिकूल रुप से प्रभावित किया है क्योकि पहले विनिर्माण क्षेत्र पर कर का 24 प्रतिशत से 38 प्रतिशत तक भार पड़ता था। जो जीएसटी के लागू होने से अब कम है। वही बीमा क्षेत्र पर जीएसटी का

अधिक प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। स्वास्थय बीमा योजना के तहत प्रीमियम तथा बैंकिग सेवाओं पर कर की दर पहले जो 15 प्रतिशत थी जो अब बढ़ाकर 18 प्रतिशत कर दी गयी है। अंन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा को बढ़कर 18 प्रतिशत कर दी गयी है। अंन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रतिस्पर्धा को बढ़वा देगा एवं कर तटस्थ बनाने के साथ–साथ यह विनिर्माण लागात को कम करेगा जिससे उपभोक्ता को वस्तु कम कीमत पर उपलब्ध होगी जिससे अंन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की स्थिति में सुधार होगा। भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए जीएसटी के लागू होने से कर चोरी व भ्रष्टाचार को रोकने में मदद मिलेगी और भविष्य में भारत की जीडीपी अनुपात में भी वृद्धि होने की सम्भावना हैं।

संदर्भ :

1. समसामायिकी महासागर, अक्टूबर 2016, प्रकाशित : शीर्षक, वस्तु एवं सेवा कर विधेयक संसद में पारित, पृष्ठ संख्या 90।
2. घटना चक्र, वार्षिकांक नवम्बर 2016, के शीर्षक, वस्तु एवं सेवा कर विधेय पारित, पृष्ठ संख्या 47।
3. दैनिक जागरण, समाचार पत्र (26 अक्टूबर 2016) शीर्षक, वस्तु एवं सेवा कर सेवाओं पर 18 प्रतिशत कर लगेगा, पृष्ठ संख्या 17।
4. Girish Garg 2014,"Basic Concepts and Features of Good and Service Tax In India" International Journal of scientific research and management (IJSRM) Volume 2,Issue 2, Pages 542-549.
5. Lourdunathan F and Xavier P, "A study on implementation of goods and services tax(GST) in India: Prospectus and challenges" International Journal of Applied Research 2017; 3(1): 626- 629.
6. Pinki, Supriya Kamna, Richa Verma(2014), "Good and Service Tax – Panacea For Indirect Tax System In India", "Tactful Management Research Journal",Vol2, Issue 10, July2014 .
7. Empowered Committee of Finance Ministers First Discussion Paper on Goods and Services Tax in India,The Empowered Committee of State Finance Ministers,New Delhi, 2009.
8. http://www.ficci.com/spdocument/20238/Towards-the-GST-Approach-Paper Apri2013.pdf

***

राजनैतिक अपराध का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

*डॉ. अशोक कुमार**

राजनीतिक क्रूरता या राजनैतिक दमन, जिसे विधि के नियम की भ्रष्टता भी कह सकते हैं, इतना ही पुरातन है जितना सभ्य समाज। फिर भी, आधुनिक संसार में इसका रूप और सीमा नवीन है। प्राचीन काल में दमनकारी अपने अधीनस्थों या प्रजा तक पहुँचने में समर्थ नहीं हो पाता था परन्तु टेलिवीजन, रेडियो और अन्य संचार साधनों के द्वारा वह अपनी वाणी और यहाँ तक कि अपना बिम्ब भी सबों तक पहुँचा सकता है। अपने कार्यक्रमों तथा नीतियों के प्रति लोक प्रतिक्रियाओं का भी प्रामाणिक प्रतिवेदन प्राप्त कर लेता है। वह सारी की सारी जनसंख्या को अपनी ओर मोड़ ले सकता है। आधुनिक तानाशाही को अपार स्वातंत्र्य प्राप्त रहता है और नये-नये उपायों को भी प्रयोग में ले आने का अवसर, वातावरण उसे प्राप्त है। प्रजापीड़न और तकनीकी मिलकर संसार में सर्वथा नया सन्दर्भ प्रस्तुत करते हैं।[1]

सार्वराज्यतन्त्रवाद अथवा अधिनायकवाद, जो राजनीतिक दमन का विशिष्ट आधुनिक संस्करण है, वस्तुतः आधुनिक संस्थाओं के कतिपय अभिलक्षण की नाट्यात्मक अभिव्यक्ति मात्र ही है। जनसंख्या की श्रेणियों, युवकों, वृद्धों, कृषकों को स्नेहपूर्ण सम्बन्धों से रिझाने की प्रणाली सामान्य हो गई। हमारे कृषक आदि ऐसे ही सम्बोधन हैं। लोक समुदाय को मिल-कारखानों, जंगलों, खनिज पदार्थों की श्रेणी में रखा जाता है और इनका केसा उपयोग किया जाय, यही चिन्ता रहती है और इसके लिए जो प्रयोग किए जाते हैं, उनपर कोई टिप्पणी भी नहीं की जाती है। आधुनिक संस्थाएँ घोर तंत्रवादी होती हें और राजनीतिक दमनकारी इनका ही उपयोग करते हैं। गणतंत्रात्मक तथा अधिनायकवादी प्रशासन दोनों ऐसा करते हैं। नौकरशाही स्वतः एक राक्षस होती है। जो सत्तारूढ़ रहते हैं, उनके संकेतों पर ही कार्यरत मात्र नहीं हो जाती अपितु निजी हितों तथा स्वार्थों की भी चिन्ता बनाये रहती और सुरक्षित रखती है। व्यक्ति परम स्थितियों या चक्रव्यूह में पड़ गया है।[2]

परम स्थितियों को हम आधुनिक चक्रव्यूह का प्रतीक प्रदान कर

---

* एम. ए., पी-एच. डी. (समाजशास्त्र), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

सकते हैं। मनुष्य आज चक्रव्यूह से घिर गया है। विपरीत वातावरण में व्यक्ति की क्या दारूण स्थिति हो जाती है, वह आधुनिक चक्रव्यूह के मूल्यांकन से स्पष्ट हो जाता है। इसका कठोरतम अनुभव नाजियों के संकेन्द्रण शिविरों में हुआ था। परम स्थिति का सिद्धांत ऐसे ही एक शिविर के भुक्तभोगी बुभी वेथलहम ने प्रतिपादित किया है। इन शिविरों से जो बच निकले, उनसे पूछने पर उनकी जिस समस्या का रहस्योद्घाटन हुआ, वह यह कि प्रश्न उनके प्राण रक्षण का ही नहीं था बल्कि अपरिवर्तित रह जाने का भी था जो करना ही परम स्थिति का मूल प्रश्न होता है।[3] जो अपने स्वत्व को सुरक्षित रखना चाहता है वह असम्मान के स्थान में मृत्यु को वरण करना अभीष्ट समझता है। जो अपना स्वत्व खो देता है, वह जीवित रहकर भी मृतवत् हो जाता है।[4]

परम स्थितियाँ कैसे उत्पन्न हो जाती हैं? आधुनिक समाज में ऐसी परम स्थितियाँ यदा-कदा, यत्र-तत्र ही नहीं अपितु सतत् एवं सर्वत्र विराजमान रहने लगी हैं और ये सभी अपराधमूलक ही होती हैं। राजनीतिक आतंक का जो उग्रतम रूप संकेन्द्रण शिविरों में दीख पड़ा था, उसका ही रूपान्तर आधुनिक संस्थानों में उत्कट रहने लगा है। जेल, मानसिक आरोग्यशाला, सैनिक बैरेक, समुद्र पर जहाज, आवासीय स्कूल, यहाँ तक मठ, सबों में संकेद्रण शिविर जैसी ही स्थितियाँ रहती हैं। सर्विग गाफम ने इन्हें सर्वशक्तिमान संस्थाओं की संज्ञा दी है।[5]

किसी सर्वशाक्तिमान या 'सकल' संस्था की सफलता इस संस्था के अधीनस्थ व्यक्ति तथा उनपर प्रशासन करने वाले अधिकारियों के सम्बन्ध में निहित होती है। इन आश्रमों में रहने वाले सदस्यों को कोई नहीं होता है और इनके अधिकारियों को पूर्ण छूट रहती है और इनका प्रशासन को प्राप्त निरंकुश रहता है। सदस्यों को परिवर्तित कर देने का पूर्ण अधिकार प्रशासन को प्राप्त रहता है। 'सकल' संस्था इतिहास की आदि व्यवस्था है और समाज में इनके आकार को सदा सुरक्षित कर रखा है। परन्तु आधुनिक संसार में इन्होंने और भी उग्र रूप ले लिया है और प्रायः ऊपर से जो संस्थाएँ 'सकल' नहीं भी प्रतीत होती हैं, वे भी वस्तुतः सकल संस्थाओं से ही संचालित तथा कार्यरत रहती हैं। उनमें प्रकार का नहीं, मात्र का अन्तर रहता है। समाज जितना ही राजतंत्रिक होता है, उतना ही व्यक्ति बलहीन और संस्थायित होता चला जाता है और संस्था जितनी ही राजतंत्रिक होती है, व्यक्ति और अधिकारी के सम्बन्ध उतना ही जटिल और क्रूर होते जाते हैं। सदस्यों का कोई

अधिकार नहीं होता है, उनका कोई स्वत्व नहीं रह जाता है।[6] और सकल संस्थाएँ ही परम स्थितियाँ पैदा करती हैं।[7] इन पर समाजीय प्रतिमानों का भी कोई प्रभाव नहीं रहता है। परम स्थितियों के 6 आनुभाविक दृष्टान्त, जिन्हें आधुनिक विचारकों ने परिगिणत किया है, ये हैं :

(1) मानसिक आरोग्यशाला,
(2) संक्रेद्रण शिविर,
(3) प्रभावहीन राज्य,
(4) सर्वराज्यतंत्रात्मक राज्य,
(5) सामूहिक हत्या और
(6) परमाणु-युद्ध ।

परम स्थितियाँ नैतिकता और वैधता को रौंदती हुई ही नहीं, बल्कि इनके स्थान पर प्रकार्यात्मक बौद्धिकता को प्रतिष्ठित कर दृढ़ हो चुकी है और इनसे आधुनिक समाज आक्रान्त रहने लगा है। चिन्तकों की यह स्थापना है कि सभी प्रकार के राजनीतिक संघटनों या शासनों में इनका प्रभुत्व स्थापित हो गया है और प्रतिमान के रूप में इन्हें प्रतिष्ठित कर दिया गया है और इसिलए, संस्थाओं की विफलता नहीं अपितु सफलता ही आधुनिक समस्याओं का जनन करती है। नौकरशाही और समूहीकरण से उत्पन्न प्रकार्यात्मक बौद्धिकता आज की ज्वलन्त समस्या है।[8]

दमन, शोषण और स्वत्वहरण के इस अधुनिक मानव, सन्दर्भ से जो अपराध होते हैं, उन्हें हम राजनीतिक या राजनैतिक अपराध कह सकते हैं। अर्थात् प्रशासन ही अपराध करता है,जिसका दायित्व समाज की असामान्यताओं पर नियंत्रण स्थापित करने का होता है। वह इस प्रयास में, निष्पादन के क्रम में ही निरंकुश, बर्बर और पीड़क हो जाता है।

मानसिक आरोग्यशाला में मानस रोगी को परपीड़क मनोविनोद का शिकार हा जाना पड़ता है और चूँकि यह शाला एकान्त में स्थापित रहती है, इसलिए इसके प्रबन्धक और कार्यकर्त्ता को ऐसा करने में कोई बाधा नहीं पहुँचती है। सामाजिक कर्त्तव्य और दायित्व बोध का इन्हें अपना मानदण्ड होता है। मानस रोगी भी सतत् अपते स्वत्व के हनन की चिन्ता से आकुल रहता है। मेघा की शल्य चिकित्सा, विद्युत उपचार ओर कम्पन उत्पन्नकरने वाली औषधियाँ मानस घातक ही होती हैं। रोगियों को यहाँ बलपूर्वक रोक कर रखा जाता है और उन्हें अपनी

अभिवृत्तियों को त्याग देने को बाध्य किया जाता है। संकेद्रण शिविरों में नैतिक प्रहार, अवैधता और प्रकार्यात्मक बौद्धिकता का अखंड प्रभुत्व रहता है। इसका अत्यन्त ही लोकहर्षक रूप नाजियों द्वारा यहूदियों के साथ किए गए व्यवहारों में दीख पड़ा। सामूहिक हत्या तथा मानसिक उत्पीड़न को एक राजनीतिक आदर्श की ओट में मान्यता तक प्रदान दी गई और अत्यन्त नृशंस यातनाएँ भी दी गई। रक्षकों के प्रति कोई आरोप ठहर नहीं सकता था परन्तु इन शिविरों के सदस्यों के प्रति प्रत्येक आरोप का प्रतिफल दारूण दण्ड था। निष्प्रभ राज्य या प्रभावहीन राज्य भी समस्या प्रदान ही होता है। व्यक्ति कोस्वातंत्र्यका सारा अधिकार प्राप्त रहता है परन्तु व्यवहार में वह विधि के परे असामाजिक तत्वों का दास मात्र रहता है। अमेरिका के नीग्रो, अफ्रीका के काले आदमी की स्थिति सुपरिभाषित नियमों के रहते अत्यन्तकष्टप्रद है। गौर वर्ण का समुदाय इन सभी नियमों को विफल बना देता है और इन्हें कार्यान्वित नहीं होने देता है। अर्थात् एक विधिवत संगठिन राज्य के भीतर ही एक दूसरा राज्य निरंकुश करता है। इस पृष्ठभूमि में नीग्रो किसी भी समय अपमानित, प्रतीत तथा चित्रहिंसा का पात्र हो जा सकता है ओर न्यायलयों में भी उसे समुचित न्याय प्राप्त होगा, यह संभावना ही विद्यमान नहीं रहती। नीग्रो का एक दूसरा ही वर्ग हो जाता है। दक्षिण अमेरिका में उत्तर अमेरिका से अधिक दारूण स्थिति नीग्रो की होती है। अल्जीरिया के अर्वाचीन कांडों में भी दो विभिन्न निगरानी दलों का कार्यरत रहते पाया गया। राज्य की पुलिस तथा गुरिल्ला। यूरोपवासियों ने मुसलिमों के विरूद्ध ओ० ए० एस० संगठिन किया और मुसलिमों ने पूर्व से ही एफ० एल० एन० संगठित कर रखा था और दोनों की आपराधिक क्रियाओं और अभियानों को वैध पुलिस या सैनिक दल या प्रशासन नियन्त्रित करने में विफल ही रहा। चूँकि कोई मात्र भूखबासी था या कोई मात्र मुसलमान, वह आक्रमण का पात्र था और दोनों संगठनों ने खुलकर विनाशलीलाएँ कीं। और जो इन संगठनों के सदस्य थे, वे राजनीति या सामुदायिक अपेक्षाओं के तत्कथित आदर्शों के सन्दर्भ में स्वत्वविहीन थे, उनकी अत्मा विनष्ट हो चुकी थी और यही परम स्थिति थी। सर्वराज्यतंत्रवादी राज्य दमन तथा तकनीकी के संयोग से गठित होता है। कानून से परे अपनेको परे रखनेवाले प्रशासनों का इतिहास पुराना है, परन्तु ऐसे प्रशासनों को स्थिर कर अनिश्चित काल के लिए चलाना उतना ही आधुनिक है जितना विद्युत संचारण तथा बौद्धिक

नौकरशाही। सामाजिक पुनर्गठन के नाम पर व्यक्तिके संवैधानिक अधिकारों का विलोपन कर दिया जाता है। जब सामाजिक लक्ष्य सर्वप्रभुता से समपन्न हो जाता है, व्यक्तित्व के इस लक्ष्य की पूर्ति का साधन मात्र बना दिया जाता है। जिसका सैद्धांतिक नवीनीकरण नहीं हो जाता है, उन्हें विफलता के दोष का शिकार होना पड़ता है। राजनीतिक अविश्वसनीयता के आधार पर इन्हें आसामाजिक यहाँ तक कि आपराधिक भी घोषित कर दिया जाता है और इन्हें फालतूकरार कर समाप्त भी कर दिया जाता रहै। ऐसे प्रशासनों की पुलिस को कोई नैतिक तथा विधिक रोक भी नहीं होती है और उपर्युक्त अपराधियोंया असामाजिक व्यक्तियों को विनष्ट करने की छूट रहती है। ऐसी पुलिस परमगुप्त भी रहती है। परमगुप्त पुलिस की संरचना और प्रकार्यात्मकता और भी कठोर होती है। और जो अपराधी या असामाजिक व्यक्ति घोषित हो जाते हैं, वे परम स्थिति में भुक्तभोगी हो जाते हैं। और जब इस पुलिस अतंक को व्यापक कर दिया जाता है, तब भी सभी समाजिक व्यक्ति परम स्थिति में पड़ जाते हैं। राज्य, प्रशासन को कार्य करने की छूट तथा सभी प्रकार के विशेषाधि कार प्राप्त हो जाते हैं। सामूहिकहत्या या जेनोसाइड साधारण नर-वध से भिन्न होताहै। जर्मनऐडोल्फ आइकमन् को किसी भी नैतिकता या वैधता का प्रश्न नहीं था। लक्ष्य महत्वपूर्ण था, यूरोप से सभी यहूदियों की परिसमाप्ति साध्य थी और इसकी पूर्ति के लिए जो कुछ भी किया जाता था, उसे सम्पन्न करने वाले व्यक्ति के समक्ष नैतिक या वैध कार्य निष्पादनों का प्रश्न नहीं था, वह मात्र एक यंत्र था, एक निष्प्राण व्यक्ति था। आणविक युद्ध या किसी अन्य युद्ध में सैनिक भी परम स्थिति में ही रहता है और कोई व्यक्ति इसलिए गोली का शिकार बनाया जाता चूँकि वह शत्रु मात्र है और जो प्रहार करता है उसके लिए औचित्य अथवाअनौचित्य का कोई प्रश्न नहीं रहताहै। आणविक युद्ध में योद्धा और जो योद्धा नहीं है वे भी समानतः विनाश के क्षेत्र में आ जाते हैं।[9] पुलिस द्वारा भी नृशंसताएँ बरती जाती है। विविध आयोगों ने इन पर समुचित प्रकाश डाला है। अर्थात् पुलिस भी हिंसा करती है। दोष स्वीकृति, न्याय विधान के परे दण्ड देने और आदि के उद्देश्य से पुलिस हिंसाएँ करती हैं और सभी देशों में इसके दृष्टान्त पाये गये हैं।अर्थात राजनीतिक अपराध से उस अपराध का अभिप्राय है जो राजनीतिक व्यूह रचकर तथा एक प्रकार का बौद्धिक कलेवर प्राप्त कर व्यक्ति के स्वातंत्र्य, स्वाभाविक स्वत्व बोध का हनन करता है और जो

इस व्यूह को मान्यता नहीं प्रदान करता है, उसे विभिन्न शारीरिक और मानसिक यातनएँ प्रदान कर विनष्ट करता है। हिंसा यह रूप अत्यन्त भयावह होता है और राजनैतिक प्रहार तथा विविध दबाव सामान्य अपराध की भाँति ही सामुदायिक जीवन को अव्यवस्थित, विघटित तथा त्रस्त कर देते हैं।

सन्दर्भ सूची :

(1) वर्नर्ड राजेनर्ग, जर्वर तथा हांटन-संपादकगण-पास सोसाइटी इन क्राइसिस, पृ० 157 ।
(2) वही, पृष्ठ 158 ।
(3) वही, पृ० 159 ।
(4) वही, पृ० 159 ।
(5) वही, पृ० 159 ।
(6) वही, पृ० 160 ।
(7) वही, पृ० 161 ।
(8) वही, पृ० 166-168 ।
(9) वही, पृ० 142-167 ।

***

संगठित एवं गैर संगठित कामकाजी महिलाओं के शारीरिक स्वास्थ्य पर भोजन संबंधी आदतों का प्रभाव

*सुचिता कुमारी**

साधारण शारीरिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण स्वास्थ्य का एक प्रमुख अवयव है। शारीरिक स्वास्थ्य का अर्थ है, शरीर के सभी बाह्य एवं आन्तरिक अंगों का स्वस्थ एवं निरोग रहना तथा समन्वित होकर सक्रिय रूप से कार्य करना। अगर शरीर के सभी अंग स्वस्थ रहते हैं और सुचारू रूप से कार्य करते हैं तो शरीर स्वस्थ रहता है। शरीर के स्वस्थ रहने से ही मन, आत्मा एवं मस्तिष्क स्वस्थ रहता है। फलतः कार्य करने की क्षमताबढ़ती है और व्यक्ति उत्साहपूर्वक, कुशलतापूर्ण एवं व्यवहारपूर्वक किसीभी कठिन-से-कठिन कार्य को सम्पन्न कर लेता है।

जब व्यक्ति अस्वस्थ रहता है या बीमार रहता है तो उसे खुलकर भूख नहीं लगती है। व्यक्ति को चक्कर आना, जी मिचलाना, नींद ना आना, खिन्नता आदि भिन्न-भिन्न लक्षण दिखाई देने लगते हैं, जिससे वह क्रोधित, उदास, निराश, चिड़चिड़ा इत्यादि रहने लगता है। एसी परिस्थिति में वह किसी भी कार्य को मन से नहीं कर पाता है। इसके अतिरिक्त सिर्फ बीमारी न होना या बीमारियों से छुटकारा पानाही शारीरिक स्वास्थ्य का मतलब नहीं है, बल्कि उसे हाथ या पाँव से अपंग नहीं होना चाहिये। उसकी आँखें, कान, नाक एवं दाँत दोषरहित होने चाहिये, तभी हम कह सकते हैं कि व्यक्तिशारीरिक रूप से पूर्णतः स्वस्थ है।

शारीरिक स्वास्थ्य के निम्न लक्षण हैं :-

(1) त्वचा धब्बे रहित, कान्तियुक्त, लचकदार एवं झुर्रियाँविहीन होनी चाहिये ।

(2) नाक, कान और आँखें दोषरहित हों तथा स्पष्ट रूप से समन्वित होकर कार्य करते हों।

(3) बाल रूखे-रूखे नहीं बल्कि चमकदार एवं खिले-खिले हों।

(4) पाचन अंग ठीक से कार्य करते हों तथा खुलकर भूख लगती हो।

(5) दाँत सफेद, चमकदार हों एवं उनकी बनावट दोषरहित हो।

---

* शोध छात्रा, गृह विज्ञान, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

(6) साँस मीठी-मीठी एवं दुर्गन्ध रहित हो।
(7) गहरी निद्रा आती हो।
(8) श्वसन अंग, परिवहन अंग, माँसपेशियाँ, प्रजनन अंग इत्यादि स्वस्थ हों एवे समन्वित होकर सक्रिय कार्य करते हों।
(9) व्यक्ति का नाड़ी संस्थान, कंकाल तन्त्र, तन्त्रिका तन्त्र, मूत्राशय एवं मलाशय स्वस्थ हो तथा ठीक से कार्य करते हों।
(10) आँख, कान, नाक, त्वचा एवं जीभ सतेज हों तथा सक्रिय होकर समन्वित रूप से कार्य करते हों।
(11) शरीर के सभी आन्तरिक अंग रोगमुक्त हों एवं उनके आकार असाधारण रूप से बड़े अथवा छोटे न हों।
(12) शरीर का बाह्य एवं आन्तरिक अंग में समन्वय हो। शारीरिक गतिविधियाँ सुचारू रूप से सामान्य तरीके से एवं सरल गति से सम्पन्न होती हों।
(13) व्यक्ति को विश्रामावस्था में भी लिंग एवं आयु के अनुरूप उसकी नाड़ी गति, रक्तचाप, श्वसन गति इत्यादि सामान्य हो।
(14) शिशु की लम्बाई एवं भार में लम्बाई एवं भार के मानकों के अनुसार सतत, नियमित एवं निरन्तर वृद्धि होती हो।
(15) बढ़ती उम्र के बच्चों में वजन एवं लम्बाई में सतत, नियमित एवं बराबर वृद्धि होनी चाहिये।
(16) प्रौढ़ों में वजन स्थिर होना चाहिये तथा उनके वजन में अधिकाधिक 2.5 किलो की वृद्धि अथवा न्यूनता होनी चाहिये।
(17) व्यक्ति में कठिन परिश्रम करने की क्षमता एवं सहनशीलता होनी चाहिये।

खाद्य संबंधी जो आदत एक बार बन जाती है, वह सांस्कृतिक विरासत के रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है। कुछ व्यक्तियों को किसी विशेष वस्तु के प्रति रुचि एवं कुछ के प्रति अरुचि रहती है। अंग्रेजी में एक कहावत प्रसिद्ध है-"You can lead a horse to water, but you cannot make him to drink." यानी आप घोड़े को पानी के पास ले जा सकते हैं, पर आप उसे पीने के लिए बाध्य नहीं कर सकते हैं। इसी प्रकार आप किसी व्यक्ति के पास सुस्वादु, अतिपौष्टिक भोजन ले जा सकते हैं, परन्तु उसे खाने के लिए बाध्य नहीं कर सकते । उस भोजन को खाना उस व्यक्ति की आदत पर निर्भर करता है।

भूखा व्यक्ति प्रायः अपने उदर को भरने के लिए कोई भी खाद्य

पदार्थ ग्रहण कर लेता है परन्तु यह बात प्रत्येक परिस्थिति में सत्य नहीं होती है। अपनी सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परम्परा को पालन करने वाला व्यक्ति भूखा रहने पर भी किसी विशेष खाद्य पदार्थ को ग्रहण नहीं करता है। कुछ व्यक्ति गर्म, कुछ गुनगुना तथा कुछ ठंडा भोजन पसंद करते हैं। किसी विशेष भोज्य पदार्थ की तीखी गंध किसी व्यक्ति को पसंद पड़ती है तो कोई उसे पसंद नहीं करता है। कोई व्यक्ति अधिक नमक खाता है तो कोई कम। इस तरह से यह देखा जाता है कि खाने की आदत सभी व्यक्तियों में समान रूप से नहीं रहता। मनुष्यों की भोजन संबंधी आदतों को बनाने में कई कारक प्रभावक होते हैं। भोजन संबंधी आदतों पर किसी समुदाय का आर्थिक एवं शैक्षणिक स्तर, आहारों की उपलब्धि उनका मूल्य, सामाजिक एवं सांस्कृतिक आदतें, धार्मिक मान्यताएँ, परम्परागत मान्यताएँ, ग्रामीण एवं नगरीय निवास, आमदनी, परिवार की आकृति, गृहिणी का पोषणात्मक ज्ञान, शिक्षा एवं नौकरी, आयु एवं लिंग प्रभाव डालते हैं।

(i) **भौगोलिक प्रभाव**-आदिमयुग में मनुष्य अपने आस-पास के क्षेत्र में उपजा आहारीय पदार्थ या जानवरों का मांस ग्रहण कर अपनी भूख शांत करता था। जिस क्षेत्रमें जिस खाद्य वस्तु की उपज अधिक है वहाँ के लोग उस वस्तु को खाने के आदी हो जाते हैं । जहाँ पर आलू, शकरकन्द अधिक पैदा होता है वहाँ के लोग इनका अधिक सेवन करते हैं। बंगाल के लोग अधिकतर चावल एवं मछली का सेवन करते हैं तो पंजाब के रहने वाले गेहूँ, बाजरा और मांस का । जहाँ पर कन्द-मूल अधिक पैदा होती है और उनका उपयोग अधिक होता है वहाँ पर प्रोटीन कुपोषण अधिक होता है। जहाँ वर्षा अधिक होतीहै वहाँ चावल अधिक होता है, समशीतोष्ण कटिबंध के देशों में गेहूँ अधिक होता है और लोग स्थानीय उपज का अधिक सेवन करते हैं। आवागमन की सुविधा रहने के कारण अब स्थानीय भोज्य पदार्थों के अतिरिक्त अन्य स्थानों में उपजने वाले भोज्य पदार्थों का भी लोग सेवन करने लगे हैं।

(ii) **धार्मिक विश्वास का प्रभाव**-धार्मिक प्रवृत्ति होने के कारण कुछ धर्म के मानने वाले में कुछ विशेष पदार्थों का उपयोग नहीं किया जाता है यथा हिन्दू धर्मावलम्बी गाय का मांस उपयोग नहीं करते हैं, कट्टर ज्यूज एवं इस्लाम धर्म के मानने वाले सूअर का मांस नहीं खाते हैं, बौद्ध धर्म के मानने वाले शुद्ध शाकाहारी होते हैं।

(iii) **परम्परागत विश्वास का प्रभाव**-पौराणिक युग से ही खाद्य

पदार्थों के बारे में कुछ-न-कुछ धारणाएँ लोगों में चली आ रही हैं। परम्परागत अंधविश्वास ऐसी धारणाओं को जन्म देता है। इसका प्रमुख कारण आहारों की पोषण शक्ति के बारे में अज्ञानता है। आदिकालीन मनुष्यों में यह विश्वास प्रचलित था कि शेर का मांस खाने से मनुष्य शेर की तरह भयावना होता है, साँप का मांस खाने से व्यक्ति साँप की तरह धूर्त हो जाता है आदि । आज भी इथियोपिया में गर्भवती को पपीता खाने से गर्भपात हो जाता है। हमारे देश में भी यह मान्यता है कि मछली और दूध एक साथ खाने से त्वचा पर सफेद दाग और कुष्ट रोग होता है, अधिक पानी पीने से मोटापा होता है, डबल रोटी में रोटी से कम कैलोरी होती है, मछली खाने से मस्तिष्क तेज होता है, आलू खाने से मधुमेह होता है, दूध पीने से बदहजमी होती है, बैंगन खाने से खुजली होती है, दूध के साथ संतरे का रस पेट में दुध को फाड़ देता है आदि।

(iv) **ग्रामीण या नगरीय निवास का प्रभाव**-कृषि और नगरीय परिवारों के आहारों के उपयोग किए गए खाद्यों के बीच प्रमुख अन्तर डेरी के पदार्थों, अनाजों, शर्करा और वसा का होता है। कृषि परिवारों द्वारा इनका अधिक मात्रा में प्रयोग किया जाता है और मांस का प्रयोग कम मात्रा में किया जाता है।

(v) **आमदनी का प्रभाव**-खाद्य उपयोग की रीतियों का सर्वेक्षण परिवार की आमदनी और खाद्यों पर व्यय की गई मात्रा के बीच एक निश्चित संख्या को बताता है। जैसे-जैसे आमदनी में वृद्धि होती है वैसे-वैसे खाद्य पदार्थों पर अधिक व्यय होता है परन्तु अनुपात में वृद्धि धीमी दर से होती है। अधिक आमदनी वाला परिवार कम आमदनी वाले परिवार की अपेक्षा खाद्यों पर कम प्रतिशत व्यय करता है। जिस परिवार में आमदनी अधिक होती है, वे अधिक महंगे खाद्य पदार्थों का चुनाव करने लगते हैं। एक सर्वेक्षण में देखा गया कि मांस के सस्ते भाग कम आमदनी वाले परिवारों द्वारा उपयोग किये जाते हैं। कम आमदनी के परिवारों की एक सप्ताह की आहार सूची में मांस का उपयोग 24 प्रतिशत हुआ और मध्यम आमदनी एवं अधिक आमदनी की परिवारों में क्रमशः 37 और 44 प्रतिशत हुआ। आमदनी बढ़ने पर पौष्टिक आहार पर भी व्यय अधिक होने लगता है।प्रोटीनयुक्त आहार पदार्थ, विटामिन'ए', राइबोफ्लोबिन एवं एस्कार्बिक अम्ल का अधिक उपयोग होने लगता है।

(vi) **परिवार के आकृति का प्रभाव**-बड़े परिवार में कुल मात्रा में खाद्यों पर अधिक खर्च होता है, परन्तु प्रत्येक परिवार के सदस्यों द्वारा

खर्च की गई मात्रा छोटे परिवार की अपेक्षा कम होती है। बड़े परिवार में सदस्यों की संख्या अधिक होने से अधिक मिव्ययिता से भोजन तैयार किया जाता है। बड़े परिवारों में छोटे बच्चे भी साधारणतः अधिक होते हैं जिन्हें कुछ खाद्यों की आवश्यकता कम पड़ती है। अधिक मूल्य वाले खाद्य पदार्थों का उपयोग बड़ी गृहस्थियों में छोटी गृहस्थियों की अपेक्षा अधिक बचत के साथ होता है।

(vii) **आयु एवं लिंग का प्रभाव**-यह प्रायः देखा जाता है कि एक विशेष उम्र समूह के व्यक्तियों के लिए कुछ विशेष भोज्य पदार्थ होते हैं। एक लिंग के व्यक्ति जो भोज्य पदार्थ पसंद करते हैं दूसरे लिंग के नहीं करते हैं। मटर, मक्खन, जेली और दूध बच्चे अधिक पसन्द करते हैं। युवा अधिकतर चटपटा, तला, भूना भोजन पसन्द करते हैं। महिलाएँ हल्का भोजन, सलाद, सब्जी फल आदि पसन्द करती हैं। साधारण नियमानुसार लड़के और पुरुष, लड़कियों और महिलाओं की अपेक्षा अच्छे आहार का उपयोग करते हैं। एक अध्ययन में यह पाया गया कि संपूर्णतः छोटे बालक (10 वर्षों से कम आयु समूह) आम आहार लेते हैं, जिसके पश्चात दूसरे नम्बर पर परिवार के दूसरे सदस्य आते हैं और सबसे कम पर्याप्त आहार किशोर लड़कियाँ और गर्भवती महिलाएँ लेती हैं।

(viii) **गृहिणी के पोषणात्मक ज्ञान, शिक्षा संबंधी स्तर और नौकरी का प्रभाव**-जिन गृहिणियों को पोषणात्मक ज्ञान रहता है, वे अपने परिवार को कुछ हद तक संतुलित भोजन दे पाती हैं। जिन्हें पोषण का न्यूनतम ज्ञान भी नहीं रहता वे भोज्य तत्त्वों के बारे में नहीं जानती हैं। अतः उनके परिवार में सभी भोज्य समूहों का उपयेग नहीं हो पाता है।

परिवार में आहारों की पर्याप्तता का संबंध गृहिणियों के शिक्षा संबंधी स्तर से भी होता है। शिक्षित गृहिणियाँ भोज्य पदार्थों के पोषक मूल्यों को कुछ हद तक समझती हैं और परिवार में उसे लागू कर दोषपूर्ण भोजन की आदतों में सुधार लाती हैं। गृहिणी की औपचारिक शिक्षा और परिवार की आमदनी दोनों का प्रभाव, परिवार के सदस्यों की भोजन की आदत पर पड़ता है परन्तु शिक्षा संबंधी स्तर का प्रभाव आमदनी से अधिक रहता है। जिस परिवार की गृहिणी नौकरी करती है उस परिवार में खाद्य पर अधिक व्यय होता है।

(ix) **गरम और ठंडा भोजन**-कई देशों में अनेक संस्कृतियों में भोजन को दो रूप में वर्गीकृत किया जाता है-गर्म भोजन और ठंडा भोजन। मांस, अण्डे, फलियाँ, मछली, गिरी और तिलहन की गणना 'गरम'

आहार में की जाती है और फल, सब्जियों और दूध को ठंडे आहार में गिना जाता है। लोगों में धारणा होती है कि गरम भोज्य पदार्थ खाने से शरीर में गर्मी बढ़ती है एवं फोड़े-फुन्सी निकल जाते हैं। ठंडा भोजन खाने से शरीर में ठण्डक रहती है और सर्दी और गले में खराश हो जाती है।

(x) **संस्कृति का प्रभाव**-भोजन की आदत संस्कृति द्वारा प्रभावित होती है। अमेरिका में लोग नाश्ते में काफी पौष्टिक एवं स्वास्थ्य के अनुसार भोज्य पदार्थों का चुनाव करते हैं और उसको अधिक महत्त्व देते हैं । यूरोपवासी हल्का नाश्ता करते हैं और उसमें मक्खन रहित डबल रोटी या रौल और कॉफी का अधिक प्रचलन है। वहाँ के लोग भोजन में पेट भर पौष्टिक एवं गरिष्ट भोज्य पदार्थों का सेवन करते हैं। भारतवर्ष में पराठा, कचौड़ी, रोटी,समोसा आदि नाश्ते में होता है, एक किसान दोपहर में दिन का भोजन करता है, जबकि शहरी मजदूर घर से दिनभर अनुपस्थित रहता है इसलिए वह पूर्ण भोजन रात्रि में करता है। कुछ समाज में औरतें घर के पुरूषों के खाने के बाद भोजन करती है, कुछ परिवारों में बच्चों को भोजन घर के मुखिया के खाने के बाद मिलता है।

संदर्भ सूची :

(1) सलूजा, शीला, सलूजा चुन्नीलाल : कामकाजी महिला एवं समाधान, पुस्तक महल प्रकाशन, दिल्ली, 2001.
(2) स्वामीनाथन, एम० : आहार एवं पोषण, एन०आर०, ब्रदर्स प्रकाशन, इन्दौर, 2011.
(3) आर्याणी, सुशीला : भारतीय प्राचीन आहार एवं पोषण (आधुनिक परिप्रेक्ष्य में), जानकी प्रकाशन, पटना, 2016.
(4) मंगला कानगो : पोषण एवं आहार, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, 2011.
(5) अग्रवाल यतीश, अग्रवाल रेखा : स्वास्थ्य खाएँ तनमन रंगाएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, इलाहाबाद, कोलकाता, 2014.

***

भारतीय राजनैतिक व्यवस्था में जनता दल की भूमिका

*डॉ. लक्ष्मी कुमारी**
*नवरत्न कुमार***

किसी भी राजनीतिक व्यवस्था के अंतर्गत विभिन्न दलों की भूमिका का विश्लेषण उनके द्वारा सम्पादित कार्यों के आलोक में किया जाता है। जो दल के सैद्धांतिक विचार धाराओं पर आधारित है। विकसित राज्यों में तो दलीय पद्धति स्वयं नीति निर्माण का प्रमुख आधार होता है।[1]

लेकिन, जनता दल और उसके समर्थक घटक दलों के मध्य वैचारिक एकरूपता का प्रायः अभाव था। 1989 ई० का चुनाव जनता दल द्वारा उच्च राजनीतिक स्तर पर भ्रष्टाचार को मुद्दा बनाकर लड़ा गया। दूसरा प्रमुख मुद्दा राजकीय आतंकवाद था। जबकि भारतीय जनता पार्टी द्वारा राम जन्म भूमि बाबरी मस्जिद विवाद को प्रमुख मुद्दा बनाया गया था। अपने संयुक्त प्रयासों के बावजूद राष्ट्रीय मोर्चा (जनता दल) कांग्रेस को लोकसभा में सबसे बड़े दल के रूप में उभड़ने से नहीं रोक सका। लेकिन राष्ट्रीय मोर्चा (नेशनल फ्रंट) भारतीय जनतापार्टी (भाजपा) और बाम दलों के बाहरी समर्थन से सरकार बनाने में सफल हुआ। लेकिन, दल के नेता के चुनाव पर ही घटक दलों के मध्य मतभेद प्रारंभ हुआ। लेकिन विश्वनाथ प्रताप सिंह के समर्थकों ने बाजी मार ली। फलस्वरूप चन्द्रशेखर को शिकायत का अवसर प्राप्त हो गया और उन्होंने अंततः जनता दल (एस) का अलग से निर्माण किया जो अंततः इस सरकार के पतन का कारण बना। मंडल आयोग की अनुशंसाओं को क्रियान्वित करने के प्रश्न पर घटक दलों के मध्य अंतः कलह उपस्थित हो चुका। भाजपा इससे सबसे अधिक हतप्रभ थी। क्योंकि राम जन्मभूमि को मुद्दा बनाकर इस दल द्वारा हिन्दू मतों को एकजूट करने का प्रयास इससे प्रभावित हो गया। हिन्दु समाज भी नौकरी में आरक्षण के प्रश्न पर विभाजित हो गया था। अतः 9 महीनों में ही विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार का पतन हो गया।

श्री सिंह द्वारा सामाजिक न्याय को मुद्दा बनाकर अपना "वोट

---

* शोध निर्देशिका, एसासेसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, जे.डी.वीमेंस कॉलेज, पटना
** मकान सं - १७०/७ उत्तरी आनन्दपुरी पश्चिमी बोरिंग कैनाल रोड, पटना

बैंक"बनाने का यह प्रयास असफल रहा जो आगे के निर्वाचन के परिणामों से स्पष्ट हुआ। राष्ट्रीय दलों की शक्तियों में गिरावट आयी और क्षेत्रीय / राज्य स्तरीय दलों की शक्ति में वृद्धि हुयी।

जहाँ तक दलीय नेतृत्व का प्रश्नहै श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह अथवा श्री लालकृष्ण आडवाणी आम जनता के बीच अपनी पैठ नहीं बना सके थे। जबकि निर्वाचन को नेतृत्व का निजी व्यक्तित्व, दृष्टिकोण और लोकप्रियता प्रभावित करता है। श्री विश्वनाथ प्रतापसिंह द्वारा मंडल आयोग की अनुशंसाओं के क्रियान्वयन के विरूद्ध 'आत्मदाह' करने वालों के प्रति सहानुभूति व्यक्त नहीं किया जाना, और आडवाणी द्वारा भागलपुर दंगों में मारे गए लोगों के प्रति सहानुभूति व्यक्त नहीं किया जाना, निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति थी। संभवतः ये नेता इस आधार पर कार्य कर रहे थे कि जाति और सम्प्रदाय के आधार पर देश में आन्दोलन तीव्र हो रहा है। लेकिन इस दृष्टिकोण को आम जनता स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। अतः विश्वनाथ प्रतापसिंह की लोकप्रियता जो 1989 के निर्वाचन से पूर्व थी निश्चय ही 1991 के निर्वाचन के समय काफी कम हो चुकी थी। 1991 ई० के निर्वाचन की अवधि में राजीव गाँधी की हत्या का लाभ कांग्रेस को कुछ हद तक अवश्य प्राप्त हुआ। लेकिन, उनकी हत्या का निर्वाचन पर उतना प्रभाव नहीं पड़ा। जितना कि 1984 में श्री इंदिरा गाँधी की हत्या का प्रभाव अगले चुनाव पर पड़ा था। यह निश्चय ही मतदान व्यवहार की दृष्टि से एक स्वस्थ विकास माना जा सकता है।[2]

इस क्रम में यह भी उल्लेखनीय है कि स्वतंत्रोतर भारत में सामाजिक संरचना में जो परिर्वतन आया था उसके अन्तर्गत सम्पन्न किसानों द्वारा कृषिउत्पादों के लिए आवश्यक निवेशों पर सरकारी सहायता की मांग उठ रही थी। लेकिन इस क्रम में उन्हें कई प्रकार की चुनौतियों यथा सीमांत किसान, बटाईदारों, भूमिहीन कृषक मजदूरों की मांगें तथा धनी किसानों द्वारा उनका शोषण। चूंकि, ग्रामीण समाज जाति पर मूलतः विभाजित था, अतः धनी किसानों द्वारा कुर्मी, जाट, यादव आदि जाति के आधार पर संगठित करने का प्रयास किया गया। यह प्रवृति सिर्फ उत्तर भारत में ही नहीं, बल्कि दक्षिण भारत में भी पनपी। कर्नाटक में वोकालिंग और लिंगायत, गुजरात में पटेल और पटिदार के रूपमें संगठित हुए।[3]

इसी पृष्टभूमि में देवीलाल ने 9 अगस्त 1990 को प्रस्तावित रैली में प्रकाश सिंह बादल (पंजाब) महेन्द्र सिंह टिकैत (उत्तरप्रदेश)

एच०डी०देवगौड़ा (कर्नाटक) आदि को आमंत्रित किया क्योंकि वे सभी सम्पन्न वर्ग के किसानों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। सम्पन्न किसानों और अनुसूचित जातियोंऔर भूमिहीन किसानों की चुनौतियों को सिमित करने की दृष्टि से कांशीराम को आमंत्रित किया गया। इस प्रकार देवीलाल की राजनीतिक महत्वकांक्षा 1990 ई० आते-आते स्पष्टतः सामने आ गया और उन्होनें कृषि क्षेत्र में अधिकतम राशि दिए जाने के लिए सरकार पर दबाव डालना प्रारभ कर दिया। यह प्रवृति अन्य प्रान्तों में भी तेजी से विकसित हुयी।

सामाजिक सद्भावना स्थापित करना और सामाजिक मतभेदों को समन्वित कर एकता की स्थापना किसी भी सरकार का प्रमुख दायित्व होता है। भारतीय समाज जाति,धर्म, अस्पृश्यता आदि पर आधारित समाज है। ये ऐसे कारक हैं, जिन्होंने भारतीय समाज की एकता के मार्ग में निरंतर व्यवधान स्थापित किया है। भारत में राष्ट्र निर्माण के लिए और राजनीतिक विकास के लिए इन परस्पर विरोधी और प्रतिस्पर्धात्मक सामाजिक संरचना में एकता स्थापित करना एक कठिन कार्य रहा है।

उपरोक्त पृष्ठभूमि में ही विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार द्वारा पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी नौकरियों एवं विभिन्न संस्थानों में आरक्षण लागू करने की नीति का विश्लेषण किया जा सकता है। मंडल आयोग की अनुशंसा संभवतः इस आधार पर आधारित था कि अगड़ी जातियाँ विशेषाधिकार संपन्नऔर पिछड़ी जातियाँ उपेक्षित है। इस आधार पर अगड़ी जातियों एवं पिछड़ी जातियों के लिए सरकारी नौकरियों में अधिकतम सीमा का निर्धारण करना था।

जहाँ तक जातीय आधार पर आरक्षण का प्रश्न है। यह सुविधा प्रारंभ से ही अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लिए लागू थी। पं०नेहरू की सरकार द्वारा काका कालेलकर की अध्यक्षता में पिछड़ी जातियों को आरक्षण देने के प्रश्नपर आयोग का गठन किया गया था। लेकिन उसकी अनुशंसाओं को पं०नेहरू की सरकार द्वारा लागू नहीं किया गया। जनता पार्टी की सरकार द्वारा गठित मंडल आयोग अनुशंसाओं को पं०नेहरू की सरकार द्वारा गठित मंडल आयोग की अनुशंसाओं को श्रीमती इंदिरा गाँधी अथवा राजीव गाँधी की सरकार द्वारा लागू नहीं किया गया। संभवतः काँग्रेस सरकारें भारतीय समाज की सामाजिक प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष ही स्थिति से पूर्णतः परिचित थी। अतः पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण क्रियान्वित कर कांग्रेस की सरकारे सामाजिक प्रतिस्पर्धा अथवा

संघर्ष को आगे बढ़ाने के पक्ष में नहीं थी। दुसरे, यदि भारतीय सामाजिक संरचना का गहन विश्लेषण किया जाय तो यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय समाज में अनुसूचित जातियों और जनजातियों को छोड़कर अन्य जातियों के साथ भेदभाव नहीं किया जाता था। अतः अनुसुचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षण की व्यवस्था की गयी थी। जबकि अन्य समस्त सामाजिक वर्गो और जातियों को समानता का मौलिक आधार प्रदान कर उन्हें आगे बढ़ने का अवसर दिया गया था।[4]

लेकिन विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार द्वारा मंडल आयोग की अनुशंसाओं को लागू कर 'अन्य पिछड़ी जातियों' का वोट अपने दल के लिए सुरक्षित करने का प्रयास किया। इस निर्णय से उसके सहयोगी दलों में भी प्रतिक्रियाएं उत्पन्न हुयी। भाजपा ने इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर अपने दल की उपेक्षा करने की बात कही तो पश्चिम बंगाल के तत्तकालीन मुख्यमंत्री तथा साम्यवादी दल के प्रमुख नेता श्री ज्योति वसु ने भी इस निर्णय पर अप्रसन्नता व्यक्त की। यही स्थिति बीजू पटनायक, मुख्यमंत्री उड़ीसा की थी।

इस प्रकार संविद सरकार का नेतृत्व करने वाले प्रधानमंत्री श्री सिंह द्वारा सहयोगी दलों को साथ लेकर नीति का परित्याग निश्चय ही दुर्भाग्यपूर्ण माना जा सकता है। घटक दलों के साथ सहयोग के बदले टकराव की नीति का अवलंबन किया।

दूसरी तरफ जब अगस्त 1990 ई० में श्री सिंह की सरकार द्वारा जब मंडल आयोग की अनुशंसाओं को लागू किया गया तो भारतीय समाज में जातिगत प्रतिस्पर्द्धा और संघर्ष का दौर प्रारम्भ हुआ और भारतीय समाज और अधिक विभक्त हो गया।[5] जो अंततः उस सरकार के लिए घातक हुआ और अविश्वास प्रस्ताव पर पराजित होकर सरकार को त्यागपत्र देना पड़ा।

भारतीय संविधान द्वारा भारत को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। क्योंकि भारतीय समाज बहुजातीय होने के साथ-ही-साथ ही अनेक धर्मों में विभक्त है। धार्मिक आधार पर दलों का गठन, सम्प्रदायिक आधार पर राजनीतिक दलों द्वारा मत प्राप्त करने का प्रयास निरंतर होता रहा है। भाजपा द्वारा शायद इसी हिन्दू धार्मिक भावना को उभारकर राम-मंदिर-बाबरी मस्जिद का मुद्दा उठाया गया था। भाजपा श्री सिंह की सरकार का बाहर से समर्थन दे रही थी। इस दल द्वारा जब यह देखा गया कि सरकार द्वारा हिन्दू समाज को विभाजित किया जा रहा है

तो इसने एक बार फिर से इस मुद्दे को उठाया। भाजपा द्वारा यह आरोप लगाया गया कि सरकार आम सहमति द्वारा इसे दूर करना नहीं चाहती है।

अतः भाजपा ने राम मंदिर का मुद्दा एक बार फिर उछाला और इस दल के तत्कालीन अध्यक्ष श्री आडवाणी ने इस विवाद से संबंधित मुद्दा को लोगों को अवगत कराने के लिए रथ यात्रा प्रारंभ की। दूसरी तरफ उन्होंने सरकार को विधिवत इस बात की सूचना दे दि कि 30 अक्टूबर को राम मंदिर का विधिवत शिलान्यास अयोध्या में किया जायेगा। समस्या के समाधान के लिए राष्ट्रीय एकता परिषद की बैठक बुलायी गयी। लेकिन इस समस्याओं का कोई हल नहीं निकल सका। हिन्दु और मुसलमान नेताओं के मध्य बातचीत का भी कोई परिणाम नहीं निकल सका। अतः श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार द्वारा श्री अडवाणी को गिरफ्तार कर लेने का निर्णय लिया गया। बिहार के समस्तीपुर में जब आडवाणी को गिरफ्तार कर लिया गया तो भाजपा द्वारा सरकार से समर्थन वापस ले लिया गया। लोकसभा में श्री सिंह अविश्वास मत प्राप्त करने में विफल रहे और उन्हें प्रधानमंत्री का पद छोड़ना पड़ा।

जनता दल के प्रधानमंत्री के रूप में इस दल की और इस सरकार की भूमिकाएं अन्य क्षेत्रों में भी विफल ही मानी जा सकती है। दल सरकार का सच्चे अर्थ में नेतृत्व प्रदान करने में विफल रही। दल के आंतरिक कलह के कारण इस सरकार द्वारा कोई स्पष्ट औद्योगिक या कृषि नीति का निर्माण नहीं किया जा सका।

जनता दल की सरकार सिर्फ नारों और उच्च आदर्शों की घोषणा तक ही सीमित रह गयी। पंचवर्षीय योजना लागू नहीं किया गया जा सका। रामकृष्ण हेगड़े द्वारा योजना आयोग के उपाध्यक्ष पद से त्यागपत्र देने के बाद उस पद पर कोई भी नियुक्ति नहीं हो सकी। इस प्रकार एक महत्वपूर्ण संस्था निरर्थक बन गयी। इस सरकार द्वारा किसानों का कर्ज माफ करने की घोषणा तो की गयी, लेकिन कोई आर्थिक नीति की रूप रेखा प्रस्तुत नहीं की जा सकी।

पंजाब और जम्मू कश्मीर समस्या के वास्तविक समाधान के लिए सरकार द्वारा कोई पहल नहीं की गयी। नौकरशाही और राज्यपालों के साथ आतंकवाद और उग्रवाद को किस प्रकार रोका जाय, इस प्रश्न पर भी विवाद कायम रहा।

प्रशासनिक क्षेत्र में सिर्फ एक कार्य इस दल की सरकार के द्वारा कुछ राज्यपालों को परिवर्तित करना माना जा सकता है। पंजाब में निर्मल मुखर्जी के स्थान पर विरेन्द्र वर्मा को तो जम्मू कश्मीर में जगमोहन के स्थान पर गिरीश सक्सेना को राज्यपाल बनाया गया। लेकिन समस्या के समाधन के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया।

इस प्रकार यदि विश्वनाथ प्रतापसिंह की अध्यक्षता में कार्यरत जनतादल के नेतृत्व वाली सरकार की उपलब्धि के रूप में सिर्फ मंडल आयोग की अनुशंसाओं को माना जाएगा। स्वच्छ शासन बोफोर्स तोप सौदे मे पद का दुरूपयोग कर लाभ प्राप्त करने वालों को एक सप्ताह के भीतर जेल में बंद करने की घोषणा जैसी चुनावी वादे मात्र वादे रह गए। अतः फाइनेनासियल एक्सप्रेस ने इस संदर्भ में लिखा कि विश्वनाथ प्रताप सिंह की सरकार ने सिर्फ चालाबाजी और चालाकी की नीति का अवलंवन किया।[6]

किसी भी दल का मुख्य कार्य हित समूहीकरण का होता है। समाज के अंतर्गत वर्तमान हितों को सामान्य आधार प्रदान कर नीति का निर्माण दलीय व्यवस्था का मूल आधार होता है। लेकिन जनता दल इसके विपरीत मंडल आयोग की अनुशंसाओं को क्रियान्वित कर उनमें परस्पर संघर्ष की स्थिति उत्पन्न की। उनके द्वारा अपने सहयोगी दलों को भी कमजोर बनाने का प्रयास किया गया। जो अयोध्या मुद्दे पर श्री मुलायम सिंह यादव द्वारा विधान सभा में भी दिए गए वक्तव्य से स्पष्ट होता है। इस दल के नेता ने भाजपा और वामदलों को एक दूसरे के विरूद्ध उपयोग कर सत्ता में बने रहने का प्रयास किया। यह निश्चय ही इस दल की सरकार के लिए घातक सिद्ध हुआ। दल के अंतर्गत वर्तमान अर्न्त कलह के कारण चन्द्रशेखर और देवीलाल द्वारा इस दल से अलग जनता दल (एस) का निर्माण किया गया और 1990 में इस सरकार के पतन के बाद कांग्रेस के साथ मिलकर जनता दल (एस) द्वारा नवीन सरकार का गठन किया गया।

संसदीय शासन व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता मंत्रिमंडल का सामूहिक नेतृत्व एवं नीतिगत प्रश्नों पर एकता माना जाता है। लेकिन जनता दल की सरकार के समय इस सुस्थापित संसदीय परंपरा का भी पालन नहीं किया गया। विभिन्न मंत्रियों के द्वारा अलग-अलग घोषणा करना सामान्य बात थी। दल के कुछ ऐसे भी नेता थे, जिनकी अपनी निजी छवि थी। उनका अपना जनाधार था औरदल के अंतर्गत भी उनका

निजी प्रभाव था। वे भविष्य में नेतृत्व की महत्वकांक्षा भी संजोए हुए थे। अत: वे जनता के समक्ष अपनी साफ छवि और लोकप्रिय नीतिगत घोषणाओं के द्वारा अपने जनाधार में और वृद्वि करना चाहते थे। जैसे- तत्कालीन रेल मंत्री जार्ज फर्णांडीस द्वारा रेलवे की घाटे की बात कही गयी और यह स्पष्ट किया गया कि इस घाटे की पूर्ति केंद्र सरकार करें। आम जनता पर इसका बोझ न डाला जाय।[7]

इस क्रम में यह उल्लेखनीय है कि इस प्रकार की घोषणा करने वाले अकेले रेलवे मंत्री ही नहीं थे। अनेक अन्य मंत्रियों द्वारा नीतिगत घोषणाएं बिना मंत्रिमंडल के निर्णय या प्रधानमंत्री के परामर्श से ही की जा रही थी। वित मंत्री मधु दडंवते द्वारा भी बिना प्रधानमंत्री के परामर्श के ही अनेक घोषणाएं की गयी। आर्थिक उदारीकरण की राजीव गाँधी की सरकार की नीति को जारी रखने के एक प्रेस प्रतिनिधि के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने इसे नकारात्मक रूप में उत्तर दिया।

जनता दल (राष्ट्रीय मोर्चा) की सरकार द्वारा चुनाव घोषणापत्र में काम के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने की बात कही गयी थी। लेकिन यह प्रस्ताव अव्यवहारिक था। अत: वित्त मंत्री को इसे अस्वीकार कर देना पड़ा।

जनता दल सरकार की नीतियों एवं उपलब्धियों का विश्लेषण करते हुए प्रसिद्ध समीक्षक शाम लाल ने स्पष्ट किया कि जनता दल की सरकार इस बात को समझने में पूर्णतः असफल रही कि राष्ट्रीय नीति का अर्थ समाज में साम्प्रदायिक, जातीय एवं प्रजातीय विभाजन के मध्य समन्वय स्थापित करना होता है न कि किसी हित विशेष का दूसरे हित के साथ संतुलन को स्थापित करना। इसी आधार पर उन्होनें11 आरक्षण के निर्णय को राष्ट्रीय नीति का प्रतिगामी बतलाया।[8]

उन्होंने अपने लेख में यह भी स्पष्ट किया कि यदि किसी राजनीतिक समाज में सामाजिक एकरूपता की स्थिति कायम है तो प्रत्येक व्यक्ति या समूह को बहुमत में आने की आशा रहती है। भारत जैसे राजनीतिक समाज में जहाँ अत्यधिक धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक असमानता कायम है और समाजिक एकजुटता का अभाव हैं, उनमें यह भावना हो सकती है कि वे विधायिका से पृथक मंच पर अपनी समस्याओं का समाधान ढूढने का प्रयास करें। जनता दल की सरकार द्वारा इस तथ्य की तरफ ध्यान नहीं दिया गया कि यह प्रवृति राष्ट्रीय एकता और समाजिक सदभावना के लिए कितना घातक होगा।[9]

राजनीतिक दलों का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य राजनीतिक भर्ती का होताहै। दल के द्वारा नवीन सदस्यों को दल में स्थान दिया जाता है। दलीय नीतियोंको प्रसारित कर जनमत को अपने पक्ष में लाने का प्रयास किया जाता है। इसके लिए उपर से नीचे तक दलीय संगठन एवं संरचना की आवश्यकता होती है। लेकिन जनता दल अपने इस कार्य में पूर्णतः विफल रही। सर्वप्रथम इसका अपना कोई सुदृढ़ दलीय संरचना नहीं थी। चुनाव के अवसर पर कुछ दल जनता दल के रूप में संगठित हो गए। इसका प्रमुख ग्रुप जनमोर्चा स्वयं कुछ ही दिनों पूर्व कांग्रेस पार्टी से अलग हुआ था। इसमें विलय करने वाले अन्य कुछ दल क्षेत्रीय अथवा राज्य स्तरीय दल थे। उनका अपना संगठन या संरचना थी। अतः जब वे क्षेत्रीय दल इससे अलग हो गए तो जनता दल ताश के पते के घर की तरह धराशायी हो गयी। यत्र-तत्र ही इसका संगठन संगठनात्मक संरचना राज्य स्तर पर कायम रहा। संगठन के अभाव में अन्य कार्य यथा नवीन सदस्यों को सदस्यता प्रदान करना तो पूर्णतः उपेक्षित ही रहा। इस स्थिति में इसका अस्तित्व पहले से ही संदेहास्पद था। अतः जब मुलायम सिंह यादव या नवीन पटनायक (बीजू जनता दल) पुनः लालू प्रसाद यादव (बिहार) आदि द्वारा नवीन दलों के निर्माण के बाद जनता दल हासिए पर चला आया।

एक विपक्षी दल के रूप में जनता दल की भूमिका के संदर्भ में कहा जा सकता है कि जनता दल अपने आप को रूढ़िवादी (तथाकथित समाजवादी) विचारधारा से उपर नहीं उठा सका। शीतयुद्ध की समाप्ति के बाद विश्व आर्थिक उदारीकरण और बाजार व्यवस्था की ओर तेजी से अग्रसर था। क्योंकि, सामाजिक अर्थव्यवस्था का प्रयोग असफल हो चुका था। सोवियत संघ का विघटन हो चुका था और चीन भी आर्थिक उदारीकरण की ओर अग्रसर था।

वैश्वीकरण की इस दौर में जब नरसिम्हा राव के नेतृत्व वाली सरकार द्वारा आर्थिक उदारीकरण की नीति का अवलंवन प्रारंभ किया गया तो इस दल द्वारा इस नीति का विरोध किया गया। भाजपा द्वारा स्वदेशी मंच की बात की जा रही थी। जनता दल द्वारा भारत सरकार के उस निर्णय का भी विरोध किया गया जब इसके द्वारा विश्व आर्थिक संगठन (डब्लू०टी०ओ०) की सदस्यता प्राप्त करने का निर्णय लिया गया।

राजनीतिक क्षेत्र में इस द्वारा राज्यों को अधिक स्वायत्तता प्रदान करने और संविधान के अनुच्छेद 356 के आधार पर केन्द्रीय हस्तक्षेप का

विरोध किया गया। अतः जब कर्नाटक में एस०आर०बोम्मई की सरकार को बर्खास्त कर वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू किया गया तो इस दल द्वारा इसे सर्वोच्च न्यायालयमें चुनौती दी गयी। न्यायालय द्वारा जब यह निर्णय दिया गया कि किसी सरकार को बहुमत का समर्थन प्राप्त है या नहीं इसका निर्धारण विधानसभा के पटल पर होगा, बाहर नहीं।

बाबरी मस्जिद गिराये जाने के बाद इस दल के द्वारा इसके विरूद्ध तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की गयी। जब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा जय सिंह नामक विवाद में निर्णय दिया गया तो जनता दल द्वारा इसे क्रियान्वित करने पर विशेष बल दिया गया। यह उल्लेखनीय है कि जनता दल की पूर्व की सरकार के एक निर्णय को इस बाद के द्वारा चुनौती दी गयी थी।

इस प्रकार विपक्षी दल के रूप में इसकी भूमिका पूर्णतः रचनात्मक नहीं माना जा सकता है जबकि कांग्रेस पार्टी द्वारा इस दल की सरकार के समय रचनात्मक विपक्ष की भूमिका का निर्वाह किया गया था।

संदर्भ-सूची :

(1) जी० सारतोरी, पार्टिज एण्ड पार्टी सिस्टम : ए फ्रेमवर्क फॉर एनिलिसस (कैब्रिज यूनिवर्सीटी प्रेस लंदन, 1976) पृष्ठ 324.
(2) डॉ० नन्द किशोर कुमार,'पैराडिज्म ऑफ इलक्टोरल कल्चर इन इंडिया : एन एनालिटिकल परस्पेक्टिव, डॉ० वी० वचल पू० उ० पृ 85.
(3) वही पृ० 90-102.
(4) सी० पी० भाँवरी रिजर्वेशन ए सोशल / सोशल डिसासिव पॉलिसी फाइनेन्सिय एक्सप्रेस।
(5) द टाइम्स ऑफ इंडिया,(दिल्ली 8 अगस्त, 1990)
(6) फाइनेनसियल एक्सप्रेस, 27.12.1990
(7) माया 15 जनवरी, 1990 पृष्ठ 102
(8) शामलाल,द नेशनल सीन, टाइम्स ऑफ इंडिया, 22 सितम्बर, 1990
(9) वही ।

***

बाल श्रमिकों के पृष्ठभूमि (आयाम) का विश्लेषणात्मक अध्ययन

*डॉ. सुनील कुमार सुमन**

सारांश

बाल श्रमिक किसी भी सभ्य समाज एवं देश के लिए एक अभिशाप हैं, भारत में बाल श्रम एक राष्ट्रीय समस्या बन चुकी है, अनेक गम्भीर प्रयत्नों के बावजूद भी बाल श्रमिकों की संख्या कम होने के बजाए तीव्रगामी ढंग से बढ़ती जा रही है। समसामायिक समस्या को दृष्टिगत रखकर शोध आलेख में उपमुक्त समस्या का चयन मधुबनी जिला के स्थित जायनगर क्षेत्र को चयनित किया उपयुक्ति शोध के उद्देश्यों में बच्चों के शारीरिक, मानसिक विकास, जीवन में स्वास्थ्य एवं साक्षरता के गुणों की प्राप्त करना प्रमुख है। इसके लिए वर्णनात्मक, अन्वेषणात्मक प्रारुप के माध्यम से आकड़ों का संकलन उस क्षेत्र के सम्पूर्ण परिवारों में से यादृच्छिक स्तरीकृत न्यादर्श के माध्यम 50 परिवारों का चयन किया और साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सूचना प्राप्त की सूचना उत्तरदाताओं का विवेचन से परिणाम निकला कि बाल श्रमिक गरीब–परीवार, पिछड़ी जाति, अनुसूचिम जाति के लोग हैं, इनमें शिक्षा का अभाव भी यदि उचित जन–योजनाओं,निःशुल्क जन शिक्षा के माध्यम से अभिशक्ति बाल–श्रम की समस्या से निजात मिल सकता है।

बाल श्रम की पृष्ठभूमिः–

किसी भी सामाजिक संरचना में व्यक्तियों की अहम् भूमिका होती है, प्रत्येक समाज का स्वरुप व्यक्तियों के व्यवहार पर निर्भर करता है, व्यवहारों का निर्धारण सम्बन्धित समाज के संस्थापित सामाजिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में होता है। यदि हम ऐतिहासिक दृष्टि से समाज की सतत्यता पर दृष्टि डाले तो यह स्पष्ट होता है कि समकालीन समाज में बच्चों का समाजीकरण तत्कालीन मान्य मूल्यों के सापेक्ष ही किया जाता रहा है। लेकिन काल एवं समय के परिवर्तन के समय सामाजिक मूल्यों में भी बदलाव होता गया। वर्तमान में पूर्व संस्थापित सामाजिक मूल्यों की स्थिति में भौतिक मूल्य की प्रधानता होती जा रही है जिसके आधार पर सामाजिक विकास की अवधारणा विकसित हुयी है। विकास के मूल्य में भौतिक संसाधनों की उपलब्धता की प्रधानता होती है ऐसी दशा में समाज के निर्माण की इकाई के प्रारम्भिक समूह परिवार के प्रतिमान में समसामयिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में कार्य करने लगते है फलतः बालक का समाजीकरण तदनुरुप होने लगता है। ऐसे समाजीकरण के कारण ही बालक धर्नाजन के प्रति उन्मुख होता है, जिसकी परिणति बाल श्रम के रुप में होती है। भारतीय समाज में बालश्रम में बालश्रम की सबसे बड़ी त्रासदी यह है कि न तो बाल श्रमिकों से

* सहायक प्राध्यापक (अतिथि शिक्षक), मनोविज्ञान विभाग, डी. बी. कॉलेज जायनगर, मधुबनी

सम्बन्धित सही आंकड़े उपलबध है और न इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा है। वर्तमान में हमारे देश में लगभग 30 करोड़ बच्चे ऐसे हैं जो विद्यालय नहीं जाते हैं। इनमें से कुछ को छोड़कर अधिकतर बच्चे बाल श्रमिक ही हैं जिसमें से अधिकतर बाल श्रमिकों का प्रवास महानगरों एवं कस्बों की तरफ होता है, जो अपना जीवन निम्न स्तर पर व्यतीत करने के लिए बाध्य होते हैं।

बाल श्रमिक की अवधारणाः–

बाल श्रमिक किसी भी सभ्य समाज एवं देश के लिए एक अभिशाप हैं, भारत में बाल श्रम एक राष्ट्रीय समस्या बन चुकी है। बाल श्रमिक की समस्या से भारत का कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है। अनेक गम्भीर प्रयासों के बाद भी बाल श्रमिकों की संख्या कम होने के बजाय निरन्तर बढ़ती जा रही है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठनः–

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनुसार वर्तमान में विश्व में लगभग 16 करोड़ बच्चों को अपनी आजीविका के लिए श्रम करना पड़ता है। योजना (2012), ILO के आंकड़ों के अनुसार– विश्व में 25 करोड़ बाल श्रमिक हैं, जिनमें से 15.2 करोड़ एशिया, 7.6 करोड़ अफ्रीका तथा 1.8 करोड़ में अन्य महाद्वीप शामिल हैं। वहीं भारत में 4 करोड़ 44 लाख बाल श्रमिक हैं जो कुल श्रमशक्ति का लगभग 6 प्रतिशत है। कुरुक्षेत्र (2008), संयुक्त राष्ट्र की रिपोर्ट के अनुसार – 20 लाख से अधिक बच्चे यौन कर्मी के रुप में काम कर रहे हैं। इस प्रकार बाल श्रमिकों के दो भागों में बांटा गया है–

1.वैधानिक बाल श्रमिक– वे बरल श्रमिक जिनकी आयु 14 वर्ष से अधिक पायी जाती है किन्तु वे व्यस्क नहीं हैं। कारखाना अधिनियम 1948 के अनुसार 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध है।

2.अवैधानिक बाल श्रमिक– इसके अर्न्तगत वे बाल श्रमिक जिनकी उम्र 14 वर्ष से कम पायी जाती है।

द्वितीय वर्ग के अर्न्तगत बाल श्रमिकों की संख्या भारत में सर्वाधिक है, इसके अर्न्तगत असंगठित उद्योगों में कार्यरत बालक, खेतिहर मजदूर, तथा वे सभी बच्चे जो गलत ढंग से अधिक उम्र दिखाकर कारखानों, बागानों और खाद्यानों आदि में शामिल कर लिए जाते हैं। थार्नर (1962), ने श्रमिकों की तीन वर्गों का उल्लेख किया है, प्रथम के अर्न्तगत पूरे वर्ष में कार्यरत रहने वाले श्रमिक द्वितीय में व्यक्ति विशेष के लिए विशेष समय में श्रम करने वाले मजदूर तथा तीसरे श्रेणी में ऐसे श्रमिक जो कम मूल्य पर भू–स्वामियों या जमीदारों के लिए कार्य करते हैं। श्रम–मन्त्रालय, (1969), ज्यादातर कार्यरत बाल श्रमिक कृषि, भू–भाग, दुकान, छोटे माप एवं अन्य उद्योगों में पाये जाते हैं। सेन्सेस ऑफ इण्डिया गर्वमेंट ऑफ इण्डिया, नई–दिल्ली (2010), जहाँ सन् 1991 में बाल श्रमिक की संख्या 1.12 करोड़ थी, वहीं पर

2010 में 2.62 करोड़ हो गयी इससे पता चलता है कि जहाँ जनसंख्या में वृद्धि हो रही है, वहीं बाल–मजदूरी में बढोत्तरी हो रही है।

बाल श्रम सम्बन्धी प्रमुख अधिनियम एवं कानूनी प्रावधान

1933 – बाल बन्धुआ श्रमअधिनियम

1938 – बाल रोजगार अधिनियम

1948 – कारखाना अधिनियम

1986 – बाल श्रम (नियमन एवं उन्मूलन) अधिनियम

2000 – किशोर बाल न्याय (बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम सन् 1948 के कारखाना अधिनियम से 15 वर्ष के कम आयु के लोग को बालक माना गया और उनके काम करने की अवधि 6 घण्टे नियुक्ति की गयी। 2003 में 86वें संविधान संशोधन विधयक द्वारा 6 से 14 वर्ष की आयु वर्ग के बच्चों को निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान है। भारतीय संविधान के भाग–3 में वर्णित मौलिक अधिकार के अर्न्तगत बाल श्रम को गैर कानूनी घोषित किया गया है जैसा अनुच्छेद 24, बालश्रम के अर्न्तगत उपबन्ध है– कि 14 वर्ष से कम आयु के बच्चों को दुकानों, कारखानों, मिलों, जाश्विम पूर्ण काम पर प्रतिबन्ध लगाया गया।

समस्या की उत्त्पत्ति–

शोध आलेख में ग्रामीण परिवेश से सम्बन्धित है जिसके कारण मधुबनी जिला के जायनगर ग्रामीण समूहों से सम्बन्धित बाल–श्रमिकों के परिवार जिसकी पृष्ठभूमि विविध रुप की रही है। जिसके सदस्य अपनी जीविका उपार्जन के लिए निरन्तर कार्यरत रहे हैं। अतः इसी काल से इन परिवारों के बच्चे मजदूरी करने हेतु विवश हुए। बाल श्रमिक विभिन्न कार्यों में संलग्न है उनके इस संलीप्तता के लिए जहां उनकी दैनैन्दिनी मूल–भूत जरुरतों जैसे भोजन, कपड़ा, घर, मूल प्रेरक का काम ही वहीं उनके घर के सदस्यों जैसे माता–पिता आदि बालकों को श्रम करने के लिए उत्प्रेरित करते रहे। इन तमाम असामान्य दशाओं को दृष्टि मे रखकर सूक्ष्म विवेचना करने के समय विविध प्रकार की समस्याएं शोधार्थी के समक्ष सामने आयी हैं। शोध के समय ऐसा तथ्य प्रकाश में आया कि ऐसे बाल श्रमिकों परिवारों में पुरुष सदस्यों की अपेक्षा महिलाएं एवं बालक कठिन परिश्रम करने के लिए बाध्य थे। पुरुष सदस्य आलसी एवं अकर्मण्य प्रवृत्ति के लक्षण प्रकट हुए। बाल श्रमिक सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से अनुसूचित एवं पिछड़े वर्ग के होने के साथ गरीब परिवारों से सम्बन्धित है जिन्हें नित्य उपयोग से सम्बन्धित संसाधनों के अभाव में श्रम करने के लिए बाध्य होना पड़ता है। अध्ययन के समय यह भी ज्ञात हुआ कि अधिकांश बाल श्रमिक परिवारों में परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्ध सौहार्द पूर्ण नहीं रहते अतः परिवार के टूटने की सम्भावनाएं अधिक रहती है। विभिन्न स्रोतों से स्पष्ट हो चुका है कि ऐसे वर्ग के कल्याण हेतु भारतीय संविधान की निहित भावनाओं के समुच्चय में सरकारी उपबन्ध किये गये हैं जिसके क्रम में प्रशासनिक स्तर

पर भी प्रयास किये जाते रहे हैं लेकिन वास्तव में संवैधानिक प्रावधानों के अनुरुप ऐसे निर्बल वर्गीय परिवारों को वांछित लाभ नहीं मिल पा रहा है अपितु अनेकों अभिकरणों द्वारा यथा राजनेता एवं अधिकारी द्वारा इस सम्बन्ध में समाज कल्याण से सम्बन्धित जो कुछ आकड़े प्रस्तुत किये जा रहे है वे वास्तविकता से हटकर कपोल कल्पित प्रतीत होते है न कि वास्तविक सत्य।

शोध आलेख में वस्तुनिष्टता एवं विषयनिष्ठता के साथ आनुभविक अध्ययन से प्राप्त परिणाम इन तथ्यो को उजागर करने में सफल रहेगा कि बाल श्रमिक के प्रति उनके परिवार या सरकारी प्रयास दोनों में से कौन सा पक्ष ऐसा है जो बाल–श्रमिक प्रवृत्ति को कम करने में रोड़ा बन रहा है। प्राप्त परिणाम समस्या–निदान में अभूतपूर्व सफल सिद्ध होगा। निष्कर्षतः शोध आलेख ने बाल श्रमिक के परिवारों का एक शैक्षिक समाजशास्त्रीय अध्ययन "मधुबनी जिला के जायनगर पर आधारित शैक्षिक–समाजशास्त्रीय अध्ययन।" पर कार्य किया।

उद्देश्य– प्रस्तुत अध्ययन 'जायनगर क्षेत्र के बाल–श्रमिक के परिवारों की स्थिति पर अवलम्बित है, इस दृष्टि में शोध क्षेत्र को एक इकाई मानकर श्रमिकों के परिवारों की मूल भूत समस्याओं का विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है।

1. बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास के परिणाम एवं उनके संरक्षण के विरुद्ध शोषण का अध्ययन।
2. बाल श्रमिक के जीवन में स्वास्थ्य एवं साक्षरता, गुणों में सुधारों का अध्ययन करना।
3. बाल श्रमिक के सामाजिक एवं आर्थिक जीवन का विश्लेषण तथा औपचारिक तथ्यों को ज्ञात करना।
4. उद्योग या कार्यों में लगे हुए बालश्रमिक का भार एवं घटाव का अध्ययन करना।

शोध–अवधारणाएं–

अवधारणाएं ही पूरे शोध आलेख के अध्ययन की आधारशिला हैं क्योंकि इसके विश्लेषण की प्रक्रिया ही शोध है, साथ ही ये पूरे शोध का दिशा–निर्देशन करती है।

1. अधिक संख्या में बाल–श्रमिक के परिवार बहुत ही निर्धन होते हैं।
2. विस्तृत संख्या में परिवार भूमिहीन एवं श्रमिक वर्ग के होते हैं।
3. बड़ी संख्या में बाल–श्रमिक अशिक्षित परिवारों के हैं।
4. पब्लिक इनके साथ दुर्व्यवहार एवं इनकी योग्यता एवं मेहनत का कम मूल्य देते हैं।
5. बाल–श्रमिक के जो विधिक नियम या उपबन्ध होते हैं उनमें मालिक गतिरोध पैदा करते हैं।

सीमांकन– प्रस्तुत आलेख–अध्ययन में जायनगर क्षेत्र में रहने वाले बाल–श्रमिक के परिवारों को सम्मिलित किया है।

आलेख –प्रक्रिया– प्रस्तुत अध्ययन पद्धति में वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं अन्वेषणात्मक शोध–प्रारुप का प्रयोग किया गया। प्रदत्तों का संकलन प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों की सहायता से किया गया। आलेख में जायनगर स्थित ''जायनगर क्षेत्र में रहने वाले 50 परिवारों पर किया गया। परिवारों का चयन यादृच्छिक तथा स्तरीकृति दृष्टि से किया गया। अध्ययन के क्षेत्र में सूचनाएं एकत्रित करने तथा समस्या को बेहतर अर्न्तदृष्टि के लिए स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची चयनित उत्तरदाताओं द्वारा सूचना प्राप्त करने के लिए किया गया। साक्षात्कार अनुसूची मे बाल–श्रमिक के सामाजिक, आर्थिक मानसिक, शैक्षिक, तथा उनकी समस्याओं के बारे में प्राथमिक जानकारी प्राप्त की गयी, इसके अर्न्तगत मात्रात्मक एवं गुणात्मक दोनों के प्रकार के प्रश्नों को रखा गया।

प्रस्तुत शोध आलेख अध्ययन में उत्तरदाताओं की सामाजिक एवं आर्थिक राजनैतिक, शैक्षिक पृष्ठभूमि के सम्बन्ध में प्राप्त सूचना (आकड़ों) का विश्लेषण करने के लिए सामान्य सांख्यकीय प्रतिशतीय का प्रयोग किया गया।

प्रदत्त– सूचनाओं का सारणीकरण कर उनका सांख्यिकीय प्रतिशतीय निकालकर तत्पश्चात विश्लेषण एवं व्याख्या की गयी।

शोध का विष्लेशण एवं विवेचना – प्रस्तुत शोध– आलेख में प्रदात्ताओं की सामाजिक, शैक्षिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि के बारे में प्राप्त आंकड़ो का विश्लेषण एवं विवेचन करने पर निम्न तथ्य उजागर हुए हैं–

बाल श्रमिकों के परिवारों की सामाजिक पृष्ठभूमि

आयु – आयु व्यक्ति के जन्म से लेकर उसके व्यतीत किये गये जीवन अबोध की ओर संकेत करता है आयु के आधार पर ही व्यक्ति के सम्पूर्ण जीवन–काल को विभाजित किया गया है–

तालिका संख्या–1

बाल–श्रमिकों के परिवारों की सामाजिक पृश्ठभूमि का विवरण

क्रमांक	आयु वर्षों में	योग	प्रतिशत
1	21–30 वर्ष	13	26
2	31–40 वर्ष	23	46
3	41–50 वर्ष	14	28
	योग	50	100

उपरोक्त तालिका से विदित होता है कि उत्तरदाताओं का 21–30 वर्ष की आयु का प्रतिशत 26 प्रतिशत 31–40 वर्ष की आयु वाले 46 प्रतिशत है जो सर्वाधिक संख्या में है, तथा 41–50 वर्ष आयु के 28 प्रतिशत है। इससे स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में जातियों की सामाजिक आर्थिक परिस्थिति के परम्परागत और आधुनिक स्वरुप के भिन्न–2 – अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि उच्च, मध्य, एवं निम्न जातियों में अधिक परिवर्तन आया

है। उन क्षेत्रों में कल–कारखानों का विकास हुआ उन क्षेत्रों में परम्परागत प्रतिबन्ध धीरे–2 बिखर रहे है।

बाल–श्रमिकों के जाति एवं धर्म से सम्बन्धित

अध्ययन, गांव या शहर में रहने वाले सभी धर्म एवं जाति के लोगों का विवरण है।

क्रमांक	जाति एवं धर्म	संख्या	प्रतिशत
हिन्दी	पछड़ी जाति		8
	अनुसूचित जाति	42	84
मुस्लिम	मुस्लिम	4	8
	योग	50	100

प्रस्तुत तालिका का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि –अध्ययन क्षेत्र में 84 प्रतिशत प्रदात्ता अनुसूचित जाति के पाये गये तथा पिछड़े जाति में मात्र 8 प्रतिशत हैं, तथा मुस्लिमों का भी 8 प्रतिशत है। निष्कर्षतः गरीब परिवारों या निम्न जाति–धर्म के लोगों के परिवारों को मजूदरी करके अपनी आर्थिक इच्छाओं की पूर्ति करनी पड़ती है।

बाल–श्रमिक के परिवारों का मूल आवास से सम्बन्धित

तालिका सं.–3

उत्तरदात्ताओं का मूल आवास का विवरण

क्रमांक	आवास	संख्या	प्रतिशत
	ग्रामीण	43	86
	नगरीय	7	14
	योग	50	100

उपरोक्त तालिका से विदित होता है कि बाल श्रमिक के परिवारों का मूल–आवास सबसे ज्यादा ग्रामीण क्षेत्र में पाये गये जिनका 86 प्रतिशत तथा नगरीय क्षेत्रों में पाये जाने वाले परिवारों का 14 प्रतिशत है।

बाल–श्रमिक के परिवार के शैक्षिक पृष्ठभूमि

शिक्षा व्यक्ति के सर्वांगींण विकास के लिए आवश्यक है। बाल–श्रमिक परिवारों को शैक्षिक प्रतिशत वितरण तालिका के माध्यम दर्शाया गया है

तालिका सं.–4

प्रदात्ताओं की शिक्षा से सम्बन्धित विवरण

क्रमांक	शिक्षा	संख्या	प्रतिशत (%)
1	निरक्षर	**18**	**36**
2	साक्षर	**13**	**26**
3	प्राथमिक स्तर	**9**	**18**
4	पूर्वमा. स्तर	**5**	**10**

5	हाईस्कूल	3	6
6	इण्टरमीडिएट	2	4
7	स्नातक	—	—
8	परास्नातक	—	—
	योग	50	100

उपरोक्त तालिका का अवलोकन से स्पष्ट होता है कि परिवार के शैक्षिक स्थिति के सन्दर्भ में 36 प्रतिशत परिवार अशिक्षित और 64 प्रतिशत परिवार शिक्षित हैं। इसे निष्कर्ष निकलता है कि परिवार में शिक्षा का अभाव का मुख्य कारण विद्यालय का अभाव, रुचि का न होना निर्धनता और माता–पिता का शिक्षा के प्रति जागरुक न होना आदि प्रमुख समस्याएं दिखायी दी हैं।

बाल श्रमिक के परिवारों की मासिक आय का विवरण

तालिका सं.–5

परिवारों की मासिक आय का विवरण

क्रमांक	आय (रुपये में)	संख्या	प्रतिशत (%)
1	500 से कम	2	40
2	500–1000	4	8
3	1000–1500	3	6
4	1500–2000	4	8
5	2000–2500	7	14
6	2500–3000	10	20
7	3000–3500	12	24
8	3500–4000	5	10
9	4000–4500	3	6
	योग	50	100

उपरोक्त तालिका का अवलोकन से स्पष्ट होता है कि परिवारों के मासिक आय में 500 से कम में 4 प्रतिशत जो कि सबसे कम संख्या में है, जबकि मासिक आय में 3000–3500 वाले सर्वाधिक संख्या में हैं। बाल श्रमिक के परिवारों की कोई निश्चित आय न होने के कारण उन परिवारों के बच्चों को बाल श्रम कार्य में संलिप्त होते हैं जिससे परिवार की आय का जरिया बनते हैं।

6.परिवार में बाल श्रम में लगे बच्चों से सम्बन्धित विवरण

तालिका सं.–6

परिवार में बाल श्रम में लगे बालको से सम्बनिधत विवरण

क्रमांक	**बाल श्रम में लगे हुए बच्चे**	**संख्या**	**प्रतिशत**
1	1–2	23	46
2	2–3	11	22
3	3–4	10	20
4	4–5	6	12
	योग	50	100

परिवारों में बच्चों को बाल–श्रम करने के लिए बाध्य से सम्बन्धित विवरण

तालिका संख्या–7

परिवार में बच्चों को बाल–श्रम करने के लिए बाध्य से सम्बन्धित विवरण

क्रमांक	अभाव	संख्या	प्रतिशत (%)
1	शैक्षिक रुचि का अभाव	11	22
2	आर्थिक तंगी	21	42
3	माता–पिता के आर्थिक सहयोग के लिए	14	28
4	अन्य	4	8
	योग	50	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि परिवार में अभाव से बालक बाल श्रम करते हैं, शैक्षिक रुचि के अभाव में 22 प्रतिशत जबकि आर्थिक मजदूरी का 42 प्रतिशत तथा माता–पिता के आर्थिक सहयोग में 28 प्रतिशत हैं तथा अन्य में 8 प्रतिशत हैं।

परिवारों में बच्चों का पढ़ाई करने का कारण

तालिका सं.–8

परिवार में बालकों का पढ़ाई न करने का कारण का विवरण

क्रमांक	कारण	संख्या	प्रतिशत (%)
1	विद्यालय अभाव	**11**	**22**
2	अज्ञानता	**17**	**34**
3	निर्धनता	**19**	**38**
4	अन्य	**3**	**6**
		50	**100**

तालिका का अवलोकन से स्पष्ट होता है कि बच्चों की पढ़ाई न करने के कई प्रमुख कारण हैं, सबसे पहले विद्यालय का न होना में 22 प्रतिशत,

असमान्ता का होना के लोगों का सर्वाधिक 34 प्रतिशत है निर्धनता में 38 प्रतिशत है तथा अन्य में 6 प्रतिशत है।

परिवारों में शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों की संख्या

तालिका संख्या–9

परिवारों में शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों की संख्या का विवरण

क्रमांक	शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चे	संख्या	प्रतिशत
1	1–2	12	24
2	2–3	31	62
3	3–4	4	8
4	कोई नहीं	3	6
	योग	50	100

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि जो बालक शिक्षा प्राप्त करते हैं उन्में 1–2 संख्या वाले बच्चों का 24 प्रतिशत है, 2–3 संख्या वाले बालकों का 62 प्रतिशत तथा 3–4 संख्या वाले बच्चों का 8 प्रतिशत है।

शिक्षा प्राप्त न करने वाले बालकों की संख्या

तालिका संख्या–10

शिक्षा प्राप्त न करने वाले बालकों की संख्या का विवरण

क्रमांक	शिक्षा प्राप्त न करने वाले बच्चे	संख्या	प्रतिशत
1	1	12	24
2	2	31	62
3	3	4	8
4	कोई नहीं	3	6
	योग	50	100

तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि जिन बच्चों की संख्या 1 है उनमें 38 प्रतिशत बालक हैं जो शिक्षा ग्रहण नहीं कर सके तथा 2 की संख्या में 24 प्रतिशत बालक हैं 3 की संख्या में 22 प्रतिशत हैं।

परिवार में बच्चों के श्रम का स्वरुप

तालिका संख्या–11

परिवार में बच्चों के श्रम का स्वरूप का विवरण

क्रमांक	श्रम का स्वरुप	संख्या	प्रतिशत
1	500 से कम	17	34
2	500–1000	13	25
3	1000–1500	9	18

4	1500–2000	6	12
5	2000–2500	5	10
	योग	50	100

उपरोक्त तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि दैनिक मजदूरी में 34 बालक हैं, बन्धुआ मजदूरी में 26 कृषि मजदूरी में 18 करने वाले है।

निष्कर्ष – शोध आलेख से प्राप्त आंकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि अध्ययन क्षेत्र में बाल–श्रमिक गरीब परिवारों तथा पिछड़ी अनुसूचित जाति के लोग हैं, इन गरीब परिवारों में शिक्षा का अभाव, इसकी पूर्ति जनशिक्षा जागरुकता अभियान के अध्ययन से विश्वास दिलाना होगा कि शिक्षा के माध्यम यदि बच्चे पढ़–लिख सकेंगे तो उन्हें रोजगार प्राप्त कर स्वालम्बी बनकर समाज, राष्ट्र के विकास में भागीदार बन सकेंगे। साथ ही सरकार द्वारा चलायी गयी जन–योजना का लाभ दिलाने के लिए ऐसे परिवारों को जानकारी देकर उन्हें रोजगार के साधन उपलब्ध हो सकेंगे। इस शोध के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्र में उद्योगों का विकास के माध्यम से बेरोजगारी की समस्या का निदान एवं नगरीय क्षेत्रों की पलायन–प्रवृति पर रोक लग सकेगी। शोध के माध्यम से जन–चेतना आ सकेगी परिणाम स्वरुप श्रमिकों के अल्प मजदूरी पर अधिक कार्य लेने की शोषणकारी प्रवृतियों पर प्रतिबन्ध लग सकेगा।

सन्दर्भ–सूची :

1. मुखर्जी, आर. के., "द इण्डियन वर्किंग क्लास"।
2. मुखर्जी, आर. के., "द डायनामिक्स ऑफ रूरर सोसायिटी" बर्लिन, 1957।
3. थार्नर, डी. एण्ड थार्नर, एस.,"लैण्ड एण्ड लेबर इन इण्डिया", एशिया पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962।
4. मिनिस्टिरी ऑफ लेबर, 'रिपोर्ट ऑफ द नेशनल कमीशन आन लेबर', गर्वमेंन्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली, 1969।
5. योजना, 2012।
6. भारतीय सामाजिक संस्थान।
7. अग्रवाल एस.एल. "लेबर रिलेशन्स लॉ इन इण्डिया", द मैकमिलन कॉरपोरेशन लि., नई दिल्ली, 1978।
8. कुलश्रेष्ठा, जै.सी.; "चाइल्ड लेबर इन इण्डिया", आशीष पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1978।
9. ई.एस. बोगार्डस, 'सोसियोलॉजी', पेज–543।
10. पी.वी. यंग; साइन्ससिटफिक सोशलसर्वे एण्ड रिसर्च, पेज–44
11. योजना, नवम्बर, 2008।
12. कुरूक्षेत्र, 2008।
13. लोहिया, राम मनोहर; "जाति प्रथा", नव हिन्द, हैदराबाद–1953।
14. गिरि, वी.वी.; "भारतीय उद्योग में श्रमिक समस्या", एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली–1960।

***

भारत के आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान

डॉ. रत्न प्रकाश द्विवेदी *

शोध पत्र का सांराश

राष्ट्र शाक्ति, मातृ शाक्ति आज के समय में एक महत्वपूर्ण विषय बनता जा रहा है। जिसके अन्तर्गत यहाँ महिलाओं के योगदान की व्याख्या की जाती है। मुख्य रूप से वर्तमान परिपेक्ष्य में भारत के आर्थिक विकास में महिलाओं की भागीदारी की विस्तृत व्याख्या की गई है। सर्वप्रथम महिलाओं की आर्थिक दशा की बात करें तो ग्रामीण क्षेत्रो में कृषि, पशुपालन, हस्तकला जैसे कार्यो में महिलाओं का हमेशा से योगदान रहा परन्तु आज हम पंचायतीराज में महिलाओं की भागीदारी को जीवन्त रूप देने में सक्षम है। गाँवो की पढ़ी लिखी महिला अब पंचायत चुनाव में खूब बढ़–चढ़ कर हिस्सा ले रही है उसके अलावा यदि हम नगरीय क्षेत्रों में देखे तो पायेगें कि नगरीय महिलायें अपने घरेलू कार्यों में अलावा कुटीर उद्योग, लघु उद्योग तथा अन्य निर्माण कार्य में स्वयं को आत्मनिर्भर बनाने में लगी है। अब तो शहरी क्षेत्रों की कोई भी महिला घर में बैठना उचित नहीं समझती बल्कि धनोपार्जन के लिए आत्मानिर्भर बनना उनकी प्राथमिकता बनती जा रही है। इनके अलावा उच्च शिक्षित वर्ग की महिलाओं में भी अपनी योग्यता के अनुसार सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थाओं में अपनी स्थान सुनिश्चित करने के लिए छोड़ मची हुयी है। खेल–कूद, कला क्षेत्र फैशन क्षेत्र आदि कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं जहाँ महिला ने अपनी रूचि दिखाने में पीछे रही हो।

परन्तु इस सबके बावजूद भी लैंगिक असमानता हर क्षेत्र में दिखाई देता है। कई बार कार्य स्थल पर महिलाओं के लिए असुरक्षित माहौल भी उन्हें काम करने के लिए उदासीन कर देता है। समाज से यह लैगिंक भेद–भाव को पाटने की आवश्यकता है तथा महिलाओं की अग्रणी सोच को देखते हुए एक स्वस्थ व स्वच्छ माहौल की भी जरूरत है। कार्यस्थल पर उनके अनुसार सुविधानुसार वाताराण बनाने की भी आवश्यकता है। कार्यस्थल पर उनके सुविधानुसार वातावरण बनाने की जरूरत तथा महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए अनेक नीतिगत उपायों की व्याख्या की गई जो महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाने तथा आर्थिक रूप से मजबूत बनाने में सहायक हो सके यदि सोच देश की गरीबी व दुर्दशा में परे एक सम्पन्न भारत बनाने में योगदान देगा। भारत को आर्थिक विकास की ओर अग्रसर करने में मदद करता साथ ही साथ पुरुष तथा महिला के बीच की खाई को भी दूर करेगा।

---

* सहायक आचार्य-भूगोल, खरडीहा–महाविद्यालय, खरडीहा, गाजीपुर।

शोध पत्र

जीविका के लिए महिलाओं का योगदान प्राचीन काल से ही महत्वपूर्ण रहा है। पहले महिलाओं को सिर्फ कृषि कार्ग, पशुपालन, हस्तकला जैसे कुछ पारम्पारिक कार्यों पर निर्भर रहना पड़ता था। परन्तु आज रोजगार के अनेक साधन उपलब्ध है जिससे वह धनोपार्जन के साथ–2 आर्थिक विकास में भी बराबर योगदान देती है चूँकि आधुनिकता के साथ–2 देश में दिन प्रतिदिन महिलाओं के प्रति लोगो का दृष्टिकोण भी बदलता जा रहा है। आज भी उन्हें बढ़ते अपराधों, लैगिंक भेदभाव, घरेलू हिंसा कुपोषण, दहेज, सामाजिक असुरक्षा तथा उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है। कुछ दशकों से उन्हे सुरक्षित माहौल देने का प्रयास किया जाता रहा है। ताकि महिलायें सुरक्षित रहेगी तो देश सुट्टढ़ बनेगा। महिलाओं की भागीदारी सरकारी तथा गैर–सरकारी क्षेत्रो में बढ़ता जा रहा है। कहीं ना कही अब समाज भी महिलाओं को आगे लाने की कोशिश में लगा है। पहले के समय में कामकाजी महिला को कई बार हेय दृष्टि से देखा जाता था। परन्तु जब समाज की मानसिकता बदल गयी है अब सिर्फ कामकाजी महिला को भी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है घरेलू महिला के प्रति लोग कुछ उदासीन होने लगे है। यही कारण है कि अब हर स्त्री सामाजिक व आर्थिक रूप से सुट्टढ़ होने के लिए तत्पर होने लगी है ताकि समाज में उन्हे भी एक पहचान मिल सकें। आप महिलाओं ने राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय हर स्तर पर अपने पैर जमा चुकी है। महिलाओं के सुधरते शैक्षणित स्तर से उन्हे हर क्षेत्र मे अपनी प्रतिभा को दिखाने का मौका मिल रहा है, आज हर क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी तेजी से बढ़ती जा रही है। खेल, शिक्षा चिकित्सा कौशल सिनेमा, रचनात्मकता, व्यापार, कृषि, संचार, विज्ञान तथा तकनीकी आदि जैसे महत्वपूर्ण क्षेत्रो में महिलाओं ने पूरी तरह से पैर जमा लिये है। अन्तरिक्ष के चक्कर लगाने में भी उनकी पहचान सुनिश्चित हो पाई है। वैदिक युग में महिलाओं को पुरूषों के बराबर अधिकार थे परन्तु अध्यकाल से ही उनकी स्थिति बुरी होती चली गयी। आज आधुनिकता के दौर में उन्हें फिर से पुरूषों के समकक्ष लाने का पूरा प्रयास किया जा रहा है।

उद्देश्य –

1) समाज में महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त बनाना अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

2) महिलाओं को पुरूषों के समान सभी क्षेत्रों में अपनी भगीदारी सुनिश्चित करना तथा बराबर का अधिकार प्राप्त करना जिससे लैगिंक असामना कम हो सकें।

3) महिलाओं का आर्थिक क्षेत्र में ज्यादा से ज्यादा योगदान देने के लिए प्रोत्साहित करना तथा उन्हे उनके कार्य के लिए सुविधाजनक व सुरक्षित माहौल प्रदान करना।

4) महिलाओं के लिए नीतिगत उपायों का अध्ययन करना मुख्य उद्देश्य है।

5) वर्तमान परिपेक्ष्य को देखते हुए महिलाओं की कार्यो में रूचि तथा जिम्मेदारी का अध्ययन करना।

अर्थव्यवस्था में महिला श्रम भागीदारी –

अर्थव्यवस्था में महिलाओं का योगदान कई क्षेत्रों में है जैसे कृषि क्षेत्र उद्योग शैक्षणिक संस्थानों में सरकारी तथा गैर सरकारी क्षेत्रों में, निर्माण कार्यो, चिकित्सा आदि।

1) ग्रामीण क्षेत्रो में महिलाओं की भागीदारी – किसी भी राष्ट्र का विकास तभी संभव है जब वहां की महिलाएं विकसित हो ग्रामीण पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं को रोजगार के लिए अधिक संघर्ष करना पड़ता है क्योकि महिलाओं के लिए रोजगार के अवसर ही कम रहते है। गॉवो में महिला श्रमिको का वेतन पुरूषों की तुलना में सामान्यतः कम होता है इस प्रकार का अन्तर ज्यादातर गैर कृषि–कार्य में ही अधिक देखने को मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं का योगदान खेती– किसानी एवं पशुपालन में होता है। परन्तु ग्रामीण भारत में महिलाओं की सीट पंचायत में सुनिश्चित हो जाने से इस क्षेत्र में ग्रामीण महिलाओं का दबदबा बढ़ गया है पंचायतीराज में महिलाओं का भोगदन बढ़ता जा रहा है। ग्राम विकास में महिला नेतृत्व एवं सशक्तिकरण का अभिप्राय महिलाओं को पुरूषों के बराबर वैधानिक, राजनैतिक, मानसिक, सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्रो में उनके परिवार समुदाय, समाज एवं राष्ट्र की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वतंत्रता से है, महिलाओं में इस प्रकार की क्षमता का विकास जिसमें वे अपने जीवन का निर्वाह इच्छानुसार कर सकने में सक्षम हो एवं उनके अंदर आत्मविश्वास और स्वाभिमान को जागृत करना है।

2) औधोगिक एवं निर्माण कार्यो में महिलाओं की भागीदारी –महिला उद्यमिता को किसी भी देश की आर्थिक प्रगति का एक महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। महिला उद्यमी न केवल खुद को आत्म निर्भर बनाती है। बल्कि दूसरों के लिए भी रोजगार के अवसर बढ़ाती है भारतीय समाज में महिला उद्यमिता को प्रोत्साहन देने के लिए सामाजिक, पारिवारिक और आर्थिक मौर्चो पर बदलाव लाने की जरूरत है हमेशा से ही महिलाओं का स्थान घर में माना जाता रहा है। घर की कमजोर आर्थिक स्थिति और उनके बिगड़े, चरित्र से जोड़कर देखा जाता है। महिलाओं की नवाचार से जुड़ी सोच और प्रयासों को बढ़ावा देना होगा। ताकि आधिक से अधिक उत्पादन को बढ़ावा मिल सकें । कुटीर उद्योगो में ज्यादा से ज्यादा महिलाओं की भागीदारी बढ़ती जा रही है। बड़े–बड़े उद्योगो में भी महिलाओं को उनके योग्य कार्य में संलिप्त किया जा रहा है। किया अतः यह भी लैगिंक भेदभाव को दूर कर , स्त्री –शिक्षा को बढ़ावा देकर तथा महिलाओं के लिए कौशल विकास केन्द्रो का विस्तार करना आवश्यक है ताकि उद्योगों में महिला श्रम भागीदारी बढ़ा सकें।

3) सरकारी तथा गैर सरकारी क्षेत्रों में महिलाओं की भागीदारी – शिक्षा के क्षेत्र में, चिकित्सा के क्षेत्र में महिला अपनी भागीदारी को सुनिश्चित करने में लगी है कई सरकारी तथा गैर सरकारी संस्थानों में महिला कर्मी की संख्या बढ़ती जा रही है। भारत में खेल के क्षेत्र में महिलाओं की रूचि बढ़ती जा रही है जिसका कला के क्षेत्र में महिलाएं तेजी से अपने पैर जमा रही है।
अतः इन बिन्दुओं से ज्ञात होता है कि महिला का योगदान आर्थिक विकास में किस हद तक बढ़ता जा रहा है।

कार्यस्थल पर लैंगिक भेदभाव – कार्यस्थल पर जब लिंग के अनुसार भेदभाव किया जाता है तो उसे लैगिंक असमानता की श्रेणी में रख जाता है। अलग–अलग क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं से साक्षात्कार के दौरान पाया गया कि कारखानो में ज्यादातर महिलाओं को उसके पुरूष साथी की तुलना में कम आय दी जाती है कारखाना मालिको का मानना है कि महिलाओं का कार्य हल्का होता है जबकि पुरूषों को भारी –भरकम काम सौंपा जाता है। निर्माण कार्य में भी महिलाओं की कार्यवाही पुरूषों के समान होती है फिर भी उनको उन कार्यो के लिए कम ऑका जाता है। तथा पुरूष साथी की तुलना में दैनिक वेतन कम दिया जाता है । जहाँ पुरूषो को 500 रू0 मिलता है वहीं उसी कार्य के लिए महिलाओं को 300 रू0 उपलब्ध कराये जाते है। मालिकों का कहना है कि जितनी तिब्रता से पुरूष वर्ग कार्य कर लेते है महिलाओं कर्मी उसी कार्य को करने में काफी समय लेती है।
भारत में परंपरागत रूप से महिलाओं के साथ भेदभाव किया जाता है। महिला अगर सशक्त है फिर भी उनके निर्णयों की प्राथमिकता नहीं दी जाती है। आज समाज के हर क्षेत्र में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण है फिर भी महिलाओं के निर्णय तथा विचार को पुरूष समाज के सामने कम ऑका जाता है। संसार के आधिकांश समाजों में पुरुषों को स्त्रियों की तुलना में सभी क्षेत्रो में अधिक अधिकार मिले हुए है फिर भी कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु है जिसपर समाज में स्त्री–पुरूषों में भेद किया जाता है।
– राजनीतिक जीवन में स्त्रियों की भागीदारी सीमित है।
– लोगो में कार्यस्थल पर स्त्रियों के प्रति मनोवृत्तियाँ तथा व्यवहार अलग होता है।
– वैयक्तितक, सामाजिक,आर्थिक जीवन में स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं मिला पाती ।
– स्त्री पुरूषों को प्राप्त सामाजिक सहभागिता के अवसर भिन्न होते है।
– पारिवारिक तथा सामाजिक निर्णयों में स्त्री –पुरूषो की भूमिका भी भिन्न होती है।
– कार्य स्थल पर कई बार स्त्रियों को असुरक्षा के माहौल का सामना करना पड़ता है।
अतः कार्यस्थल तथा अन्य स्थानों पर महिलाओं की उपस्थिति को अहमियत देना आवश्यक है। राष्ट्र निर्माण में जितना योगदान पुरूषों को होता है

उतना ही महिलाओं का भी होता है। पुरूष एवं महिला को किसी भी प्रकार के कार्यो को करने के लिए बराबर की हिस्सेदारी सुनिश्चित करे तथा वेतन में भी बराबर का हक मिले। तभी सही मामने में लैगिक भेदभाव को दूर किया जा सकता है तथा आर्थिक विकास को तेजी से आगे बढ़ाया जा सकता है।

महिलाओं के लिए नीति क्रियान्वयन :

संविधान महिलाओं को ना केवल समानता का दर्जा प्रदान करना है वरन उसे पुरूषों के समान सभी शाक्ति भी प्रदान करता है, 5 वीं पंचवर्षीय योजना से ही महिलाओं से जुड़े हुये मुद्दों के प्रति विकास की दृष्टिकोण से देखा जा रहा है। महिलाओं की स्थिति को सुट्टढ़ करने के लिए महिला सशक्तीकरण जैसे शब्दों का इस्तेमाल किया जा रहा है। महिलाओं को उनका कानूनी हक दिलाने के लिए 1990 में संसद के एक अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय महिला आयोग की स्थापना की गई ताकि महिलाओं के अधिकार सुरक्षित रहे। भारतीय संविधान के 73 वें तथा 74 वें संशोधन जो 1993 में आया। उसके माध्यम से महिलाओं के लिए पंचायतों और नगर पालिकाओं के स्थानीय निकायों में सीटो के आरक्षण को सुनिश्चित किया गया ।

इसी प्रकार राष्ट्र के प्रति महिलाओं की उपलब्धियों की देखते हुए तथा समाज में उनके अहम योगदान के लिए महिलाओं को आभार प्रकट करना तथा उनके कार्यो को सम्मान देने के लिए अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस प्रतिवर्ष 08 मार्च को मनाया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस महिला एवं बाल विकास मंत्रालय द्वारा मनाया जाता है। इस मंत्रालय द्वारा विशेषकर संवेदन शील और पिछड़े क्षेत्रो के महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए उनके द्वारा समाज में दी गई अहम सेवाओं के लिए नारी शाक्ति पुरस्कार, प्रदान करने का निर्णय प्रत्येक वर्ष लिया गया है नारी शक्ति पुरस्कार मुख्यतः विशेष परिस्थितियों में व्यक्तियों/समूहों/संगठनों/गैर –सरकारी संगठनों आदि को महिलाओं के आर्थिक और सामाजिक सशक्तीकारण, के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने के लिए दिया जा सकता है। जिन्होनें महिलाओं को निर्णयकारी भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया है। पारंपरिक और गैर पारंपरिक क्षेत्रों में महिलाओं को कौशल विकास के लिए प्रोत्साहित किया हो। ग्रामीण महिलाओं के लिए मूल भूत सुविधाओं की व्यवस्था की हो महिलाओं को विज्ञान और प्रोद्योगिकी जैसे गैर–पारंपरिक, कला, संस्कृति खेल आदि क्षेत्रो में बढावा दिया हो।

– महिलाओं के कामकाजी होने से जुड़ी रूठिवादी सोच से निपटने के लिए सरकार को प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से ऐसे विचार रखने वाले लोगो को रोकना चाहिए। पैतृक अवकाश दिये जाने का भी महिलाओं के कामकाजी होने पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। भारत में कामकाजी महिलाओं को सुविधा देने के नाम पर क्रेच/डेकेयर या तो बंद पड़े है या फिर वहाँ उपलब्ध ही नहीं है। यहाँ इनकी सबसे आधिक आवश्यकता है।

अतः आवश्यक है सामाजिक तथा सरकारी योगदानों की जो महिलाओं के पक्ष में सकारात्मक सोच रखता हो। महिलाओं को आर्थिक, समाजिक क्षेत्रों में आगे लाने के लिए साक्रिय हो। तभी आर्थिक विकास में महिलाओं के योगदान का भी बराबर लाभ मिल सकेगा।

निष्कर्ष –

चूंकी भारतीय समाज वास्तव में महिलाओं के अधिकारों को मान्यता देता है, जिसमें राजनीतिक भागीदारी, पारिवारिक भागीदारी तथा व्यवसायिक एवं समाजिक भागीदारी आदि अधिकार शामिल है। फिर भी ग्रामीण क्षेत्रो में कुछ क्षेत्र ऐसे भी है जहाँ आज भी महिलाओं को उच्च शिक्षा से वंचित रखा गया है। उन्हे नौकरी करने की आजादी नहीं है। ना ही अपने विचारों को घर व समाज के सामने रखने की छूट है। आर्थिक विकास में महिलाओं की भागीदारी तभी सुनिश्चित माना जाएगा जब उनका योगदान पुरूषों के समान हो। विकसित देशों में महिला तथा पुरूष का योगदान आर्थिक विकास में समान है परन्तु भारत जैसे देश में आज भी महिलाओं का सम्मान उनके चारदीवारी के अन्दर ही रहने से है। जहाँ कामकाजी महिलाओं पर कई बार अन्य महिला उलटा–सीधा आरोप लगाकर उसे उसके कार्य से विलग करने की कोशिश में लगी रहती है। चूँकी धनोपार्जन के लिए बहुत से कार्य है जिसे घर बैठे भी किया जा सकता है। परन्तु ज्यादातर कार्य के लिए घर से बाहर निकलना आवश्यक हो जाता है। भारत में ज्यादातर देखा जाए तो कई जगह तो महिलाओं के कार्य को लेकर सुरक्षा का माहौल नहीं रहता है, इसलिए भी महिला अपने हित के लिए घर में ही रहना पसंद करती है तथा अपने घर के पुरूष वर्ग पर निर्भर रहती है।

अतः भारत में आर्थिक विकास में महिलाओं के योगदान को सुनिश्चित करने के लिए उन्हें पुरूषों के समान अधिकार दिये जाए, कार्यस्थल पर सम्मान दिया जाए, एक स्वस्थ व सुरक्षित माहौल दिया जाए। साथ ही रूठिवादी सोच को परे रख कर उन्हें उनके योग्य व्यवसायिक शिक्षा मुहैया कराया जाए। तभी सही मामने में भारत भी विकसित देशों की श्रेणी में आगे आएगा।

सन्दर्भ :

1. उधमिता – महिलाओं की बढ़ती भागीदारी – आमिताम कांत, नमन अग्रवाल, अनमोल सहगलः कुरूक्षेत्र (अक्टूबर 2021), 21.26 पेज।
2. महिला एवं बाल विकास मंत्रालय।
3. 'द हिन्दू' अखबार।
4. आर्थिक प्रगाति में महिलाओं की भागीदारी आवश्यक – पायल हाथी (जनवरी 2018) द इंडियन एक्सप्रेस अखबार।
5. श्रम भागीदारी में महिलाओं की स्थिति – द इकानॉमिक टाइम्स (मार्च – 2021)

6. ग्रामीण रोजगार में महिलाओं की भागीदारी – मधुरा स्वामीनाथन, (द हिन्दु')
7. Gender Disparity In India :- Dr- Rajeev Kumar Deparat of Economics, M.G.K.V.P Vidyapith Varanasi.
8. भारत के आर्थिक विकास में महिला मानव संसाधन की भागादारी का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन (जनपद मेरठ के सन्दर्भ में) रूचिका राठौर (2019) चौ0 चरण सिंह विश्वविद्यालय, मेरठ।

***

''पिछड़ मुसलमानों की राजनैतिक स्थिति''
(एक समाजशास्त्री अध्ययन)

जश्न परवेज *

जाति की राजनीति के संदर्भ में मुस्लिमों की स्थिति को दो स्तरों पर समझा जा सकता है । पहला, सामान्यतः बिहार के चुनावी राजनीतिक में मुस्लिम भी एक जाति (या जाति समूह) के रूप में अपनी सामुहिक पहचान अभिव्यक्त करते हैं । इसका अर्थ यह है कि जिस प्रकार ऊँची जातियाँ या यादव एक जाति समूह या जाति के रूप में आने ही हितों को अभिव्यक्त करते हैं, इसी प्रकार मुस्लिम भी चुनावी राजनीति में सामुहिक रूप से अपने हितों को अभिव्यक्त करते हैं । जाति की राजनीति के संदर्भ में मुस्लिम की स्थिति का दूसरा स्तर खुद मुसलमानों में जाति की उपस्थिति से सम्बन्धित है । मुस्लिमों में ऊँची जातियों को अशरफ कहा जाता है । इनमें शेख, सैयद, पठान और मल्लिक जैसी जातियाँ शामिल हैं । इन जातियों की शैक्षिक और आर्थिक स्थिति दूसरे मुस्लिम जातियों से तुलनात्मक रूप से अच्छी है । मुसलमानों में पिछड़ी जातियों को अजलाफ या परमांदा कहा जाता है । इनमें अंसारी शेरशाहवादी, कल्हैया, राइन, मुकेरी आदि जैसी जातियाँ शामिल हैं । इन जातियों की शैक्षिक और आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय है । मुसलमानों में अशरफ और पसमांदा मुस्लिम का जनसंख्यात्मक अनुपात वैसे ही है जैसे कि हिन्दुओं में उच्ची जातियों और पिछड़ी जातियों का है ।

पिछड़ी जाति के मुसलमान अनेक समस्याओं से ग्रस्त हैं । भारत के मुसलमान कोई मिस्र या अरब ईरान के वासिंदे तो हैं नहीं, इनका भी जन्म इसी देश के माता–पिता द्वारा हुआ है । जातीय संरचना में इस धार्मिक समुदाय का विभक्त न होना आश्चर्य की बात होती है । इसलिए इस्लाम के अभूतपूर्व समानता के संदेश पर वर्ण व्यवस्था की परत चढ़ गई । अतएव किसी जुलाहे को किसी सैयद के बराबर सामाजिक स्थान कहाँ से मिलता । ज्ञान, बुद्धि और कई–कई मामलों में श्रेष्ठ क्यों न हों, लेकिन उनको बराबरी का स्थान नहीं मिला । समानता का इस्लामी आदेश केवल नवाज पढ़ने या एक–दो विषय धार्मिक अवसरों पर ही अमल में लाया जाता है । हालाँकि वहाँ भी उच्च वर्ग के लिए कोई–न–कोई विशेष व्यवस्था जरूर रहती । देश की आजादी की लड़ाई में महात्मा गाँधी के नेतृत्व में काँग्रेस के साथ मुसलमानों के साथ जो सबसे बड़ी आबादी संघर्ष में आगे आयी, वह पिछड़े मुसलमानों की थी । देश के बंटवारे के लिए जिस चतुराई से आंदोलन चलाया गया उसमें मुसलमानों का वही तबका सबसे आगे था

* ग्राम+पो.-बनतारा, थाना-देवकुंड, जिला-औरंगाबाद

जिसके पास पीढ़ियों से न सिर्फ धन, दौलत, जमीन, शान–शौकत और शिक्षा थी बल्कि आनुवांशिक रूप से भी उसे सामाजिक श्रेष्ठता मिली हुई थी । विभाजन के समय अमीर अगड़े मुसलमान अपनी सम्पत्ति बेचकर पाकिस्तान चले गये और जो बच गये उन्होंने सियासत में भागीदारी को अपना कर्तव्य समझा, जिसे वे आजतक निभा रहे हैं । शेख, सैयद, पठान, मल्लिक जाति के हाथों में मुस्लिम समाज का नेतृत्व है, जबकि पिछड़े जुलाहों की आबादी कुल मुसलमानों की आधी है । पिछड़े मुसलमानों में अंसारी, धुनिया और कुंजरा जाति को नेतृत्व भारवहन करने का कुछ मौका मिला भी है तो दलित मुसलमान जैसे धोबी, पासी, लालवेगी, हलालखोर, नट, पवरिया, वक्को, धुनिया आदि बिरादरी के लोग की भागीदारी रियासत नेतृत्व एवं प्रशासनिक पदों पर नगण्य है । ऐसे राजनीतिक परिदृश्य पर जब पिछड़ों का उभार हुआ तो फिर एक बार मुसलमानों का वही वर्ग अवसर प्राप्ति की दौड़ में अगली पंक्ति में पहूँच गया तथा रातों–रात सत्ता प्रशासन तथा समाज के दूसरे सभी महत्वपूर्ण पद उनलोगों ने हथिया लिये । पिछड़े मुसलमान अभी तक अपने हक से दूर हैं । इसके महत्वपूर्ण कारणों में उनका सांगठनिक विकास न होना भी शामिल है। लेकिन पिछड़े मुसलमानों के राजनीतिक चेतना जागी है । दलितों और शोषितों के उद्धार के लिए पसमांदा मुस्लिम जैसे व्यापक विचार दत्रष्टि वाले मंच की स्थापना हुई है । इसकी योजनाओं पर अमल होना अभी शेष है, किन्तु गरीब, पिछड़े एवं दलित मुसलमानों में अपने हक प्राप्ति की बेचैनी को देखते हुए यह स्पष्ट लगता है कि इनकी आँखें खुल चुकी हैं । ऐसे समय में भी धार्मिक कट्टरपंथियों द्वारा आपसी एकता का वही पुराना गीत दोहराया जा रहा है, जबकि यह समय इस तरह की साजिश करने का नहीं हैं । अब समय आ गया है कि देश की बहुसंख्यक मुसलमानों की वास्तविक समस्याओं को समझकर उनके समाधान के लिए ठोस कदम उठायें तथा राजनीतिक बिचौलियों को बाहर करके जनता से सीधे सम्पर्क में आयें । यदि समय के साथ ऐसा नहीं किया गया तो देश के पिछड़े सात–आठ करोड़ मुसलमान किसी भी समय अपने अधिकारों के लिए सड़कों पर आ सकते हैं तब किसी भी शासन व्यवस्था के लिए खतरे की घंटी बज जायेगी । संभव है आगे आने वाले दिनों में मुस्लिम समाज का अन्तर्द्वन्द्व राजनीतिक धरातल पर और अधिक मुखर होगा तथा मुसलमानों के सजे–संवरे भद्रजनों को अगली पंक्ति से उठाकर हमेशा के लिए पीछे फेंक दिया जायेगा । यही तबका वोट की एकमुश्त धार्मिक ठेकेदारी के लिए फतवा जारी करता रहा है । हमारे नेताओं को यह तय करना होगा कि आखिर वे निहित स्वार्थी तत्वों पर ही आश्रित रहेंगे और चिर–परिचित ठेकेदारों को ही ढोते रहेंगे या मुलमानों के बीच से उभर रही वास्तविक जनसमर्थन वाली शक्तियों को पहचानने का साहस दिखायेंगे । आजादी की लड़ाई में इन शक्तियों को गाँधीजी ने पहचाना था ।

संदर्भ सूची :

1. डॉ० रंजु कुमारी : आधुनिक भारत में मुस्लिम राजनीतिक चिन्तन का विकास, जानकी प्रकाशन, पटना, नई दिल्ली, 2011
2. कमल नयन चौबे : जातियों का राजनीतिकरण, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. डॉ० इन्द्रजीत मिश्रा : जाति एवं राजनीति, प्रत्युष पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 2012
4. गोपाल, गुरू : रिजर्वेसन एण्ड द कन्ट्रारिलेशन ऑफ शिड्युल कास्ट, सम टेक्नीकल ऐसपेक्ट्रस सोशियोलॉजिकल बुलेटिन–33
5. लोहिया, राम मनोहर : कास्ट सिस्टम इन इण्डिया, नैवी हिन्दी प्रकाशन, हैदराबाद, 1971
6. गोयल, मदनलाल : गवर्नमेंट एण्ड पॉलिटिक्स इन ए डेवलपिंग नेशन हारकोट, 1970
7. चतुर्वेदी, दिनेशचन्द्र : भारतीय शासन और राजनीति, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, 1976.

***

भारत में राजनैतिक दलों का सामाजिक संगठन

*अनामिका कुमारी**

साधारण अर्थ में राजनैतिक दल एक ऐसा स्वैच्छिक संगठन होता है जिसके सदस्यों के दृष्टिकोणों व उनके परस्पर उद्देश्यों में समानता पाई जाती है तथा वे सभी एक सिद्धान्त व विचारधारा के समर्थक होते हैं एवं उससे सहमत होते हैं। इस रूप में यह कहा जा सकता है कि राजनैतिक दल वे साधन होते हैं जिनके माध्यम से मानवीय एकता व सामाजिक एकता स्थापित की जाती है। राजनैतिक दल सरकार बनाने व सत्ता प्राप्ति की होड़ में लगे रहते हैं, यदि सरकार नहीं बना पाते तो सरकार के बाहर रहकर जनता की बात को सरकार तक पहुँचाते रहते हैं तथा जनता को अपने राजनैतिक दल के सिद्धान्त के पक्ष में लाने का प्रयास करते हैं। चूँकि प्रजातंत्र में बहुमत का होना अनिवार्य रहता है इस हेतु सभी राजनैतिक दल अधिक से अधिक जनता को अपने पक्ष में या समर्थन में लाने के लिए अपनी पार्टी विशेष के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते है। राजनैतिक दल क्या है? इसको जानने के लिए विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गई निम्नलिखित परिभाषाओं को जानना आवश्यक है-

मैकाइवर : "राजनैतिक दल एक ऐसा समुदाय होता है जो किसी ऐसे सिद्धान्त अथवा ऐसी नीति के समर्थन के लिए संगठित हुआ हो, जिसे वह वैधानिक साधनों से सरकार का आधार बनाना चाहता हो।"

प्रो० लीकॉक : "राजनैतिक दल से हमारा तात्पर्य नागरिकों के उस संगठित समूह से होता है जो एक राजनैतिक इकाई के रूप में कर्य करते हैं।"

एडमण्ड बर्क : "राजनैतिक दल ऐसे लोगों का एक समूह होता है जो किन्हीं पूर्व-स्वीकृत सिद्धान्तों के आधार पर अपने सामूहिक प्रयत्नों द्वारा जनता के हित में काम करने के लिए एकता में बंधे होते हैं।"

गैटिल : "एक राजनैतिक दल न्यूनाधिक संगठिन उन नागरिकों का समूह होता है जो राजनैतिक इकाई के रूप में कार्य करते हैं और जिनका उद्देश्य अपने मतदान रूपी बल के प्रयोग द्वारा सरकार का नियंत्रण करना और अपनी सामान्य नीतियों का संचालन करना होता है।"

सेम्युल जे० एल्डर्स बिल्ड : "राजनैतिक दल विस्तृत समाज में सामाजिक समूह तथा अर्थपूर्ण एवं प्रतिमानिक क्रियाओं की एक व्यवस्था है।

---

* शोध छात्रा (राजनीति विज्ञान), मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

इसका गठन ऐसे व्यक्तियों से होता है जो विशिष्ट पहचान वाले समूह के उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं तथा विभिन्न भूमिकाओं में दल के कार्यों को करते हैं।"

गिलक्राइस्ट : "राजनैतिक दल की परिभाषा उन नागरिकों के संगठित समूह के रूप में की जा सकती है, जो राजनैतिक रूप से एक विचार के हों और जो राजनैतिक इकाई के रूप में सरकार पर नियंत्रण करना चाहते हों।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि राजनैतिक दल एक ऐसा सामाजिक समूह है जो जनता को संगठित कर सरकार का निर्माण करते हैं तथा जनता के कल्याण हेतु एक सिद्धान्त के द्वारा राज्य का शासन संचालित करते हैं। अतः राजनैतिक दल ऐसा संगठन है जो जनता और सरकार के बीच एक कड़ी का कार्य करता है।

राजनैतिक दल की संरचना में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जो इसे अन्य समूह से अलग करती हैं-

1. राजनैतिक दल एक ऐसा संगठन है जिसका प्राथमिक उद्देश्य राजनैतिक नतृत्व को प्राप्त करना होता है। इसके लिए दल के सभी सदस्य सरकार बनाने का भरपूर प्रयास करते हैं।
2. राजनैतिक दल में कई परस्पर विरोधी समूह किसी उद्देश्य तथा राजनैतिक विचारधारा को लेकर आपस में संबंधित रहते हैं। इनमें आर्थिक, सामाजिक हितों के कारण उप-संरचनाएँ निर्मित होती हैं।
3. राजनैतिक दल एक ऐसा संगठन होता है जिसमें अल्पतंत्रीय प्रवृत्तियाँ अधिक पायी जाती हैं। जो कुछ लोगों के हाथों में पूरे संगठन की शक्ति सौंप देता है। राजनैतिक दल में कई स्तर भी होते हैं।
4. यह एक खुली व्यवस्था होती है। सदस्यता हेतु इसके द्वारा हमेशा खुले रहते हैं। ऊपर से नीचे तक दल के सदस्य एक दूसरे के विचारों को 'आला कमान' तक पहुँचाते रहते हैं। 'आला कमान' को दल में सम्मान भी मिलता है जिसके करण वे दल की केन्द्रीय स्थिति में बने रहते हैं।

राजनैतिक दल के प्रकार्यों के संबंध में लपिलोम्बरा तथ बीनर ने कहा है,"प्रथम, इसमें जनमत संगठित करने तथा मांगों को सरकारी शक्ति एवं निर्णय के केन्द्र तक पहुँचाने की आशा की जाती है, द्वितीय, अपने अनुयायियों में समुदाय का अर्थ एवं सम्प्रत्यय सुस्पष्ट करना अनिवार्य है तथा तृतीय, दल राजनैतिक भर्ती, नेतृत्व, जिसके हाथों में शक्ति तथा निर्णय लेने का अधिकार होगा, के चयन से सम्बन्धित है।" डाउसे तथा ह्युज भी इसके बारे में विचार व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि "राजनैतिक दल के

प्रकार्यवादी निरूपणों को स्वीकार करने में कठिनाई यह है कि इससे अनेक राजनैतिक दलों को हटना पड़ेगा क्योंकि केवल इन्हीं प्रकार्यों को राजनैतिक दल की परिभाषा का आधार नहीं माना जा सकता।"

राजनैतिक दलों के निर्माण के लिए कुछ तत्व होते हैं यहाँ इन्हीं तत्वों की विवेचना की जाएगी, जो इस प्रकार हैं-

(1)संगठन- राजनैतिक दल एक वृहद समूह होता है। समूह के लिए संगठन का होना अत्यन्त आवश्यक है। बिना संगठन के राजनैतिक दल अपंग है। संगठन तभी दृढ़ होगा जब सभी सदस्यों की विचार धाराएँ एक जैसी हों। सदस्यों में पार्टी हित में अनुशासन, निष्ठा व ईमानदारी आदि गुणों का होना भी आवश्यक है। दल के निर्माण के लिए यह आवश्यक है कि उसके सदस्य वसंगठित हों तथा संगठन का कोई विधान भी हो। संगठन में ही वह शक्ति होती है जिसके आधार पर दल को कार्य करने में सुविधा रहती है।

(2)मतों और सिद्धान्तों में एकरूपता- मतों वे सिद्धान्तों में एकरूपता का होना भी राजनैतिक दल की दूसरी अनिवार्यता है। सामान्यतः विचारों और सिद्धान्तों की एकता ही राजनैतिक दलों को स्थायित्व प्रदान करते हैं। सदस्यों के अपने व्यक्तिगत विरोध भले की क्यों न हो लेकिन दल के लिए सभी सदस्यों के विचारोंमें समानता होनी आवश्यक है। भारतीय साम्यवादी दलों में हम देखते हैं कि मतैक्य के अभाव के कारण साम्यवादी दक्षिणपंथी, वामपंथी, नक्सलपंथी, माओंपंथी आदि कई भागों में बँट गए हैं। इसी प्रकार कांग्रेस दल के सिद्धान्तों में मतैक्य के अभाव से ही शरद पवार के राष्ट्रवादी कांग्रेस दल का अभ्युदय हुआ है।

(3)मतदान और उसके निर्णय में विश्वास- राजनैतिक दलों का वर्तमान स्वरूप मतदान व उसके निर्णयों पर अधिक जोर देता है। राजनैतिक दलों को मतदान और उसके निर्णय पर विश्वास करना चाहिए। दल का कार्य है सत्ता प्राप्ति के लिए सरकार बनाना। इसके लिए दल को मतदान द्वारा प्राप्त निर्णय पर ही उसे अडिग होना चाहिए। यदि मतदान द्वारा निर्णय के अनुसार किसी दल विशेष को सरकार बनाने का अवसर नहीं मिलता है, तो उसे उसके लिए अन्य अलोकतंत्रीय तरीकों को नहीं अपनाना चाहिए। अन्यथा दल का स्वरूप विघटित हो सकता है।

(4)राष्ट्रीय हित- किसी भी राजनैतिक दलों के लिए यह आवश्यक होत है कि वह संकीर्ण प्रवृत्तियों से उठकर राष्ट्रीयता वादी प्रवृत्ति अपने अन्दर कायम रखे। दल किसी विशेष जाति, धर्म, सम्प्रदाय व जाति के हितों के पोषक नहीं होने चाहिए। यदि कोई दल किसी विशेष जाति या धर्म को मानकर चलता है तो वह दल साम्प्रदायिक कहा जाता है। अतः राजनैतिक

दलों की आवश्यकता उनके राष्ट्रीय हितों से ही आंकी जाती है।

राजनैतिक दलों के निर्माण के लिए जो तत्व उत्तरदायी होते हैं इन्हीं के आधार पर विभिन्न दलों का अपना एक सामाजिक संगठन होता है। दलों के निर्माण में व्यक्तिगत हित, प्रादेशिकता, आर्थिक आधार, राजनैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति आदि प्रमुख हैं लेकिन राजनैतिक दलों की संरचना में इनके निर्माण के मूल तत्व सम्मिलित होते हैं।

विभिन्न राजनैतिक दलों के संगठन कई आधारों पर निर्भर होते हैं। इनमें राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैचारिक तथा मानसिक एवं सांप्रदायिक आदि प्रमुख होते हैं जिसके कारण दलों का अपना एक सामाजिक अस्तित्व होता है।

समाज में विभिन्न प्रकार के लोग होते हैं। कुछ लोग अनुदार विचार के होते हैं तो कुछ लोग प्रगतिशील विचारों के कारण विभिन्न प्रकार के राजनैतिक दलों का निर्माण होता है। इसी प्रकार समाज के अंदर विभिन्न प्रकार ही जातियाँ तथा संप्रदाय के लोग होते हैं जिनका अपना-अपना दृष्टिकोण होता है। ये लोग अपने-अपने वर्ग के हित तथा स्वार्थ सिद्धि की दृष्टि से विभिन्न राजनैतिक दलों का निर्माण करते हैं। वर्तमान में भारत में इसी के आधार पर अधिकांश दलों का निर्माण होते देखा जाता है। हिंदू महासभा का संगठन, मुस्लिम लीग का संगठन सांप्रदायिकता के आधारों पर दलों के संगठन के लिए उत्तरदायी तत्व कहे जाते हैं।

समाजशास्त्र के विषय के रूप में राजनैतिक दल एक सामाजिक समूह है। इन्हें सामाजिक समूह इसलिए माना जाताहै क्योंकि इनमें सभी प्रकार के सामाजिक संबंध पाए जाते हैं एवं इनकी सदस्यता एच्छिक तथा औपचारिक होती है। राजनैतिक दलों के सदस्यों में सामान्य लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उनमें तार्किक व्यवहार का होना आवश्यक होता है। अतः रानजैतिक दल समाज के अन्य समूहों से पृथक माना जाता है जिसका कारण अनिवार्य लक्ष्य सत्ता प्राप्त करना होता है।

मुखोपाध्याय ने लिखा है कि "राजनैतिक दल अन्य सामाजिक समूह (जैसे- परिवार, चर्च, व्यावसायिक समूह आदि) से पृथक हैं क्योंकि इन समूहों का प्राथमिक लक्ष्य सत्ता प्राप्त करना है तथा अकेले या अन्य दलोंकी सहायता से सत्ता को बनाए रखना है। इनका वैचारिक दृष्टिकोण तथा संगठन की सेवार्थ-प्रवण प्रकृति इन्हें अन्य समूहों से पृथक करती है। राजनैतिक दल विविध प्रकार के सामाजिक-अर्थिक हितों को समायोजित करते हैं। इसी लक्षण के कारण इन्हें कई बार उप संस्कृतियों के रूप में या उप बहुदलीय संबंध के रूप में देखा जाता है।"

दलों के सामाजिक संगठन के आधार पर दलों की सामाजिक संरचना बनती है। मोरिस ड्यूवर्गर के अनुसार प्रत्येक राजनैतिक दल की अपनी संरचना होती है। कुछ तत्व ऐसे होते हैं जो सामान्यतः सभी दलों में सामान्य रूप से पाए जाते हैं। यही तत्व दलों के सामाजिक संगठन के ढाँचे को स्थयित्व प्रदान करते हैं।

मोरिस ड्यूवर्गट के अनुसार राजनैतिक दलों की संरचना या संगठन में जो तत्व पाए जाते हैं वे निम्नानुसार हैं[1]-

(1) कॉकस- कॉकस का तात्पर्य ऐसे लोगों से है जो दल में आंतरिक समूह बनाते हैं जिसके हितों की रक्षा करना कॉकस के सदस्य अपना कर्तव्य मानते हैं। कॉकस अपनी सदस्य सीमा को कभी नहीं बढ़ाता है। वर्तमान में केंद्र में भारतीय जनता पार्टी सत्ता से बाहर हो गई है। फलस्वरूप अधिकांश राज्यों में भी भारतीय जनता पार्टी की सरकार सत्ता से बाहर हो रही हैं, परंतु इस दल का 'कॉकस' अभी सक्रिय है। कॉकस प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष दोनों प्रकार के होते हैं। इन कॉकसों के कारण ही दलों में संगठन बना रहता है।

(2) शाखा- भारत के सभी राजनैतिक दलों में कॉकस के साथ-साथ विभिन्न शाखाएँ विद्यमान होती हैं जो दल के विभिन्न प्रकार्यों या भूमिकाओं को क्रियान्वित करती हैं। इस रूप में दल का दूसरा मूल तत्व शाखा को माना जाता है। कॉकस की अपेक्षा शाखा के सदस्य अधिक स्वतंत्र होते हैं। शाखा के सभी सदस्यों के कार्यों का विभाजन रहता है तथा वे अपने-अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करते देखे जाते हैं। खासतौर से चुनावों के समय में ये सदस्य अधिक ही क्रियाशील देखे जाते हैं तथा जगह-जगह आम सभाएँ, रैलियाँ, देखी जाती हैं जो अपने दलों के लिए समर्पित होकर कार्य करती हैं। समाजवादी राजनैतिक पार्टी में इनकी क्रियाशीलता अत्यधिक होती है। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ एक बहुत बड़ी शाखा है जिसके सदस्य एक नीति व कार्यक्रम को लेकर अपने 'कॉकस' के (भारत में भारतीय जनता पार्टी) के लिए कार्य करते हैं शाखाएँ अपने दल के लिए जनता को जागरूक बनाती है।

(3) सेल- दलों के संगठन में सेल का भी महत्वपूर्ण स्थान होता है। यद्यपि सेल और शाखा के कार्यों में सामान्यतया समरूपता पाई जाती है। किंतु सेल कई उप-समूहों में विभाजित होकर दल के लिए कार्य करते हैं। दल के अलग-अलग कार्य होते हैं। अतः अलग-अलग कार्य के लिए अलग-अलग सेल होते हैं। जैसे- किसान प्रकोष्ठ, महिला प्रकोष्ठ, प्रचार-प्रकोष्ठ, व्यापारी प्रकोष्ठ आदि। इस प्रकार सेल दल के सदस्यों को उनके कार्यों के आधार पर

उप समूहों में संगठित करता है। सेल का आकार शाखा से छोटा होता है किंतु क्षेत्रीय आधार पर सेल और शाखा में समानता दिखने लगती है और वे एक-दूसरे से परामर्श पर कार्य भी करते हैं। सेल का एक प्रमुख व्यक्ति होता है जिसके निर्देशन व नियंत्रण में अन्य सदस्य संगठित रहते हैं। दलों के इन सेलों में भी पदाधिकारी नियुक्त किए जाते हैं जो अपने दल के लिए सक्रिय भूमिका निभाते हैं।

(4) नागरिक सेना- दलों के संगठन का चौथा और अंतिम तत्व 'नागरिक सेना' है। यह 'नागरिक सेना' विभिन्न दलों की निजी सेना होती है जो पार्टी के अनुशासन की भावना को मजबूत करने का प्रचार करती है। इस निजी सेना की अपनी एक विशेष वर्दी व झंडे होते हैं। जिनके आधार पर इन्हें पहचाना जाता है। भारत में शिव सेना तथा आर० एस० एस० यह एक शाखा के साथ ही 'नागरिक सेना' भी है। ये अपने झंडे के प्रति नतमस्तक रहते हैं। बंगला देश की मुक्तिवाहिनी भी 'नागरिक सेना' का कार्य करती है। ये 'नागरिक सेनाएँ' किसी न किसी दल के लिए ही कार्य करते हैं। वर्तमान में दलों के ये सभी तत्व विभिन्न दलों में पाए जाते हैं, जो नीचे के स्तर से ऊपर स्तर (हाई कमान) तक आपस में श्रृंखलाबद्ध रहते हैं।

दलों का संगठन इन्हीं तत्वों पर निर्भर रहता है। किसी दल में कॉकस का गठन व्यक्तिवादी प्रभाव के कारण होता है तो कहीं प्रजातांत्रिक प्रभाव से इसका गठन किया जाता है। उपरोक्त सभी ततव किसी भी दल के सामाजिक संगठन के लिए आधार का कार्य करते हैं।

संदर्भ सूची :

1. Morris Jones : Political Sociology.
2. डॉ० (श्रीमती) कुमकुम सिंह : भारतीय समाज : परिवर्तन एवं विकास
3. रकेश कुमार : समाजशास्त्र, प्रतियोगितासंदर्भ पब्लिकेशन्स, पटना, दिल्ली ।
4. राममूर्ति पाठक : सामाजिक-राजनीतिक दर्शन की रूपरेखा, अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद ।

***

महिला श्रमिकों की समस्या एवं समाधान

*प्रियंका कुमारी**

सारांश

महिला श्रमिकों की संख्या तो निश्चित रूप से वृद्धि हुई है, साथ ही साथ आनुपातिक रूप से उनकी समस्याओं तथा आर्थिक, सामाजिक इत्यादि में भी वृद्धि हुई है। समय दर समय केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा महिला श्रमिकों के जीवन स्तर में उत्थान एवं कल्याण हेतु यथासंभव योजनाओं का सृजन किया गया। जिसका प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से व्यापक प्रभाव उनके जीवन शैली पर पड़ा है।

दृष्टि संगत तथ्य यह है कि अत्यधिक जनसंख्या एवं भ्रष्टाचार की वजह से योजनाओं एवं पहनो का 100% लाभ महिला श्रमिकों से वंचित है फिर भी यह कहा जा सकता है कि महिला श्रमिकों के जीवन स्तर में क्रमिक विकास अवश्य हुआ है एवं भविष्य में भी होने की अकूत संभावनाएं हैं।

प्रस्तावना

लगभग सभी देशों के आर्थिक क्रियाओं में महिलाओं द्वारा सक्रिय भूमिका निभाई जाती है।किसी भी देश कीअर्थव्यवस्था को मजबूत बनाने में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।भारत में लगभग 13 करोड महिलाएं श्रमिकों के रूप में कार्य कर रही है। शहरों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की संख्या कहीं अधिक है।अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा श्रम शक्ति के अनुमानों पर आधारित एक अध्ययन से पता चलता है की महिला श्रमिक विकासशील देशों की ग्रामीण जनसंख्या में महिला श्रमिकआर्थिक दृष्टि से सक्रिय वर्गों में से एक है। एशिया और पेसिफिक क्षेत्र के 30 देशों में से कम से कम 3 देशों में ग्रामीण श्रम शक्ति में महिलाओं के सहभाजन 40% से ज्यादा या करीब-करीब पुरुषों के बराबर है। भारत में यह दर इस अध्ययन के अनुसार27 दशमलव 13% थी। आर्थिक और सामाजिक गतिविधियों में महिलाओं का योगदान धीरे-धीरे बढ़ रहा है।पहले महिलाओं को घर से बाहर काम करने की इजाजत नहीं दी जाती थी परंतु आर्थिक दबावों एव रहन-सहन का स्तर उच्च होने के कारण महिलाओं को बाहर काम करने की इजाजत मिलने लगी।और भी कई कारण है जैसे कि महिलाओं की पुरुषों पर अत्यधिक निर्भरता, उनमें संगठन का

* अतिथि शिक्षक, अर्थशास्त्र विभाग, रामचरित्र सिंह महाविद्यालय, मंझौल (L.N.M.U.DBG)

अभाव तथा कम मजदूरी स्वीकृति ऐसे तत्व रहे हैं जिन्होंने उद्यमियों द्वारा अधिकमहिलाओं को रोजगार के लिए प्रेरित किया। अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I.L.O) की एक रिपोर्ट में बताया गया है ,'' परिवार या राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की एक तरह से संतुलन शक्ति के रूप में धारणा के पूरी तरह से वह व्यवहारिक प्रभाव है जिसे कुल रूप से श्रमिकों के लिए श्रम शक्ति का स्थाई अंग बनना मुश्किल रहा है तथा उन्हें रोजगार बाजार में खास तौर से विभेदात्मक व्यवहार बनाना संभव बनाया है।इस तरह औद्योगिक पूंजीवाद वाले देशों में महिलाओं का रोजगार ना तो उद्योग में महिलाओं के काम की समाज की आवश्यकता से और न महिलाओं की काम की आंतरिक जरूरत से विकसित हुआ हैवरन खासतौर से उद्योगपति के लाभ कमाने के उद्देश्य को पूरा करने के सस्ते श्रम के उपयोग की इच्छा से बड़ा है।इसमें शक नहीं है कि कुछ कार्य ऐसे होते हैं जिनके लिए पुरुष, महिलाओं की अपेक्षा ज्यादा उपयुक्त है और इसके विपरीत भी सच है, किंतु पुरुषों और महिलाओं के बीच अंतर काफी रूप से ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और परंपरागत बातों पर निर्भर करता है। महिलाओं द्वारा किए गए कार्यों मेंकोयला,पत्थर,मैग्नीज, अभ्रक तथा इस्पात कारखाने जैसे कपरा,तेल,,काजू, आटा और अन्यछोटे-बड़े उद्योग एवंचाय,कॉफी, रबर आदि के बागानों में भारी संख्या में काम करती हैं।इन कार्यों के अलावा सार्वजनिक निर्माण, लघु व्यवसाय, गृह कार्य,रेलवे,अस्पताल, सामुदायिक योजनाएं तथा अनेक अन्य कार्यों में महिलाएंपुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है।

विभिन्न जनगणना के आधार पर महिला श्रमिकों की संख्या का आकलन करने पर पता चला कि 1961 में महिला श्रमिकों की संख्या 5.95 करोड़ थी जो 1981 में घटकर 3.12 करोड़ रह गई। 1961 में कुल महिला जनसंख्या में महिला श्रमिकों का अनुपात27 दशमलव 95% था जो 1981 में घटकर 11.85 प्रतिशत रह इस कमी का मुख्य कारण 1971 में श्रमिकों की परिभाषा में अंतर आ जाना था। इस नई परिभाषा के अनुसार,'' एक श्रमिक वह व्यक्ति है जिसका मुख्य कार्य किसी आर्थिक दृष्टि से उत्पादन कार्य में शारीरिक या मानसिक रूप से भाग लेना है। कार्य में ना केवल वास्तविक कामवरन काम की देखभाल एवं संचालन भी शामिल है।1991 और 2001 की जनगणना में महिला श्रमिकों का प्रतिशत क्रमशः 22.25 और 25.7% रहा है।जनगणना 2011 के आंकड़ों के अनुसार 6 करोड़ महिलाएं सीमांत करनी है। लगभग एक करोड़ महिलाओं को साल में 100 दिन भी काम नहीं मिल पाता है। इनमें अधिकांश अशिक्षित है तथा उनकी सालाना आमदनी लगभग 10 हजार से भी कम भारत महिलाओं में दो तिहाई खेती किसानी से जुड़ी

हुई है जबकि पचासी लाख महिलाएं स्वरोजगार में संलग्न है।2012 में प्राप्त आंकड़ों के अनुसार कामकाजी महिलाओं की भागीदारी 27% है। अर्थात इतना सब कुछ होने के बाद भी आज भी महिलाओं की स्थिति में बहुत कुछ सुधार की आवश्यकता है।ज्यादातर महिलाओं को तो यह आभास भी नहीं है कि वे शोषण का शिकार हो रही है और स्वयं एक अन्य महिला का शोषण करने में पुरुष समाज का सहयोग कर रही हैं।

महिला श्रमिकों पर कार्य का दोहरा मार पड़ता है,एक ओरकार्यालय,कारखाने खदान आदि ने कार्य करती है वहीं दूसरी ओर उन्हें घर के काम भी स्वयं करने पड़ते हैं जिससे उनकी कार्य क्षमता और स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं। उच्च शिक्षित परिवारों की महिलाएं पहले से ही उच्च पदों पर आसीन होकर कामकाज करती रहे हैं। परंतु मजदूर वर्ग में शिक्षा के अभाव में रूढ़िवादी समाज के कारण आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होते हुए भी अपमानित होते रहती थी और आज भी कुछ खास बदलाव नहीं हुआ है। महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने और शिक्षित होने के चलते मध्य वर्गीय परिवार की महिलाएं भी नौकरी और व्यवसाय आदि में पुरुषों के समान है कार्य करने लगींहैं। परंतु हमारे समाज का ढांचा कुछ इस प्रकार का है की महिला को कामकाजी होने के बाद भी नए प्रकार के शहर से जूझना पड़ता हैं।

:बिहार में महिला श्रमिकों की स्थिति:

बिहारमें महिलाश्रम कार्बन की भागीदारी देश में सबसे कम है। या शहरी क्षेत्रों के लिए 6.4 प्रतिशत है और ग्रामीण क्षेत्रों में केवल 3.9% महिला संभल कार्यरत है। यहां की महिलाओं से जुड़े सामाजिक और आर्थिक गोलू को देखने के लिए यह भी ध्यान देने योग्य है कि महिलाओं की साक्षरता दर उनके पुरुषों की तुलना में 20% कम है भले ही 1991 और 2014 के बीच में 35% की वृद्धि हुई हो। बिहार में केवल 11% या शहरी महिलाएं और 2.7% ग्रामीण महिलाएं स्नातक की डिग्री पूरी करते हैं। बिहार में महिला विशिष्ट हस्तक्षेप के लिए कुछ बजटीय आवंटन समय की आवश्यकता है। जिससे लैंगिक असमानता को कम किया जा सके और वर्तमान समय के अनुरूप एक स्थाई भविष्य का निर्माण किया जा सके।

बिहार में संगठित तथा असंगठित क्षेत्रों में महिला श्रमिकों के उत्थान हेतु बिहार सरकार द्वारा किया गया प्रयास अत्यंत ही सराहनीय है। मनरेगा द्वारा जहां रोजगार की गारंटी निश्चित की गई वही जीविका कार्यक्रम में बिहार की कई महिलाओं के कौशल को पुनर्जीवित कर उनके जीवन शैली को सिंचित करने का कार्य किया। मुख्यमंत्री महिला उद्यमी योजना द्वारा

बिहार सरकार द्वारा अनुदान युक्त 10 लाख लोन की पहल ने जहां एक ओर महिला उद्यमिता को बढ़ावा देने का कार्य किया वही राज्य सरकार द्वारा बिहार के संगठित क्षेत्रों में 35% का क्षतिज आरक्षण महिलाओं के उत्थान की दिशा में एक अकल्पनीय कदम है।

आज बिहार में शराबबंदी कानून को लागू कर महिला श्रमिकों तथा पिछड़े वर्ग की महिलाओं को एक सामाजिक सुरक्षा भी प्रदान की गई, जिसके परिणाम आर्थिक रूप से स्पष्ट रूपेण महिला श्रमिकों के जीवन शैली पर देखने को प्राप्त होता है।

बिहारसरकार द्वारा महिला श्रमिकों हेतु संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में किए गए प्रयासों का आर्थिक एवं सामाजिक स्तर पर विकास की एक नई गाथा है। राज्य सरकार द्वारा किए गए इन प्रयासों का दूरगामी प्रभाव देखने को मिला तथा भविष्य में भी उनके जीवन स्तर को और बेहतर बनाने हेतु निश्चित रूप से कार्य करती रहेगी।

निष्कर्ष

किसी देश का आर्थिक विकास महिलाओं की कार्य भागीदारी पर निर्भर करता है।यदि महिला श्रम की आपूर्ति में सुधार के लिए पर्याप्त कदम नहीं उठाए गए तो बड़ी संख्या में महिलाओं के कार्य बल से बाहर रहने की संभावना है और देश में बेरोजगारी का विकास होगा। माध्यमिक शिक्षा से परे शिक्षा को कौशल प्रशिक्षण और विकास के साथ-साथ बढ़ावा देने की आवश्यकता है। जिससे महिलाओं के व्यवसायिक विकल्पों में वृद्धि होने की संभावना है और महिलाओं के श्रम की गुणवत्ता मैं भी सुधार होगा।महिला श्रमिकों की समस्या के समाधान के लिए शैक्षणिक व प्रशिक्षण कार्यक्रमों की पहुंच एवं उपयुक्तता कौशल विकास, शिशु देखभाल की व्यवस्था, मातृत्व सुरक्षा और सुगमव सुरक्षित परिवहन के साथ-साथ ऐसे विकास प्रारूप को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है जो रोजगार के अवसरों का सृजन करें। साथ ही साथ सरकार द्वारा सृजित कार्यक्रमों,पहलों एवं योजनाओं का शत प्रतिशत लाभ महिला श्रमिकों को मिले, ऐसी भ्रष्टाचार मुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए। तभी कहीं जाकर महिला श्रमिकों का जीवन स्तर में व्यापक एवं सुधार दृष्टिगोचर होंगे।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. Rodgers,G.A.DattaS.K.MisHRA and A.N.Sharma (2013). The challenge of inclusive development in rural Bihar, New Delhi: institute for human development and Manak publication.
2. MatherDeepa (1992): women, family and work, Rawat publication, Jaipur.

3. राष्ट्रीय श्रम सर्वेक्षण, 2011
4. द्विवेदी, रमेश प्रसाद, आर्थिक सहभागिता में ग्रामीण महिलाओं का योगदान, प्रवक्ता, 16 सितंबर 2011
5. चौराहे पर महिला श्रमिक आलोका, 5 जुलाई, 2008
6. नंदाबी. आर.(1976)—इंडियन विमेन,विकास पब्लिकेशन हाउस प्राइवेट लिमिटेड दिल्ली।
7. परमार दुर्गा (1982)–श्रमजीवी महिलाएं और समकालीन पारिवारिक संगठन, साहित्य भवन आगरा

***

भारत में महिला सशक्तिकरण : एक ऐतिहासिक अध्ययन

*पंकज सिंह कुशवाहा**

चिन्तन एवं ज्ञान के समस्त सन्दर्भों एवं आयामों के समक्ष नारीवाद ने वर्तमान समय में एक नवीन सन्दर्श स्थापित कर दिया है। इस नवीन संदर्श की अन्तर्दृष्टि में मानवीय मूल्य, चिंतन प्रणाली जीवन शैली एवं समाज व्यवस्था की विवेचना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इस विवेचना के आधार पर ही नारीवादी संदर्श के साथ समायोजन करते हुए स्त्री एवं पुरुष के बीच समरसतापूर्ण, शोषण, मुक्त तथा परस्पर सह–अस्तित्व की धारणा के साथ सामंजस्यपूर्ण जीवन शैली को विकसित करने के लिए आधारभूमि तैयार किया जा सकता है।

हजारों वर्षों से मानव सभ्यता को विकसित करने में महिलाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा है किन्तु इतिहास में इस योगदान को अधिकांश अनदेखा ही किया गया है। जबकि भारतीय नारी में शक्ति, क्षमता व योग्यता मौजूद है जो मानवीय सभ्यता को विकसित करने के लिए आवश्यक है। स्त्री एवं पुरुष के मध्य सह–अस्तित्व की धारणा को किसी भी सभ्यता एवं संस्कृति के विकास एवं उसे अक्षुण्ण बनाये रखने के आधार के रूप में सर्वप्रमुख माना जा सकता है। इस आधार को पुरुषों द्वारा महिलाओं पर अत्याचार ने जितना आघात पहुँचाया है उससे बड़ा आघात महिला एवं पुरुष के बीच पूर्ण बिलगाव से पहुँच सकता है। स्त्री एवं पुरुष के बीच पूर्ण अलगाव की अभिव्यक्ति को उग्र नारीवादी आन्दोलन के रूप में देखा जा सकता है। अतः स्त्री एवं पुरुष के बीच अलगाव को रोकने के लिए इतिहास की सकारात्मक नारीवादी व्याख्या आवश्यक है ताकि इतिहास के निर्माण में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका एवं पुरुषों के साथ उनके सह–अस्तित्व को उजागर किया जा सके।

नारीवादी आन्दोलनों के पश्चिमी देशों में मिलने वाली लोकप्रियता की भविष्य में इसकी कुछ परिणतियाँ सामने आ सकती हैं। इस सकारात्मक परिणति पश्चिमी देशों में महिलाओं के व्यक्तिगत व सार्वजनिक जीवन के बीच द्विविभाजन के द्वन्द्व को समाप्त कर सकती है जिसे पुरुष प्रधान समाज ने जन्म दिया है। अतः स्त्री और पुरुष के बीच समानता के आधार पर नवीन जीवन दृष्टि भी विकसित हो सकती है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के तहत भारतीय समाज में आधुनिक नारी की स्थिति तथा उससे जुड़े हुए प्रश्नों की चर्चा करने के पूर्व इतिहास के पृष्ठों पर स्त्रियों का कैसा चित्र अंकित है यह समझना आवश्यक है। प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री का दर्जा बहुत ऊँचा था। ऐसी मान्यताओं को यथार्थ

* शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजीपुर

की कसौटी पर कसने की आवश्यकता है। यदि यह स्वीकार कर ले कि प्राचीन युग में स्त्री की स्थिति बहुत अच्छी थी तथा उसका स्थान ऊँचा था तो उसकी उच्चता के प्रेरक तत्व कौन–कौन से थे तथा उसका ह्रास कब और कैसे हुआ, यह समझने के लिए इतिहास पर दृष्टिपात अनिवार्य है।[1]

भारतीय व्यवस्था के इतिहास में महिलाओं की स्थिति एक लम्बे समय से विवाद का विषय रही है। स्त्रियों की स्थिति से सम्बन्धित विवाद का कारण जैविकीय अथवा मानसिक नहीं मानते हैं बल्कि इसका प्रमुख कारण भारी पवित्रता सम्बन्धी संकीर्ण विचारधारा ही है। अनेक पश्चिमी विद्वानों ने यहाँ तक मान लिया है कि नारी के कुछ जन्मजात दोष हैं जिनके कारण वह पुरुषों के साथ समानता का दावा नहीं कर सकती। डॉ0 रूबैक का मानना है कि महिलाओं में जन्म से ही असंगति और परस्पर–विरोध का दोष होता है जबकि फ्रायड ने यहाँ तक कह दिया है कि यह स्वीकार करना होगा कि महिलाओं में न्याय की भावना बहुत कम होती है क्योंकि उनके मस्तिष्क में ईर्ष्या भरी हुई है।[2] भारतीय समाज में ऐसी कोई धारणा नहीं पायी जाती है। हमारी सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों को सम्पत्ति, ज्ञान और शक्ति का प्रतीक माना गया है जिसकी अभिव्यक्ति के रूप में लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा की पूजा की जाती रही है। यह हमारा दुर्भाग्य है कि उत्तर वैदिक काल के पश्चात हमारे समाज की मौलिक व्यवस्थाएँ रुढ़ियों के रूप में परिवर्तित होने लगा। इसके परिणामस्वरूप महिलाओं में लज्जा, ममता और स्नेह के गुणों को उनकी दुर्बलता समझकर पुरुष उनका शोषण करना प्रारम्भ कर दिया। जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज में आज स्त्रियों को पुनः सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में नवीन अधिकार प्राप्त हो रहे हैं।

भारतीय स्त्री की स्थिति में मूलभूत परिवर्तन उन्नीसवीं सदी के बाद प्रारम्भ हुआ। इस परिवर्तन के लिए अंग्रेजी राज्य को उत्तरदायी माना जा सकता है। इस नई राजसत्ता ने कौन–सी ऐसी शक्तियाँ पैदा की जिन्होंने सदियों से जमी हुई अवस्थाओं की नींव हिला दी? साथ ही एक अन्य विचारणीय प्रश्न उपस्थित होता है कि उन्नीसवीं सदी के पूर्व समाज में ऐसी कौन–सी संस्थाएँ, ऐसी कौन–सी जटिलताएँ थीं, कौन से दबाव तथा नियन्त्रण थे जिनके कारण स्त्री के स्थान एवं दर्जे में पिछले तीन–चार हजार वर्षों में कोई परिवर्तन नहीं हो सका?[3]

इन समस्याओं के समाधान के लिए इतिहास की गहराइयों का अन्वेषण करना आवश्यक है। समाज में स्त्रियों की स्थिति की विवेचना के लिए हम विभिन्न कालों में स्त्रियों की स्थिति का वर्णन कर सकते हैं, वे हैं–

वैदिक काल में महिलाओं की प्रस्थिति –

वैदिक समाज में महिलाओं के अस्तित्व एवं योगदान से गृहस्थाश्रम को आदर्श रूप प्राप्त होता था। वेद युगीन गृह का अस्तित्व महिला के

अस्तित्व में निहित माना जाता था।[4] वैदिक कालीन समाज में नारी पूज्य मानी जाती थी। वैदिक समाज भारतीय इतिहास का सर्वाधिक आदर्श समाज रहा है जिसमें महिलाओं ने अपने समस्त अधिकारों का पूर्णता के साथ उपभोग किया था। वेदों की यह मान्यता है कि स्त्री–पुरुष, बाल–वृद्ध सबके शरीरों में समान प्रकार की आत्मा का निवास होता है। उसमें स्वतः कोई लिंग भेद नहीं होता। प्रयुक्त एक ही जीवात्मा कर्मानुसार कभी पुरुष शरीर धारण करता है और कभी स्त्री शरीर (त्वं स्त्री एव पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी। त्वं जीर्णो दण्डेन वंचासि त्वं जीर्णो। दण्डेन वंचासि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।।)[5] अतः वैदिक संस्कृति में महिला और पुरुष में आत्मा के स्तर पर कोई अन्तर नहीं है।

वैदिक समाज में कन्या को भी पुत्र के समान स्नेह एवं आदर प्राप्त था लेकिन कन्या जन्म के समय पुत्र जन्म के समान संस्कारों को नहीं किया जाता था।[6] शत्रु–नाश एवं आर्यों की स्थिति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से पुत्र–जन्म पर विशेष खुशी मनायी जाती थी।[7]

वैदिक कालीन समाज में पर्दा–प्रथा का पूर्णतः अथाव था।[8] कन्या स्वतंत्र होकर युवकों के साथ अध्ययन करती थीं एवं काम धन्धे भी करती थीं और महिलायें खुली आम–सभाओं में भाग लेती थीं तथा वैदिक कालीन महिलायें जनतांत्रिक सभाओं की शासन सम्बन्धी बहसों में भी भाग लेती थीं।[9]

पति एवं पत्नी के सम्बन्धों में इतनी अधिक समता, घनिष्ठता एवं माधुर्य के होते हुए भी पितृ–प्रधान वैदिक समाज में पति की प्रभुता ही मानी जाती थी। ए0 एस0 अल्तेकर के अनुसार वैदिक युगीन समाज में पत्नी की पति के प्रति आधीनता आदर भाव से पूरित थी।[10] इस अधीनता के बाद भी पत्नियाँ गृहों का आभूषण मानी जाती थीं।[11] पत्नी ही पूरे गृह का संचालन करती थी एवं दास आदि लोगों को उचित कार्यों में प्रवृत्त रहती थीं।[12]

वैदिक काल को महिला जगत के लिए स्वर्ण युग माना जाता है। इस काल में स्त्रियाँ सम्मानित एवं गौरवशाली पद पर आसीन थी। इन सबके बावजूद इतिहासकारों व आलोचकों के अनुसार वेदकालीन समाज व्यवस्था पितृसत्तात्मक थी और पितृसत्तात्मक परिवारों में प्रचलित परम्परानुसार घर का वयोवृद्ध पुरुष ही परिवार के कुल पिता के अधिकार के साथ घर की व्यवस्था करता था। अतः आज भी पितृसत्तात्मक परिवारों में कन्या का जनम उल्लास का प्रसंग नहीं माना जाता है। पुत्र प्राप्ति के प्रयास होते रहते थे। साथ–साथ यह वास्तविकता भूलना न चाहिए कि पुत्र जन्म के प्रतिपक्षपात होते हुए भी यदि परिवार में कन्या का जन्म हो जाता है तो उसके विकास की उपेक्षा नहीं की जाती थी।[13] वैदिक कालीन समाज

में उपलब्ध विवरणों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पितृसत्तात्मक परिवार के ढाँचे के अन्तर्गत स्त्री को यथासम्भव ऊँचा स्थान दिया गया था।

उत्तर वैदिक काल में महिलाओं की प्रस्थिति

उत्तर वैदिक काल में पुत्री की अपेक्षा पुत्रगमन अधिक मांगलिक एवं आनन्ददायक माना जाता था फिर भी पुत्री का स्थान सम्मानजनक था। आपस्तम्ब गृह सूत्र से ज्ञात होता है यात्रा से लौटने पर पिता पुत्र की भाँति पुत्री को भी मन्त्रोच्चारण सहित आशीर्वाद देता था।[14]

महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने का पूरा अधिकार था। महिलाओं के उपनयन संस्कार का चलन पूर्णतः समाप्त हुआ प्रतीत नहीं होता है क्योंकि गृह सूत्रों में महिलाओं के समावर्तन संस्कार का उल्लेख यह सिद्ध करता है कि स्त्रियाँ वेदाध्ययन करती थीं।[15] विवाह संस्कार के समय वर एवं वधू सम्मिलित रूप से अनुवादक–मन्त्रों का उच्चारण करते थे।[16] अतः युवकों के समान कन्या की शिक्षा समान थी। जहाँ तक स्त्रियों के पुनर्विवाह का प्रश्न है, कुछ शर्ते सहित सूत्र–युगीन स्त्रियाँ भी इस सुविधा का उपभोग करती थी। सूत्रकालीन विधवा स्त्री हेय दृष्टि से नहीं देखी जाती थी। उत्तर वैदिक काल में सती प्रथा का पूर्णाभाव था।

महिलाओं का स्थान समाज में भार्या के रूप में प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय था ही किन्तु स्त्री सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान माता के रूप में पाती थी।[17] अतः सूत्र काल में महिला का स्थान आदर्श था। धार्मिक, सामाजिक एवं शैक्षणिक क्षेत्र में वह पूर्ण स्वतंत्रता का भोग करती थी। आर्थिक क्षेत्र में वह सीमित अधिकार ही प्राप्त किये हुए थी।

यदि हम रामायण और महाभारत काव्यों का अध्ययन करेंगे तो पता चलता है कि इसके अन्तर्गत महिलाओं की स्थिति का कई अलग–अलग रीतियों से किया गया है। सम्भवतः यही कारण है कि उनके अन्तर्गत अनेक स्थलों पर हमें इस विषय में परस्पर–विरोध के भी दर्शन होते हैं। महाकाव्य युगीन समाज में नारी का स्थान धीरे–धीरे परिवर्तित होने लगा।[18] सम्पूर्ण महाभारत में कन्या जन्म को अशुभ मानने का मात्र एक ही संकेत मिलता है। इसमें स्त्री को कोई भी सार्वजनिक पद देने का विरोध मिलता है। महाभारत काल की महिलाओं की स्थिति में गिरावट के प्रमाण अनेक जगहों पर मिलते हैं। इस काल में द्रौपदी का उदाहरण स्त्रियों के पक्ष में नहीं है।

धर्मशास्त्र काल में स्त्रियों की प्रस्थिति

धर्मशास्त्र काल से हमारा आशय तीसरी शताब्दी से 11वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक के समय से है। तीसरी शताब्दी के बाद याज्ञवल्क्य संहिता, विष्णु संहिता और पाराशर संहिता की रचना हुई जिसमें वेदों के नियमों को पूर्णतया तिलांजलि देकर मनुस्मृति को ही व्यवहार की कसौटी मान लिया गया। यह समय सामाजिक एवं धार्मिक संकीर्णता का युग था।

इस काल में महिलाएँ गृहलक्ष्मी से 'याचिका' के रूप में दिखाई देने लगीं। माता के रूप में सम्मानित होने वाली महिला का स्थान 'सेविका' का हो गया। जीवन और शक्ति प्रदायनी देवी अब निर्बलताओं की प्रतीक बन गयी ''स्त्री जो किसी समय अपने प्रबल व्यक्त्वि के द्वारा साहित्य और समाज के आदर्शों को प्रभावित करती थी अब परतन्त्र, पराधीन, निस्सहाय और निर्बल बन चुकी थी।''[19] इस युग में यह धारणा विद्यमान हो गई कि पति ही स्त्री के लिए देवता है और विवाह ही उसके उसके जीवन का एकमात्र संस्कार है। दूसरी तरफ नारी को एक आदरणीय स्थान प्रदान करते हुए भी उसे रक्षणीय, पराधीन रखने की बात कहकर उससे उसके सभी अधिकारों का हनन कर लिया गया है। मनुस्मृति में यहाँ तक कह दिया गया कि महिला कभी भी स्वतंत्र रहने योग्य नहीं है। तब हमें यह भी पता चलता है कि उक्त विषय पर मनु की कल्पना कुछ अलग ही प्रकार की है। उनका कहना है कि ''इस लोक में पुरुष को दूषित करना नारी का स्वभाव होता है। यही कारण है कि महिलाओं की संगति करते समय मेघावी पुरुष सदैव तरह–तरह से अपना बचाव करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में उसकी स्वयं की प्रकृति से ही नारी के स्वभाव पर पर्याप्त मात्रा में प्रकाश पड़ जाता है।

अब तक की विवेचना से स्पष्ट है कि धर्मशास्त्र काल में महिलाओं की स्थिति गिरते हुए मूल्यबोध से प्रभावित रही है। भारतीय परम्परा में मानव का अस्तित्व पृथ्वी पर स्वर्ग से फेंके जाने से नहीं आया है। वरन मानव स्वयं ब्रह्म का प्रतिरूप है। अर्धनारीश्वर की परिकल्पना से और बड़ी परिकल्पना क्या स्त्री–पुरुष समानता के संदर्भ में की जा सकती है?

उदारवाद, समाजवाद, मार्क्सवाद या आदर्शवाद जैसे जितने भी यूरोपीय विचारधारा है उनकी नारीवादी दृष्टिकोण से संघर्ष हो सकता है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में जो नकारात्मक व्यावहारिक पक्ष है उससे नारीवादी चिन्तन का घोर विरोध सम्भव हो सकता है। लेकिन प्राचीन भारत की जो सकारात्मक मूल्य व्यवस्था रही है उससे नारीवादी चिन्तन का विरोध सम्भवतया नहीं या बहुत कम हो सकता है।

मध्यकाल में स्त्रियों की प्रस्थिति

बारहवीं शताब्दी से लेकर अठारवीं शताब्दी का समय मध्यकाल में रखा जा सकता है। इसमें महिलाओं की स्थिति में जितना पतन हुआ उतना किसी समय नहीं हुआ। इस काल में विदेशी आक्रमणों के कारण महिलाओं के प्रदत्त अधिकारों में गिरावट की गति बढ़ गयी। पूर्व मध्य युग में महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं थी वे लगातार पतनोन्मुख थी। इस युग में महिलाओं पर जोर दिया है कि पत्नी के लिए सबसे बड़ा धर्म पति की सेवा है।

मंगोल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात स्त्रियों की स्थिति जितना तीव्र गति से पतन की ओर अग्रसर हुई वह हमारे सामाजिक इतिहास में कलंक के रूप में सदैव याद रहेगा। मध्यकाल में विशेषकर अठारवीं शताब्दी

में स्वामी की मृत्यु के बाद पत्नियों के साथ दासियाँ पातुर व नौकरों के चिता में आत्मोत्सर्ग करने के भी कुछ प्रमाण मिलते हैं। जैसे 1724 में महाराजा अजीत सिंह के मृत शरीर के साथ अनेक रानियों, खवासने, पातुरे नाजिर आदि ने अग्नि में प्रवेश किया। मुस्लिम आक्रमणकारियों द्वारा लड़कियों का अपहरण तथा धर्म परिवर्तन, पैशाच विवाह इत्यादि से उत्पीड़ित होने के कारण बाल–विवाह, पर्दा प्रथा व सती प्रथा जैसी कुरीतियाँ समाज में इस कदर पहुँच गयी कि इस काल में राजघरानों को छोड़कर प्रायः सामान्य वर्ग की लड़कियाँ निरक्षर हो चली थीं।

नीरा देसाई का मानना है कि 'आन्तरिक घेराबन्दी के कठोर नियम जाति प्रथा पर मजबूत पकड़, श्राद्ध जैसी पुत्र–महत्व बढ़ाने वाली रीतियों, स्त्रियों के उपनयन संस्कार के अधिकार पर प्रतिबन्ध, दोहरी नैतिक नियमो जिसमें पुरुष के नैतिक पतन को नजरअंदाज किया जाता था और स्त्रियों को पूर्व–निर्धारित लीक से जरा भी विचलित होने पर कठिन से कठिन दंड दिया जाता था, पतिव्रत आदर्श पर अधिक जोर जिसमें वफादारी का एकतरफा उत्तरदायित्व स्त्री पर ही होता था।

उपर्युक्त प्रथाएं एक साथ नहीं हुई थी बल्कि जैसे–जैसे समाज रुढ़ियों में बंधता चला गया, उसकी गति अवरूद्ध होती गई तथा नियम कठोर होने लगे। इस युग में समाज की विचारधारा तथा उसके द्वारा निर्धारित मान्यताएँ एवं मूल्य ही इन संस्थाओं तथा रीति–रिवाजों को सामाजिक मान्यता दिलवाते हैं। अतः समाज में महिलाओं का न तो अपना व्यक्तित्व ही रह गया था और न ही सामाजिक अधिकार।

संस्थात्मक एवं विचारधारात्मक पराधीनता से पीड़ित महिला की स्थिति में परिवर्तन लाने के लिए सारे समाज की रचना में आमूल परिवर्तन करना अनिवार्य था। आत्मनिर्भर ग्रामीण समुदाय, संयुक्त परिवार व्यवस्था तथा जाति प्रथा जैसी आर्थिक एवं सामाजिक संस्थाओं की नींव हिलाने की आवश्यकता थी। आत्मकेन्द्रित विचारधारा को पलटना आवश्यक था। अंग्रेजों के शासन काल में इन दोनों आवश्यकताओं की आपूर्ति करने का प्रयास किया गया।

आधुनिक काल में स्त्रियों की प्रस्थिति

आधुनिक काल से हमारा तात्पर्य 18वीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों से लेकर स्वतंत्रता से पूर्व तक के काल से हैं अंग्रेजी शासन काल में भारतीयों द्वारा समाज–सुधार के अनेक प्रयत्न किये गये थे लेकिन सरकार की ओर से स्त्रियों की स्थिति में सुधार करने के कोई भी व्यावहारिक प्रयत्न नहीं किये गये। अपने हितों को पूरा करने के लिए स्त्रियों का शोषित बने रहना अंग्रेजों के लिए लाभप्रद था। इस काल में पाश्चात्य लेखकों, ब्रिटिश प्रशासकों तथा ईसाई मिशनरियों ने अपनी सांस्कृतिक श्रेष्ठता स्थापित करने के लिए भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों की आलोचना की। एक ओर उपयोगितावादियों और उदारवादियों ने और दूसरी ओर ईसाई मिशनरियों

विशेषकर इवेन्जलिकों ने सांस्कृतिक श्रेष्ठता को नैतिक आधारों पर स्थापित करने की दृष्टि से स्त्रियों के निम्न स्तर पर प्रहार किया। स्वाभाविक रूप से इस सांस्कृतिक संघर्ष और समाज में स्त्रियों की आलोचना के फलस्वरूप भारतीय बुद्धिजीवियों में गहरी प्रतिक्रिया हुई। यह उल्लेखनीय है कि साम्राज्यवादी शासकों एवं विचारकों की आलोचना के प्रत्युत्तर में भारतीय बुद्धिजीवियों और सुधारकों के भारत के गौरवपूर्ण अतीत की ओर ध्यान आकर्षित किया। यही नहीं, उन्होंने आदर्श स्त्रीत्व के प्रतिमान को भारतीय सांस्कृतिक अतीत में खोजा। इस क्रम में वैदिक युग में स्त्रियों के उच्च स्तर तथा उनकी उपलब्धियों के विभिन्न बिन्दुओं को तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए आदर्श के रूप में प्रस्तुत किया।[20] भारतीय समाज सुधार के आन्दोलन के उद्‌भव एवं विकास का समान्यतया पाश्चात्य विचारों के आगमन का परिणाम माना जाता है। भारतीय मानस पर यूरोप के स्वतंत्रता, तार्किकता और मानवीयता के विचारों के सहवर्ती प्रभाव ने एक नये चरित्र पैदा की। इस चरित्र का परिणाम था कि समाज सुधारक भी पैदा हुए जिसमें राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशव चन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने स्त्रियों की दशा में सुधार लाने का प्रयास किया। इन प्रयासों के बावजूद ब्रिटिश शासन के प्रारम्भ में समाज में व्याप्त बुराइयों को दूर करने के लिए कोई ठोस प्रयास नहीं किया गया, क्योंकि उनका एक मात्र उद्‌देश्य आर्थिक हितों की अधिकाधिक पूर्ति करना था। परिणामतः समाज में अनेक बुराइयाँ जो पहले से विद्यमान थीं, बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक स्त्रियों की सामाजिक निर्योग्यताओं के आधार पर इस काल में उनकी दयनीय स्थिति का अनुमान लगा सकते हैं।

सामाजिक क्षेत्र में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने , स्वतंत्र रूप से अधिकारों की मांग करने, व्यवहार में नियमों में किसी प्रकार का परिवर्तन करने आदि, अतः विधवा पुनर्विवाह अधिनियम 1856 में पास हुआ। पारिवारिक क्षेत्र में स्त्रियों के समस्त अधिकार प्राप्त हो गये। आर्थिक क्षेत्र में स्त्रियों की निर्योग्यताएँ सबसे अधिक थी। उन्हें संयुक्त परिवार की सम्पत्ति में हिस्सा प्राप्त करने से ही वंचित ही नहीं रखा गया बल्कि स्त्रियों को अपने पिता की सम्पत्ति में भी हिस्सा प्राप्त करने का कोई अधिकार नहीं था।

राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियों द्वारा हिस्सा लेने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था। यद्यपि 1919 के बाद स्त्रियों को मताधिकार देने के प्रयत्न किये गये लेकिन कोई व्यावहारिक सफलता नहीं मिल सकी। सन् 1937 के चुनाव में भी पति की शिक्षा और सम्पत्ति के आधार पर बहुत थोड़ी–सी स्त्रियों को मताधिकार प्रदान किया गया।

उपर्युक्त सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों के कारण नारी की दारुण दशा एवं दयनीय स्थिति को देखते हुए समाज सुधारकों के सुधार आन्दोलन प्रारम्भ किया। इन सुधारकों में अग्रणी थे– राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, केशव चन्द्र सेन, एम0 जी0 रानाडे, दयानन्द सरस्वती, देवेन्द्र

नाथ टैगोर, रामकृष्ण परमहंस, अरविन्द घोष, रविन्द्र नाथ टैगोर, महात्मा गांधी, घोड़ो केशव कर्वे, लाला लाजपत राय, बरेहाय जी मालाबारी, विवेकानन्द, एनी वेसेन्ट, सरोजनी नायडू, कमलादेवी, चट्टोपाध्याय, सुचेता कृपलानी, दुर्गाबाई देशमुख, पण्डिता रमाबाई, रेणुका राय, सरला देवी, मैडम कामा। इन प्रत्येक समाज सुधारकों के अथक प्रयत्न ने नारी मुक्ति आन्दोलन को तीव्र बनाया तथा कार्यक्षेत्र को विस्तृत किया। परिणामतः वेदकालीन समाज से लेकर अठारहवीं सदी के अन्त तक स्त्रियों के प्रति रूख में काफी परिवर्तन हुआ। स्त्रियों को अलग व्यक्तित्व के रूप में देखा जाने लगा। नारी के कार्यों के बारे में भले ही मतभेद हो किन्तु समाज में स्त्री उच्च स्थान की अधिकारणी है, ऐसी विचारधारा उन्नीसवीं सदी के परिवर्तन की विशेषता है।

अतः विशेषतः ध्यान देने योग्य है कि समाज सुधारकों तथा पुनरुद्धारवादियों का ध्यान केवल उच्च वर्ग की नारियों की ओर ही केन्द्रित हुआ था। पिछड़ी जातियों की स्त्रियों की समस्या तथा निम्न वर्ग की नारियों के प्रश्न को छुआ तक नहीं गया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हुए समाज सुधार आन्दोलनों, महिला आन्दोलनों एवं राष्ट्रीय आन्दोलनों ने स्त्री समानता की ऐसी नींव तैयार कर दी थी कि जिससे स्वतंत्रता के पश्चात उस पर संवैधानिक व्यवस्थाओं और अधिनियमों द्वारा ठोस एवं मजबूत दीवार खड़ी हो गयी। जिससे भारतीय नारियों ने अपना पुनर्मूल्यांकन करना प्रारम्भ कर दिया। नारी के पुरुषों के समान स्वतंत्रता, समानता, शिक्षा, सम्पत्ति, धार्मिक हक एवं शोषण के विरूद्ध अधिकार प्राप्त किये। आज भारतीय संविधान में उल्लिखित मौलिक अधिकारों में पुरुषों के समान सामाजिक आर्थिक राजनीतिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में अधिकार प्रदान किये गये हैं।

अंततः यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि भारतीय संस्कृति में नारी को जितनी उपमाओं से विभूषित किया गया है। उन्हीं उपमाओं ने उसे आज तक बेसहारा एवं विवश बनाकर रखा है। जैसा कि हम देख आये हें, अनेक शास्त्रकारों, महाकाव्यकारों तथा अन्य तमाम शास्त्रों के रचयिताओं ने अलग–अलग समयों में, अपने समसामयिक दृष्टिकोण से नारी की स्थिति पर प्रकाश डाला है। समय के बीतने के साथ वर्णनीय वस्तु की प्रकृति ही बदल जाया करती है, ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक ही था कि विभिन्न समयों में होने वाले किसी वस्तु के चित्रण में भी भेद पड़ जाता। समय बीतता गया तो परिस्थितियाँ भी बदलती चली गयीं। परिस्थितियाँ बदली तो नारी का मूल्यांकन बदला। नारी का मूल्यांकन बदला तो उसके प्रति समाज का अपना दृष्टिकोण बदला। समाज का दृष्टिकोण बदला तो समाज में उसकी स्थिति बदली और जब यह सब कुछ हुआ तो, उसके बिम्बों में अन्तर और विरोध भी आया। परिणाम यह हुआ कि हमें उसके चित्रों में विरोध ही दिखायी देने लगा। यदि पारिवारिक जीवन की स्थिरता और

पारिवारिक सुखों की दृष्टि से चित्र के अन्तर्गत वह बड़ी ही श्रद्धेय एवं पूज्य दिखाई देने लगी तो दूसरे के अन्तर्गत अपनी जन्मजात और स्वाभाविक हीनताओं के कारण वह अपने ही हित में आत्महत्या की दृष्टि से पुरुष पर ही निर्भर भी प्रतीत होने लगी। यह सब कुछ स्वाभाविक ही था। अस्तु कुछ भी हो, सम्पूर्ण नारी जाति के प्रति अपनाये गये हिन्दू दृष्टिकोण को तथा उसके प्रति हिन्दू मनीषियों द्वारा व्यक्त किये गये विचारों के स्वरूप को समझ लेने के उपरान्त यह तो मानना ही पड़ेगा कि समाज के उत्कृष्टतम मानवीय मूल्यों की रक्षा, उनके सम्बर्द्धन और उनके विकास की बात को ध्यान में रखकर ही समय–समय पर हिन्दू दृष्टाओं के द्वारा सच्चाई और ईमानदारी के साथ नारी–स्वभाव का तथा उसकी सामाजिक स्थिति का विश्लेषण, मूल्यांकन और निर्धारण किया जाता रहा है, हो सकता है कि समय विशेष में नारी के अपने जीवन–चक्र के विविध पक्षों में व्यक्त होने वाली उसकी अपनी स्वभावगत विशेषताओं और गुणों के कारण ही वे किसी एक पक्ष विशेष में उसके प्रति कठोरता बरतने के लिए किसी दूसरे पक्ष–विशेष में उसके प्रति उदारता ही प्रदर्शित करने के लिए बाध्य हुए हों। ऐसी स्थिति में जब हम उसके प्रति अपनायी गयी अनुदारताओं का मूल्यांकन करने बैठे तथा हम यह न भूला दे कि अपने द्वारा व्यक्त की गयी तमाम अनुदारताओं के बावजूद भी हिन्दू–मनीषियों और समाज–द्रष्टाओं ने स्त्री को एक पुत्री, पत्नी, माता और गृहणी के रूप में तथा पारिवारिक अर्थव्यवस्था को पारिवारिक जीवन को, स्वयं को और उसके मूल्यवान परम्पराओं को स्थिरता प्रदान करने वाली और उनका सम्बर्द्धन ही करती रहने वाली एक गृह–स्वामिनी के रूप में उसे एक अत्यन्त ही गौरवपूर्ण स्थिति भी प्रदान की है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. Neera Desai : Women in modern India, Vohra and Company Publishers. Pvt. Ltd. Bombay, 1977, P-1.
2. Sigmond Fried : New Introductory Lectures on Psyco-analysis (Tr.) W.J.H. Sproutt. Hograth London, 1933, P. 134.
3. Neera Desai : op. cit, p-1
4. ऋग्वेद 3/53/4 (गृहिणी गृहमुच्येत)।
5. अथर्ववेद : 10/ 8/27।
6. ऋग्वेद : 10/85/45, 1/164/33, 1/85/25।
7. अथर्ववेद : 6/11।
8. ऋग्वेद : 1/167/3।
9. ऋग्वेद : 10/85/86।
10. ऋग्वेद : 8/3/15 ''या दम्पत्ति समनसा सुनुत आ च धावतः देवासीतित्या।''

11. A.S. Altekar : The Position of women in Hindu civilization, The Cultural Publication House, Banaras Hindu University, Varanasi. 1938, p-93.
12. Ibid, p.94
13. रामनाथ वेदालंकार : वैदिक नारी, समर्पण शोध संस्थान, नई दिल्ली, 1984, पृ0 24–25.
14. आपस्तम्प गृह सूत्र : 15/13।
15. आश्वलापन गृह सूत्र : 3/8/11।
16. काठक गृह सूत्र : 25/23।
17. गौतम बृहत सूत्र : 2/51।
18. Vina Mazumdar (ed.) : Symbal of power; women in the changing Society, Allied. Publishers. Bombay. 1979, P.8
19. S.K. Ghosh : Women in a changing society, Ashish Publishing House. New Delhi, 1984, P. 170.
20. Kumkum Sangri & Sudesh Vaid (ed.) : Recasting Women: Essays in Colonial History, Kali for women, New Delhi, 1989, p-27-58.

***

किशोरावस्था में बालिकाओं का पोषण और स्वास्थ्य

पूजा पल्लवी *

किशोरावस्था पोषण की दृष्टि से बेहद संवेदनशील उम्र होती है। इस अवस्था में बालिकाओं को पोषक तत्वों की आवश्यकताएं काफी बढ़ जाती है। इस उम्र में लड़कों की अपेक्षा लड़कियों को विटामिनों और खनिज लवणों की आवश्यकता अधिक होती है। यदि बाल्यावस्था में कोई पोषण संबंधी कमियाँ रह गई हैं तो उनकी भरपाई किशोरावस्था के दौरान अवश्य हो जानी चाहिए। किशोरियों में सबसे सामान्य स्वास्थ्य समस्या एनीमिया है। इसके लिए जरूरी है कि आयरन, फोलिक एसिड युक्त भोज्य पदार्थ अधिक मात्रा में किशोर बालिकाओं के भोजन में शामिल हों। किशोरावस्था में बालिकाओं के स्वास्थ्य से जुड़ा एक महत्वपूर्ण पहलू समय पूर्व गर्भधारण की समस्या है। किशोरियों में यौन और प्रजनन सम्बन्धी स्वास्थ्य जानकारी का अभाव होने से समय से पूर्व गर्भधारण की समस्या आ रही है। इसके कारण किशोरियों को कई तरह की शारीरिक और मानसिक तकलीफों को झेलना पड़ता है। किशोरावस्था में बालिकाओं के पोषण और स्वास्थ्य का मामला सीधे–सीधे लैंगिक भेदभाव वाली मानसिकता से भी जुड़ा हुआ है। परिवार में लड़कियों को पराया धन मानकर उनके पोषण और स्वास्थ्य पर उचित ध्यान नहीं दिया जाता है और कम उम्र में ही उनका विवाह कर दिया जाता है, जिससे उन्हें कई स्वास्थ्य समस्याओं से जूझना पड़ता है। बहुत सारी किशोरियों को माहवारी के दौरान सेनेटरी पैड की जरूरत और महत्व के बारे में सटीक जानकारी नहीं होती है। इस दौरान अस्वच्छ तौर–तरीके अपनाने से किशोरियों के स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा हो सकता है। अतः किशोर बालिकाओं को साफ–सफाई व्यक्तिगत स्वच्छता और सुरक्षित साधनों के इस्तेमाल के बारे में समझाया जाना आवश्यक है। साथ ही बालिकाओं के पोषण और स्वास्थ्य के संदर्भ में सामाजिक नजरिया बदलने की आवश्यकता है, तभी आने वाली पीढ़ियाँ स्वस्थ पैदा होंगी।

KEYWORDS – **पोषण, स्वास्थ, स्वच्छता, एनीमिया, सेनिटरी पैड, गर्भधारण, मासिक–चक्र, मोटापा।**

किशोरावस्था मानव जीवन की सभी अवस्थाओं में सबसे महत्वपूर्ण है जोकि बाल्यावस्था और युवावस्था के बीच की कड़ी है। इस अवस्था के दौरान न केवल व्यक्ति का शारीरिक विकास तीव्र गति से होता है बल्कि उसका मानसिक और संवेगात्मक विकास भी बहुत तेज होता है। साथ ही

* असि. प्रो. गृह विज्ञान, गया प्रसाद स्मारक राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बारी, आजमगढ़, उत्तर प्रदेश

उसकी शारीरिक संरचना में भी अत्यधिक परिवर्तन आता है। बालिकाओं के संदर्भ में इस आयु में होने वाले बदलाव विशेष महत्व रखते हैं जिनके फलस्वरूप किशोरियों की पौष्टिक तत्वों की आवश्यकताएं भी काफी बढ़ जाती हैं। चूँकि किशोरावस्था में लड़के और लड़कियों दोनों को पौष्टिक तत्व भरपूर मिलने चाहिए लेकिन किशोरियों की जटिल शारीरिक संरचना और जरूरतों के कारण उन्हें लड़कों की अपेक्षा विटामिनों व खनिज लवणों (कैल्शियम, आयरन, जिंक आदि) की आवश्यकता अधिक होती है। इसलिए किशोरावस्था में भले ही लड़कियों को भोजन की कुल मात्रा लड़कों की तुलना में कम चाहिए किन्तु उनके भोजन की पौष्टिक गुणवत्ता लड़कों के भोजन से कहीं बेहतर होनी चाहिए। यदि बाल्यावस्था में पोषण सम्बन्धी कमियाँ रह गई हैं तो उनकी भरपाई किशोरावस्था के दौरानअवश्य हो जानी चाहिए।

किशोरावस्था पोषण की दृष्टि से एक संवेदनशील समय होता है, जब तेज शारीरिक विकास के कारण पौष्टिक आहार की मांग में वृद्धि होती है। किशोरावस्था के दौरान लिए गए आहार सम्बन्धी आचरण पोषण सम्बन्धी समस्याओं में योगदान कर सकते हैं, जिसका स्वास्थ्य एवं शारीरिक क्षकता पर आजीवन असर रहता है। भारत में किशोरों का बड़ा भाग 40 प्रतिशत लड़कियाँ एनीमिया (रक्त की कमी) से पीड़ित हैं। किशोरों में एनीमिया उनके विकास संक्रमणों के विरूद्ध प्रतिरोध शक्ति तथा ज्ञानात्मक विकास और कार्य की उत्पादकता को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है। किशोरावस्था पोषण सम्बन्धी कमियों जो संभवतः प्रारम्भिक जीवन में घटित होती हैं, को ठीक करने एवं विकास को पूरा करने और आहार सम्बन्धी अच्छे व्यवहारों को स्थापित करने का एक अवसर प्रदान करती है। *(Unicef.org)*

किशोरियों में सबसे सामान्य स्वास्थ्य समस्या एनीमिया है। एनीमिया होने के मुख्य कारण हैं– बढ़ती हुई शारीरिक आवश्यकताएं और माहवारी, किन्तु दैनिक भोजन में आयरन युक्त भोज्य पदार्थों को प्रचुर मात्रा में शामिल न करना। औसत से कम कद होना भी एक बड़ी चिंता है। इसका एक मुख्य कारण है– कैल्शियम की कमी होना। जीरो साइज फिगर की चाह में किशोरियाँ अक्सर दूध और दूध से बने खाद्य पदार्थों से परहेज करती हैं क्योंकि एक गलत धारणा यह है कि दूध से मोटापा आता है। आमतौर पर किशोरियाँ चटपटे खाने की इच्छा के चलते फल और सब्जियों का सेवन भी कम करती हैं जिसकी वजह से उनके अंदर पौष्टिक तत्वों की कमी, कब्ज, मोटापा, कुपोषण जैसी दिक्कतें होती हैं। इसलिए यह जरूरी है कि किशोरियों को पोषक तत्वों के महत्व और संतुलित इाइट के बारे में बताया जाए।

किशोरावस्था में शारीरिक बदलावों के साथ–साथ जीवनशैली और दिनचर्या भी बदल जाती है। सिनेमा और टी0वी0 के प्रभाव, दोस्तों के बीच

प्रभाव जमाने की चाहत, स्लिम और आकर्षक फिगर की चाह में लड़कियाँ अक्सर तनाव महसूस करती हैं। कुछ लड़कियाँ इस उम्र में खान–पान की गलत आदतों की शिकार हो जाती है जिससे उनके स्वास्थ्य और पोषण पर बुरा असर पड़ता है और सामान्य शारीरिक विकास में बाधा आती है। जंक फूड और फास्ट फूड के बढ़ते प्रचलन से किशोरियों में मोटापे की समस्या बढ़ रही है। मोटापे से ग्रस्त किशोरियों को मासिक चक्र से सम्बन्धित परेशानियाँ होती है और दोस्तों की कमी के कारण वे अकेलापन और तनाव की शिकार होने लगती हैं। कुछ किशोरियाँ तो अवसाद से ग्रस्त हो जाती हैं जोकि उनके पूरे जीवन को बुरी तरीके से प्रभावित करता है। इसलिए किशोरावस्था में अवसाद की जल्दी पहचान करना जरूरी है जिससे भविष्य की महिलाओं का जीवन बर्बाद न हो।

किशोरावस्था में खासतौर पर पोषण पर उचित ध्यान दिया जाना अति आवश्यक है, क्योंकि यह जीवन की एक ऐसी विशेष अवस्था है जिसके दौरान मनुष्य को दूसरी बार मौका मिलता है कि उसकी रूकी हुई या धीमी गति से होने वाली शारीरिक वृद्धि एक और अवसर पाकर उचित दिशा की ओर बढ़ सके। यदि बाल्यावस्था में कोई पोषण सम्बन्धी कमी रह गई हो तो इस अवस्था में उसकी भरपाई की जा सकती है। किशोर और किशोरियों दोनों को ही अधिक पोषण युक्त आहार की जरूरत होती है। किन्तु जागरूकता की कमी और व्यापक लैंगिक भेदभाव के कारण किशोरियों को प्रायः जरूरत के अनुसार पोषाहार नहीं मिलता। कुपोषण की समस्या दूर करने और पीढ़ी दर पीढ़ी चल रहे कुपोषण के चक्र को तोड़ने के लिए बालिकाओं को पौष्टिक आहार विशेष तौर पर लौह, फोलिक एसिड और दूसरे पौष्टिक तत्वों से भरपूर तथा उपयुक्त कैलोरीयुक्त भोजन उपलब्ध करवाना परिवार, समाज व सरकार का उत्तरदायित्व होना चाहिए, जिससे कि हमारी किशोरियां आने वाले समय में मातृत्व का बोझ भली प्रकार उठा सकें और स्वस्थ शिशु को जन्म दे सकें। *(कुरूक्षेत्र, जनवरी 2016, पृ0 20–21)*

किशोरावस्था में बालिकाओं के स्वास्थ्य और पोषण का मुद्दा प्रचलित सामाजिक दृष्टिकोण से घनिष्ठता से जुड़ा है। हमारे देश में आज भी ऐसे परिवारों की कमी नहीं है जहाँ यह सोच बहुत सामान्य है कि लड़के वंश को आगे बढ़ाते हैं जबकि लड़कियाँ पराया धन होती हैं। इसलिए एक तरफ किशोरावस्था के दौरान लड़कों के पोषण कापूरा ध्यान रखा जाता है तो लड़कियों के खान–पान के मामले में लापरवाही भरा रवैया अपनाया जाता है। पितृसत्तात्मक परिवार में यह धारणा पाई जाती है कि लड़का बाहर से कमाकर लायेगा जबकि लड़की केवल चूल्हा–चौका करेगी इसलिए लड़के को अच्छा खान–पान मिले जबकि लड़की का काम तो रूखे–सूखे से भी चल जाएगा, उसे कौन सा बाहर जाकर कमाना है। समाज में व्याप्त ऐसी मानसिकता से किशोरावस्था में बालिकाओं के उचित पोषण की

आवश्यकता की अनदेखी होती है जिससे उनके आगे के जीवन में उन्हें कई स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

भारत में कई क्षेत्रों में अभी भी बाल विवाह का प्रचलन बना हुआ है जिसके कारण किशोरावस्था में बालिकाओं को विभिन्न स्वास्थ्य समस्याओं से जूझना पड़ता है। ऐसा होना किसी भी सभ्य और विकसित कहे जाने वाले समाज के लिए एक शर्म का विषय है। विश्व स्तर पर प्रत्येक तीन सेकेण्ड में एक बालिका का उसकी सहमति के बगैर विवाह किया जा रहा है। यूनिसेफ की रिपोर्ट (स्टेट्स ऑफ वर्ल्ड चिल्ड्रेन रिपोर्ट 2012) का दावा है कि बाल विवाह के वैश्विक आँकड़ों में 40 फीसदी हिस्सेदारी भारत की है। प्रत्येक सौ में से सात कन्याओं की शादी 18 वर्ष से कम उम्र में हो रही है। वर्ष 2005–06 में किए गए राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के मुताबिक, कुल उत्तरदाता महिलाओं में से 22 फीसदी महिलाओं ने पहली संतान को 18 से कम वर्ष की उम्र में जन्म दे दिया था। *(कुरूक्षेत्र, जनवरी 2016, पृ0 37–38)*

किशोरावस्था में बालिकाओं के स्वास्थ्य से जुड़ा एक महत्वपूर्ण पहलू समय से पहले गर्भधारण की समस्या है। किशोरियों में यौन और प्रजनन सम्बन्धी स्वास्थ्य जानकारी का अभाव होने से समय से पूर्व गर्भधारण की समस्या आ रही है। यौन शिक्षा के अभाव के कारण और कम उम्र में विवाह हो जाने से बालिकाओं में किशोर गर्भावस्था एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य समस्या है, जिसके कारण किशोरियों को कई तरह की शारीरिक और मानसिक तकलीफों को झेलना पड़ता है। किशोर बालिका चाहे विवाहित हो या नहीं, गर्भावस्था के दौरान उसके सवास्थ्य पर बुरा असर पड़ता है। ग्रामीण भारत में विवाहित किशोरियों पर परिवार और समाज का दबाव होता है कि वह जल्द से जल्द माँ बने और इस प्रकार वह परिवार नियोजन से वंचित रह जाती है। वहीं अविवाहित किशोर बालिकाओं में समाज से बहिष्कृत होने का डर रहता है।

किशोरावस्था में गर्भधारण, एक बालिका, उसके परिवार, उसके समुदाय और उसके राष्ट्र के लिए सामाजिक एवं आर्थिक दुष्परिणाम का कारण होता है। कई लड़कियाँ गर्भवती होने के बाद कॉलेज नहीं जा पातीं और भविष्य निर्माण के लिए उपलब्ध अवसरों का लाभ नहीं उठा पातीं। महिला–शिक्षा काफी मजबूती से उनकी अर्जन क्षमता, उनके स्वास्थ्य और उनके बच्चों के स्वास्थ्य से जुड़ी होती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि लगभग 1.6 करोड़ बालिकाएं प्रतिवर्ष 18 वर्ष से कम उम्र में ही माँ बन जाती हैं, जबकि अन्य 32 लाख बालिकाओं को असुरक्षित गर्भपात से गुजरना पड़ता है। विकासशील देशों में लगभग 90 प्रतिशत किशोर गर्भावस्था विवाहितों की है, लेकिन इनमें से कई लड़कियों के लिए गर्भावस्था के बारे में उनकी इच्छा है या नहीं, इसका विकल्प नहीं होता। *(कुरूक्षेत्र, अगस्त 2016, पृ0 26–27)*

किशोरावस्था में बालिकाओं के स्वास्थ्य और पोषण का मामला सीधे–सीधे लैंगिक भेदभाव वाली मानसिकता से जुड़ा है। अब प्रश्न उठता है कि लैंगिक भेदभाव वाली यह मानसिकता पनपती कैसे है? इसका उत्तर समाजीकरण की उस प्रक्रिया में छिपा है, जिससे हम गुजरते हैं। लड़कियों को जन्म से डरकर और दबकर रहना सिखाया जाता है। जबकि लड़कों को मजबूत होना और हावी होना सिखाया जाता है। मीडिया में भी हम देखते हैं कि लड़कियों को इतनी उदासीनता के साथ दिखाते हैं मानों वे सजावटी समान है या बच्चों को जन्म देने की मशीन है, जबकि लड़कों से अधिक कामकाजी भूमिका की अपेक्षा की जाती है। ये दोहरे मानदंड ही पोषण, स्वच्छता, स्वास्थ्य सेवा और प्रजनन संबंधी स्वास्थ्य जैसे मूलभूत मामलों में भी लड़कों और लड़कियों के बीच भेदभाव को सांस्कृतिक मंजूरी दे देते हैं (बायल 2009, डब्ल्यूएचओ 2002)। यह खोखली बात नहीं है। यह सिद्ध करने के स्पष्ट प्रमाण हैं कि सामाजिक रवैये का लड़की के स्वास्थ्य पर सीधा प्रभाव पड़ता है। अनुसंधान बताते हैं कि टीकाकरण के मामले में लड़कों की तुलना के मामले में लड़कियों के पूरे टीके लगने की संभावना बहुत कम है और लड़कियों को पोषक खुराक मिलना काफी हद तक इस पर निर्भर करता है किउनकी माँ साक्षर है या नहीं, यदि माँ निरक्षर होती है तो लड़कियों को अपने भाइयों की अपेक्षा बेहतर भोजन मिलने की संभावना बहुत कम होती है और साक्षर पिता भी इस लिगंभेद को दूर करने के लिए कुछ नहीं करता। *(बरूआ, पृ0 1719–1731)*

बालिकाओं को किशोरावस्था में पोषण की आवश्यकता और स्वास्थ की देखभाल को अत्यंत महत्वपूर्ण मानते हुए डॉ0 एस0पी0 जैश्वार, स्त्रीरोग विशेषज्ञ, क्वीन मेरी अस्पताल, लखनऊ, बताती हैं, ''11 से 18 वर्ष की उम्र में शरीर में तेजी से परिवर्तन होते हैं और शरीर का विकास होता है (माहवारी की शुरूआत, हार्मोनल परिवर्तन इत्यादि) और इसी वजह से पर्याप्त मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता भी इसी उम्र में अधिक होती है। खून की कमी कम आयु में विवाह व बार–बार गर्भधारण करने से युवा महिलाओं के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जब खून की कमी से ग्रस्त महिला एक बच्चे को जन्म देती है तो ऐसे बच्चे का कुपोषित होना निश्चित है। इसके लिए आवश्यक है कि किशोरावस्था में ही खून की कमी को दूर किया जाये ताकि भविष्य में वह एक स्वस्थ बच्चे को जन्म दे सके। डॉ0 एस0पी0 जैश्वार बताती हैं कि किशोरियों में मासिक स्राव में रक्त हानि हो जाती है, जिसके कारण उनमें खून की कमी होने लगती है। इसलिए किशोरावस्था के दौरान एनीमिया (खून की कमी) एवं सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी को पूरा करने के लिए उन्हें आयरन– फोलिक एसिड, कैल्शियम और पौष्टिक आहार लेना चाहिए, जिसमें दालें, हरी सब्जियाँ, गाजर, गोभी, दूध, दही तथा मौसमी फल आदि शामिल हैं। *(gaonconnection.com)*

किशोरावस्था में लड़कियों के स्वास्थ्य का सम्बन्ध स्वच्छता से भी जुड़ा होता है। 11 से 12 साल की किशोरियों में माहवारी की शुरूआत होने लगती है। यही वह समय होता है जब उन्हें इसके बारे में सही सलाह देकर समझाया जाय, क्योंकि बहुत सारी किशोरियों को माहवारी के दौरान सेनेटरी पैड की जरूरत और महत्व के बारे में सटीक जानकारी नहीं होती है। साथ ही शर्म और झिझकवश वह इसके बारे दूसरे लोगों से चर्चा भी नहीं कर पाती हैं। ऐसे में माता और परिवार की दूसरी महिलाओं की यह जिम्मेदारी है कि वे मासिक चक्र के दौरान उन्हे स्वच्छता के महत्व के बारे में बतायें, जिससे उन्हें इससे जुड़ी स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं से बचाया जा सके।

आज भी मासिक धर्म और इससे सम्बन्धी व्यवहारों में महिलाओं और किशोरियों के लिए कई वर्जनाएं और सामाजिक–सांस्कृतिक अवरोध हैं। इस दौरान साफ–सफाई एवं स्वच्छता नहीं होने एवं अस्वच्छ तौर–तरीके अपनाने से किशोरियों के स्वास्थ्य के लिए खतरा पैदा हो सकता है जो आगे जाकर प्रजनन स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव डालता है। मासिक धर्म के दौरान उपयोग किये जाने वाले सुरक्षित उत्पादों की सहज उपलब्धता न होना बड़ी समस्या है और महिला/किशोरी की गतिशीलता में बाधा बनता है। माहवारी बालिका के सयानी होने का एक लक्षण मात्र है, परन्तु भारतीय परिवेश में सामान्यतःइसे विवशता, कमजोरी और अपराध बोध सेजोड़ा जाता है। माहवारी शुरू होने के बाद लड़कियों का स्कूल आना कम हो जाता है या कई बार उनका स्कूल छूट जाता है। किशोरी बालिकाओं में मासिक धर्म के दौरान साफ–सफाई व प्रबन्धन करने, व्यक्तिगत स्वच्छता व सुरक्षित साधनों के बारे में जागरूकता पैदा करने, इन्हें लगातार व्यवहार में लाने, इस विषय पर उनकी चिन्ताओं व समस्याओं के उचित हल के उन्हें प्रेरित करना आवश्यक है। *(mpwcdmis.gov)*

जहाँ तक बालिकाओं के पोषण और स्वास्थ्य का मसला है, उसके बारे में यह स्पष्ट है कि बालिकाओं के पोषण और स्वास्थ्य का ध्यान शैशवावस्था से ही रखे जाने की आवश्यकता होती है किन्तु किशोरावस्था तीव्र विकास की अवस्था होने के कारण बालिकाओं की पोषण संबंधी जरूरतें बहुत बढ़ जाती हैं। इसलिए इस अवस्था में उनके पोषण पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता पड़ती है, इस अवस्था में मिलने वाला पोषण उन्हें मातृत्व के लिए परिपक्व बनाता है। वास्तव में पोषण और स्वास्थ्य में परस्पर पीढ़ीगत और बहुआयामी सम्बन्ध पाया जाता है। 1992 में पहली बार शारीरिक और मानसिक विकास में होने वाली कमी के पीढ़गत स्वरूप को स्पष्ट किया गया था कि किस प्रकार पीढ़ी दर पीढ़ी लोगों का विकास प्रभावित होता है, जिसकी शुरूआत असल में महिलाओं से होती है। यह भी कहा गया कि महिलाओं के स्वास्थ्य और कल्याण में सुधार से ही कुपोषण की रोकथाम की जा सकती है। अगर बच्चियाँ कुपोषण का शिकार होंगी तो अस्वस्थ शरीर के साथ किशोरावस्था में कदम रखेंगी। इसका उनके समूचे

स्वास्थ्य पर असर होगा, विशेष रूप से जबवह कम उम्र में गर्भधारण करेंगी। जिन गर्भवती किशोरियों का शारीरिक विकास पहले से प्रभावित है या जिनमें खून की कमी है, उन किशोरियों में प्रसव के समय और उसके बाद समस्याएं होने की आशंका अधिक पायी जाती है, जैसे उनका प्रसव समय से पहले हो सकता है या उनके शिशु कमजोर पैदा हो सकते हैं। बार–बार गर्भधारण करना या कम अंतराल पर बच्चों को जन्म देना, साथ ही भारी शारीरिक श्रम, आहार उपलब्ध न होना, भेदभाव और पर्याप्त स्वास्थ देखभाल न मिलने के कारण अनेक महिलाओं में पोषण की कमी हो जाती है। इससे उनका स्वास्थ्य तो प्रभावित होता ही है अगली पीढ़ी के स्वास्थ्य और पोषण पर भी बुरा असर होता है। *(योजना, फरवरी 2016 पृ0 40–41)*

किसी भी महिला को स्वस्थ किशोरावस्था पूर्ण क्षमता हासिल करने का एक मंच प्रदान करती है और शारीरिक व मानसिक रूप से परिपक्व महिला ही स्वस्थ शिशु को जन्म दे सकती है जो किसी भी देश की तरक्की के लिए अनिवार्य शर्त है। इसलिए किसी भी महिला को उसके किशोरावस्था में संपूर्ण पोषण मिलना ही चाहिए क्योंकि इससे देश की तरक्की की नींव तैयार होती है, आने वाली पीढ़िया स्वस्थ और क्षमतावान होती हैं। नोबल पुरस्कार विजेता प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन और सादिक ओस्मानी का मानना है, ''अगर महिलाएं पोषण और स्वास्थ्य देखभाल से वंचित रहती हैं तो समाज में उसका विपरीत प्रभाव यह पड़ता है कि उनके पूरे वंश का स्वास्थ्य प्रभावित होता है भले ही वे पुरूष हों या फिर महिलाएं।'' *(योजना, फरवरी 2016 पृ0 40)*

निष्कर्ष – अंततः यह कहना उचित होगा कि किशोर बालिकाएं ही हमारी आने वाली स्वस्थ पीढ़ियों के लिए सबसे महत्वपूर्ण हैं, जिनसे मजबूत और सशक्त भारत का निर्माण होगा। भारत के उज्जवल भविष्य के लिए यह जरूरी है कि किशोर बालिकाओं के पोषण और स्वास्थ्य का विशेष ध्यान रखा जाय, इसके लिए सामाजिक जागरूकता के साथ–साथ नजरिये में बदलाव लाना भी बहुत जरूरी है। किशोरावस्था पोषण और स्वास्थ्य की दृष्टि से अति संवेदनशील अवस्था है और बालिकाओं के संदर्भ में यह जरूरी है कि उन्हें पर्याप्त पोषण प्राप्त हो। परिवार के अंदर लड़के और लड़की के बीच भेद का बर्ताव समाप्त होना सबसे जरूरी है। एक बालिका के लिए केवल किशोरावस्था ही नहीं बल्कि शैशवावस्था से ही जरूरी पोषण का ख्याल रखा जाना चाहिए तभी हम एक विकसित और समृद्ध भारत की ओर बढ़ सकते हैं।

सन्दर्भ :

1. https://www.unicef.org>india>node
2. कुरूक्षेत्र, जनवरी 2016, पृ0 20–21
3. कुरूक्षेत्र, जनवरी 2016, पृ0 37–38
4. कुरूक्षेत्र, अगस्त 2016, पृ0 26–27

5. बरूआ, वी0के0 (2004): जेंडर बायस अमंग चिल्ड्रेन इन इंडिया इनकेयर डाइट एंड इम्यूनाइजेशन अगेंस्ट डिजिज, सोशल साइंस एंड मेडिसिन, 58 (9), पृ0 1719–1731
6. https://www.gaonconnection.com/nari-diary/make-the-right-nutrition-for-your-girl
7. https://mpwcdmis,gov.in>IcdsPdf>PROJECTUDITA
8. योजना, फरवरी 2016, पृ0 40–41
9. योजना, फरवरी 2016, पृ0 40

***

भारत के संविधान में मौलिक अधिकार राज्य के कानून : एक संवैधानिक अध्ययन

डॉ. सुखवीर सिंह *

''हम किसी वस्तु को तब तक नहीं समझ सकते जब तक हम यह न जान लें कि वह क्या करती है''[1]

संविधान लागू होने के 72 वर्ष बाद भी कानूनविदों के बीच एक जटिल प्रश्न घूम रहा है कि संविधान में लिखे गये मौलिक अधिकार किसके हैं? अर्थात ये जनता के मौलिक अधिकार हैं या राज्य (सरकार) के मौलिक अधिकार हैं। यह प्रश्न इसलिए पैदा हुआ है क्योंकि संविधान के भाग तीन का नाम सिर्फ मौलिक अधिकार है। इसका नाम न तो राज्य के मौलिक अधिकार है और न ही नागरिकों के मौलिक अधिकार है। यह भ्रम कोई नया नहीं है। संविधान सभा के सदस्य भी इसी भ्रम के शिकार थे। संविधान सभा के कई सदस्यों ने इन मौलिक अधिकारों की आलोचना यह मानकर की कि ये सभी नागरिकों के मौलिक अधिकार हैं। संविधान की औपचारिक परिभाषा का अध्ययन करने पर पता चलता है कि संविधान ऐसा दस्तावेज होता है जो सरकार के तीनों अंगों के ढाँचे और उनके प्रमुख कार्यों को स्पष्ट करता है और इनके संचालन के मार्गदर्शक सिद्धान्तों को बताता है। इससे यह प्रतीत होता है कि संविधान सरकार का दस्तावेज होता है इसमें नागरिकों के अधिकारों की बात भ्रामक है। नागरिकों के मौलिक अधिकारों को भी परिभाषित किया है इस परिभाषा का अध्ययन करना अति आवश्यक है जिससे यह स्पष्ट होगा कि मौलिक अधिकार किन अधिकारों को कहा जाता है। क्या संविधान के मौलिक अधिकार इस परिभाषा के आवश्यक तत्वों को पूरा करते हैं ? यह शोधपत्र इस भ्रम को दूर करने में सहायक होगा कि संविधान में मौलिक अधिकार जनता के मौलिक अधिकार हैं या राज्य (सरकार) के मौलिक अधिकार हैं।

सांकेतिक शब्द अधिकार – मौलिक, राज्य, संविधान, दस्तावेज, संविधान सभा।

किसी भी संविधान की अंतर्वस्तु को समझने के लिए संविधान की परिभाषा को समझना अति आवश्यक है। संविधान की सामान्य परिभाषा इस प्रकार है– ''संविधान ऐसा दस्तावेज होता है जो सरकार के अंगों (कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका) के ढ़ाँचे को और उनके प्रमुख कार्यों को निर्दिष्ट करता है और उन अंगों के संचालन के लिए मार्गदर्शक सिद्धान्तों को विहित करता है।''[2] संविधान की इस परिभाषा से स्पष्ट प्रतीत होता है कि संविधान में सरकार के तीनों अगों अर्थात कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के ढ़ाँचे का तथा उनके कार्य एवं मार्गदर्शक सिद्धान्तों का वर्णन होता है। इससे यह भी स्पष्ट है कि नागरिकों के मौलिक अधिकार संविधान की आवश्यक अन्तर्वस्तु नहीं है। सी0 एफ0 स्ट्रांग

* (विधि विभाग) आगरा कालेज आगरा।

ने संविधान के बारे में कहा है कि संविधान सत्ताधारियों की शक्ति पर अंकुश रखने का साधन है।[3] एस0 ई0 फ़ाइनर ने कहा कि संविधान ''उन नियमों की संहिताएँ हैं जो विभिन्न सरकारी अभिकरणों और उनके अधिकारियों के बीच कार्यों, शक्तियों और कर्त्तव्यों का आबंटन निर्धारित करती हैं और उनके तथा सर्वसाधारण के बीच संबंध निर्दिष्ट करती है।[4] सर हेनरी मैन ने बताया कि जापान की विधि में सन 1868 तक विधिक अधिकार जैसे शब्दों का प्रयोग नहीं किया था। डॉ0 टुस्डा द्वारा 1868 में सर्वप्रथम जापान की विधि संहिता में ''केन रे'' शब्दों का प्रयोग किया था। इन शब्दों का अर्थ शक्ति रक्षित हित होता है जिसे विधिक अधिकार कहा जाता है।[5]

वहीं हॉलैण्ड ने अधिकार को शक्ति से भिन्न माना है और विधिक अधिकार के बारे में कहा है कि विधिक अधिकार ऐसी विधिक क्षमता या सार्मथ्य है जिसके द्वारा वह समाज की सहायता से अन्यों के कृत्यों पर उचित नियन्त्रण रखता है। ऑस्टिन का कहना है कि अधिकार शक्ति का प्रतीक है क्योंकि हर अधिकार का जन्म बल या शक्ति से होता है। ऑस्टिन ने सबसे महत्तवपूर्ण बात यह कही कि हर अधिकार के साथ कर्त्तव्य अवश्य जुडा रहता है चाहे ऐसा अधिकार नैतिक हो, दैवीय हो या विधिक हो।[6] ऑस्टिन की बात पर ध्यान दिया जाए तो भारत के संविधान में अधिकारों की बात हो सकती है परन्तु किसी भी अधिकार के साथ कोई कर्त्तव्य न जुडा होने के कारण इन मौलिक अधिकारों को अधिकार कहना सही नहीं है। भारत के संविधान में सवंधान निर्माताओं ने मौलिक अधिकारों के अध्याय में नागरिकों के कुछ कथित अधिकारों को राज्य तक ही सीमित रखा है।

अब यहां एक प्रशन पैदा होता है कि क्या इन कुछ कथित अधिकारों को राज्य के विरूद्ध लागू कराया जा सकता है ? इस प्रश्न का उत्तर ऑस्टिन ने भी दिया था। उनका विचार था कि राज्य अर्थात सरकार के विरूद्ध जनता का कोई अधिकार नहीं हो सकता। क्योंकि किसी भी विधिक अधिकार के लागू होने के लिए तीन पक्षकार होने चाहिए; पहला अधिकार का धारण करने वाला। दूसरा अधिकार के साथ जुड़े कर्त्तव्य को धारण करने वाला। तीसरा अधिकार को लागू कराने वाली शक्ति अर्थात सरकार। ऑस्टिन ने एक अच्छा उदाहरण बताया कि यदि कोई व्यक्ति राज्य के विरूद्ध अपने अधिकारों को लागू करवाना चाहता है तो यहां राज्य ही कर्त्तव्य को धारण करने वाला है। अर्थात राज्य को ही कर्त्तव्य पूरा करना है। ऐसी स्थिति में राज्य अपने कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए अपने ही विरूद्ध शक्ति का प्रयोग कैसे कर सकता है। इसी आधार पर ऑस्टिन ने कहा होगा कि राज्य अर्थात सरकार के विरूद्ध जनता के कोई अधिकार नहीं होता। ऑस्टिन ने जब अपना यह मत व्यक्त किया था उस समय इंग्लैण्ड़ की विधि में सम्राट के विरूद्ध वाद लाने कि व्यवस्था नहीं थी। इंग्लैण्ड़ के कानून में पहली बार सन 1947 में क्राउन प्रेसीडेन्सी एक्ट पारित हुआ जिसमें राज्य के विरूद्ध जनता के अधिकारों को मान्यता दी गयी।[7] विधिशास्त्री सामण्ड ने तो राज्य के विरूद्ध अधिकारों को अपूर्ण अधिकार कहा है। उन्होंने कहा कि इन अधिकारों को राज्य की सहायता से लागू कराया जा सकता है और यदि राज्य सहायता न दे तो इन अधिकारों को न्यायालय द्वारा मान्यता प्राप्त होने पर भी लागू नहीं कराया जा सकता

है।[8] भारत के संविधान में लिखे गये मौलिक अधिकारों के बारे में कई लेखकों ने अपनी–अपनी किताबों में बताया है कि ये मौलिक अधिकार व्यक्ति के हैं या नागरिकों के हैं। यही बात कानून की पढ़ाई के दौरान भी बतायी जाती है। जबकि संविधान की परिभाषा के अनुसार संविधान में सरकार के तीनों अंगों के ढ़ाँचे, उनके कार्य और उनके लिए मार्गदर्शक सिद्धान्त होने चाहिए। फिर लेखकों द्वारा अपनी–अपनी किताबों में लिखना और कानून की कक्षाओं में यह पढ़ाना कि भारत के संविधान में लिखे गये मौलिक अधिकार भारत के नागरिकों या व्यक्तियों के हैं कितना सही है। कहीं यह जानबूझकर फैलाया गया भ्रम तो नहीं है। हांलाकि भारत के संविधान में लिखे गये मौलिक अधिकारों पर प्रश्न उठाना कोई नई बात नहीं है। संविधान निर्माण के समय से ही इन पर प्रश्न उठाए जा रहे हैं। संविधान सभा के सदस्यों ने स्वयं इन पर आपत्तियां उठायीं। संविधान सभा के सदस्य दमोदर स्वरूप सेठ ने वर्तमान अनुच्छेद–19 एवं तत्कालीन अनुच्छेद– 13 पर आपत्ति उठाते हुए कहा था कि अनुच्छेद–13 में जिन अधिकारों की गारण्टी की गई है उनका उन्हीं अनुच्छेद के खण्डों में खण्डन हो जाता है और विधानमण्डल की इच्छा पर छोड दिया गया है। एक ओर स्वतन्त्रता दी गई हैं तो दूसरी ओर उन्हें उसी अनुच्छेद द्वारा छीन लिया गया है।[9] प्रो0 के0 टी0 शाह ने भी वर्तमान अनुच्छेद–19 एवं तत्कालीन अनुच्छेद– 13 पर आपत्ति उठाते हुए कहा था कि अनुच्छेद–13 में अधिकारों के बजाय अपवादों पर अधिक जोर दिया गया है। वास्तव में एक दायें हाथ से जो कुछ दिया गया है उसे तीन या चार या पाँचों बांए हाथों से छीन लिया गया है।[10] संविधान सभा के सदस्य डॉ0 डी0 पी0 देशमुख ने इन मौलिक अधिकारों पर आपत्ति उठाते हुए कहा था कि क्या ये मौलिक अधिकार भोजन की कमी, शोषण, निर्दयिता, सामाजिक पतन आदि का हल कर सकते हैं।[11] श्री विश्वम्बर दयाल त्रिपाठी ने कहा कि संविधान में एक शब्द भी गरीब आदमी के लिए नहीं है। उन्होंने यह भी कहा कि जब मैं नई दिल्ली और पुरानी दिल्ली की सड़कों पर जाता हूँ तो मेरे कानों में आवाज पहूँचती है कि कमेटियों में कैसे–कैसे लोग रखे गए हैं। जनता को इस बात पर सन्देह है कि आखिर जो संविधान बन रहा है क्या उन गरीबों के लिए बन रहा है जिन्होने 30 सालों से लगातार त्याग और तपस्या की और देश के लिए 30 सालों तक मरे।[12]

संविधान सभा में मौलिक अधिकारों को लेकर जो आलोचना हो रही थी उस पर डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर ने एक–एक करके जवाब दिया। उन्होंने आलोचना नम्बर चार में बताया कि ''प्रारूप संविधान के उस भाग कि आलोचना की गई है जिसमें मौलिक अधिकारों का उल्लेख है कहा गया है कि इसमें इतने प्रतिबन्ध रख दिये गये हैं कि इनके कारण मौलिक अधिकारों का कोई महत्तव नहीं रह जाता है। इसे एक प्रकार का छल कहा जाता है। वे अमेरिका के अधिकारपत्र के आधार पर कहते हैं। अमेरिका के मौलिक अधिकार जोकि अधिकारपत्र में दिए गए हैं, वास्तविक हैं क्योंकि उन्हें किसी प्रतिबन्ध के अधीन के अधीन नहीं रखा गया हैं।''

डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर ने इस आलोचना का जवाब इस प्रकार दिया उन्होंने बताया कि मौलिक अधिकरों पर की गई आलोचना मिथ्या

धारणा पर आधारित है। मौलिक अधिकार राज्य की देन हैं इसलिए राज्य उनके संबंध में कोई प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता ऐसा अर्थ लगाना भूल है।[13] डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के जवाब से बिल्कुल स्पष्ट है कि संविधान के मौलिक अधिकार कोई प्राकृतिक अधिकार नहीं हैं जिन्हे कम या छीना नहीं जा सकता। इन्हे राज्य अर्थात सरकार ने बनाया है इसलिए सरकार इन्हें कम भी कर सकती है इतना ही नहीं इन्हें समाप्त भी कर सकती है। डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के जवाब से एक बात और स्पष्ट होती है चूंकि संविधान के मौलिक अधिकर राज्य की देन हैं इसलिए जनता को इनकी आलोचना करने का कोई हक नहीं है। राज्य अर्थात सरकार जैसं चाहे बना सकती है जितने चाहे उतने प्रतिबन्ध लगा सकती है। कहीं डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर यह तो नहीं कहना चाहते थे कि असल में संविधान के मौलिक अधिकर जनता के नहीं बल्कि राज्य अर्थात सरकार के अधिकार हैं। जिसे वह स्पष्ट रूप से कह नहीं पाये। और शोधपत्र का प्रश्न ही यही है कि संविधान के मौलिक अधिकर किसके हैं? अर्थात ये जनता के मौलिक अधिकार हैं या राज्य (सरकार) के मौलिक अधिकार हैं। डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर के जवाब को सम्पुष्ट करने के लिए संविधान के सभी मौलिक अधिकारों के सभी खण्ड़ों पर विचार करके यह बताना आवश्यक है कि प्रत्येक अनुच्छेद के प्रत्येक खण्ड में क्या है अर्थात इनमें नागरिकों के अधिकार, हक, सवतन्त्रता, दायित्व या कर्त्तव्य हैं अथवा राज्य के अधिकार, शक्ति और कर्त्तव्य हैं। संविधान के मौलिक अधिकरों पर निम्न प्रकार प्रकाश डाला गया है।

मौलिक अधिकार :

{(1) अनुच्छेद 12––राज्य की परिभाषा है। इसमें किसी भी प्रकार का कोई अधिकार नहीं है। (2) अनुच्छेद 13(1)– इसमें संविधान पूर्व की जो विधियां भाग 3 के असंगत हैं, शून्य है। अनु0 13(2) इसमें विधि न बनाने के लिए राज्य को चेतावनी है। यह एक प्रकार का राज्य पर नियन्त्रण। अनु0 13(3) (क) विधि में क्या–क्या शामिल है इसमें यह बताया गया है? (ख) इसमें यह बताया गया है कि कौनसी विधि प्रवृत्त विधि है? अनु0 13(4) इसमें यह बताया गया है कि संविधान संशोधन द्वारा बनायी गई कोई विधि इस अनुच्छेद में बतायी गई विधि में शामिल नहीं है। (इस खण्ड को 24वें संविधान संशोधन द्वारा जोड़ा गया है।) अनु0 14 यह एक तरह से केवल राज्य को आदेश है कि वह किसी व्यक्ति को विधि के समक्ष समता से या विधियों के समान संरक्षण देने से दूर नही करेगा। यह एक प्रकार का राज्य पर नियन्त्रण।

अनुच्छेद 15(1) नागरिकों के बीच भेदभाव न करने का केवल राज्य को आदेश है। यह एक प्रकार का राज्य पर नियन्त्रण। अनु0 15(2)(क) किसी भी नागरिक को दुकानों, सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश पर कोई बाधा नहीं होगी। (ख) किसी भी नागरिक को सार्वजनिक कुओं आदि का उपयोग करने पर कोई बाधा नहीं होगी। अनु0 15(3) यह उपरोक्त दोनों खण्ड़ों का प्रथम अपवाद है। यह स्त्रियों और बालकों के पक्ष में कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को देता है। अनु0 15(4) इसे संविधान (पहला संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा जोड़ा गया। यह खण्ड भी पिछडा वर्ग, एस.

सी., एस.टी के पक्ष में कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को देता है। अनु0 15(5) यह संविधान (तिरानबे संशोधन) अधिनियम, 1951 द्वारा जोडा गया। यह खण्ड भी पिछडा वर्ग, एस.सी., एवं एस.टी के नागरिकों के पक्ष में सरकारी और प्राइवेट शिक्षण संस्थानों में प्रवेश के लिए कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को देता है। परन्तु अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिए कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को नहीं देता। अनु0 15(6) यह संविधान (एक सौ तीनवां संशोधन) अधिनियम, 2019 द्वारा जोड़ा गया। (क) यह खण्ड पिछडा वर्ग, एस.सी., एवं एस.टी के नागरिकों को छोडकर शेष ऐसे नागरिकों के जो आर्थिक रूप से कमजोर हैं, के पक्ष में कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को देता है। (ख) यह खण्ड पिछडा वर्ग, एस.सी., एवं एस.टी के नागरिकों को छोडकर शेष ऐसे नागरिकों के जो आर्थिक रूप से कमजोर हैं, के पक्ष में सरकारी और प्राइवेट शिक्षण संस्थानों में प्रवेश में अधिकतम 10 प्रतिशत आरक्षण का कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को देता है। परन्तु अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश के लिए कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को नहीं देता।

अनुच्छेद 16(1) केवल सरकारी पदों में नियोजन या नियुक्ति में सभी नागरिकों को अवसर की समता देता है। अनुच्छेद 16(2) केवल सरकार के पदो के सम्बन्ध में धर्म आदि के आधार पर कोई नागरिक अपात्र नहीं होगा और न उससे विभेद किया किया जाएगा। कौन अपात्र नहीं करेगा और कौन विभेद नहीं करेगा इसके बारे में कुछ नहीं बताया गया है। अनुच्छेद 16(3) संसद को निवास के आधार पर नियोजन या नियुक्ति में नागरिकों के बीच विभेद करने की शक्ति दी गयी है। अनुच्छेद 16(4) यह खण्ड केवल पिछडा वर्ग के पक्ष में नियोजन या नियुक्ति में आरक्षण के लिए कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को देता है एस0सी0/एस0टी0 के नागरिकों के लिए कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को देता नहीं देता। अनुच्छेद 16(4क) यह खण्ड संविधान के 77वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया। यह खण्ड़ राज्य को विवेकिक शक्ति देता है कि वह केवल एस0सी0/एस0टी0 के नागरिकों के लिए नौकरियों में प्रोन्नति के सम्बन्ध में आरक्षण संबधी कानून बना सकता। अनुच्छेद 16(4ख) यह खण्ड संविधान के 81वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया। यह खण्ड़ राज्य को विवेकिक शक्ति देता है कि वह नौकरियों में खाली रह गए स्थानों को अगली बार आने वाली रिक्तियों के साथ अलग वर्ग माने। इन रिक्यिों पर सामान्य श्रेणी के लिए 50 प्रतिशत की सीमा लागू नहीं होगी। अनु0 16(5) में व्यक्तिगत विधि को इस अनुच्छेद के उपबन्धों पर अधिमानता दी गई है। व्यक्तिगत विधि में यदि किसी धार्मिक पद के लिए कोई विशिष्ट धर्म को मानने वाला या विशिष्ट सम्प्रदाय का ही होने का प्रावधान है तो यही कानून लागू होगा। अनुच्छेद 16(6) को संविधान के 103वें संशोधन अधिनियम द्वारा जोड़ा गया। यह खण्ड़ ओ0बी0सी0, एस0सी0 एवं एस0टी0 के नागरिकों को छोडकर शेष सामान्य वर्ग के केवल आर्थिक रूप से कमजोर नागरिको के लिए नियोजन या नियुक्ति में अधिकतम 10 प्रतिशत आरक्षण के लिए कानून बनाने की विवेकिक शक्ति राज्य को देता है।

अनुच्छेद–17 यह अस्पृश्यता समाप्त करने की घोषणा है।

अनुच्छेद–18(1) राज्य को उपाधि देने से रोका है परन्तु जिनके पास पहले से उपाधियां हैं उनको समाप्त नहीं किया है। 18(2) नागरिकों को दूसरे देश से उपाधि लेने से रोक है। 18(3) भारत में पद धारक विदेशी नागरिक को राष्ट्रपति की सहमति के बिना दूसरे देश से उपाधि लेने से रोक है। 18(4) भारत में पद धारक व्यक्ति को राष्ट्रपति की सहमति के बिना दूसरे देश से भेंट उपलब्धि या पद लेने से रोक है।

अनुच्छेद–19(1) (क) सभी नागरिकों को वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता नहीं है बल्कि वाक् एवं अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का **'अधिकार'** है। इस अधिकार के प्रयोग पर अनु0 19(2) के अनुसार निम्न किसी भी आधार पर निर्बन्धन लगा सकता है 1. भारत की प्रभुता एवं अखण्डता 2. राज्य की सुरक्षा 3. विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बंध 4. लोक व्यवस्था 5. शिष्टाचार 6. सदाचार के हित में 7. न्यायालय अवमान 8. मानहानि 9. अपराध उद्दीपन, के आधार पर किसी विधि में कोई निर्बधन है तो वह लागू रहेगा 10. इन सब 9 निर्बंधनों के अलावा राज्य भी निर्बन्धन लगाने वाली नई विधि बना सकता है। इसका अर्थ यह है यह अधिकार पूरी तरह राज्य के नियन्त्रण में है।

19(1)(ख) सभी नागरिकों को शान्तिपूर्वक और निरायुध सम्मेलन का **अधिकार** है। इस अधिकार के प्रयोग पर अनु0 19(3) के अनुसार राज्य निम्न किसी भी आधार पर निर्बन्धन लगा सकता है 1. भारत की प्रभुता एवं अखण्डता 2.लोक व्यवस्था के आधार पर किसी विधि में कोई निर्बधन है तो वह लागू रहेगा। 3. इन निर्बंधनों के अलावा राज्य भी निर्बन्धन लगाने वाली नई विधि बना सकता है। इसका अर्थ यह है यह अधिकार पूरी तरह राज्य के नियन्त्रण में है। 19(1)(ग) सभी नागरिकों को संगम या संध या सहकारी समिति बनाने का अधिकार है। इस अधिकार के प्रयोग पर अनु0 19(4) के अनुसार 1. भारत की प्रभुता एवं अखण्डता 2. लोक व्यवस्था 3.सदाचार के हित में से किसी आधार पर किसी विधि में कोई निर्बधन हैं तो वह लागू रहेगा। इन निर्बंधनों के अलावा राज्य भी निर्बन्धन लगाने वाली नई विधि बना सकता है। इसका अर्थ यह है यह अधिकार पूरी तरह राज्य के नियन्त्रण में है।

19(1)(घ) सभी नागरिकों को भारत के राज्य क्षेत्र में सर्वत्र अबाध संचरण का अधिकार है। 19(1)(ड़) सभी नागरिकों को भारत के राज्य क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने का अधिकार है। अनुच्छेद 19(1)(घ) एवं 19(1)(ड़) में दिये गये अधिकार के प्रयोग पर अनु0 19(5) के अनुसार, राज्य निम्न किसी भी आधार पर निर्बन्धन लगा सकता है– 1. साधारण जनता के हित में 2. अनुसूचित जाति के हितों के संरक्षण के लिए, किसी विधि में कोई निर्बधन है तो वह लागू रहेगा और 3. इन निर्बंधनों के अलावा राज्य भी निर्बन्धन लगाने वाली नई विधि बना सकता है। इसका अर्थ यह है ये अधिकार पूरी तरह राज्य के नियन्त्रण में हैं। 19(1)(च) संविधान के 44वें संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा लोप कर दिया गया है। अनुच्छेद 19(1)(छ) कोई वृत्ति, उपजीविका, व्यापार या कारबार करने का अधिकार है। 19(1)(छ) में दिये गये अधिकार के प्रयोग पर अनु0 19(6) के अनुसार राज्य निम्न किसी भी आधार पर निर्बन्धन लगा सकता है 1.

साधारण जनता के हित में किसी विधि में कोई निर्बधन है तो वह लागू रहेगा और 3. इन निर्बंधनों के अलावा राज्य भी निर्बन्धन लगाने वाली नई विधि बना सकता है। इसका अर्थ यह है यह अधिकार पूरी तरह राज्य के नियन्त्रण में है। अनु0–20 इस अनु0 में व्यक्ति को तीन संरक्षण दिये हैं। अनु0–21 प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता को संरक्षण दिया गया है। कौन संरक्षण देगा इसको स्पष्ट नहीं किया गया है बल्कि किसी व्यक्ति को कैसे मारा जा सकता है उसका तरीका बताया गया है।

अनु0. 21–क यह अनुच्छेद संविधान के 86वां संशोधन अधिनियम, 2002 द्वारा जोडा गया है। राज्य केवल 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों को निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा देने के लिए ''रीति निर्धारित करने वाली'' विधि बनाएगा। इस संशोधन के 7 वर्ष के बाद **''निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा अधिनियम, 2009''** पारित किया गया।

अनु0–22(1) गिरफ्तार व्यक्ति को गिरफ्तारी के कारण बताए बिना अभिरक्षा में निरूद्ध नहीं रखा जाएगा। अपनी रूचि के **अधिवक्ता से सलाह लेने और बचाव कराने के अधिकार से** वंचित नहीं किया जाएगा। **अनु0–22**(2) गिरफ्तार या निरूद्ध व्यक्ति को 24 घण्टें के भीतर निकटतम मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा। मजिस्ट्रेट के प्राधिकार के बिना 24 घण्टे से अधिक निरूद्ध नहीं रखा जाएगा। **अनु0–22**(3) खण्ड (1) और (2) का लाभ निम्न लिखित को नहीं मिलेगा– 1. अन्यदेशीय शत्रु को 2. निवारक निरोध विधियों के अधीन गिरफ्तार या निरूद्ध व्यक्ति को

अनु0–22(4) निवारक निरोध विधियों के अधीन निरूद्ध की अवधि एवं उसकी प्रक्रिया। **अनु0–22**(5) निरूद्धि का आदेश, आदेश का आधार एव आदेश के विरूद्ध अभ्यावेदन के अवसर को संसूचित करना। **अनु0–22**(6) उपरोक्त आदेश करने वाला प्राधिकारी आदेश के तथ्यों को लोक हित में प्रकट करने के लिए बाध्य नहीं है। **अनु0–22**(7) संसद को विधि बनाने की शक्ति है। **अनु0–23**(1) मानव दुर्व्यापार, बेगार तथा अन्य बलात्श्रम का निषेध। **अनु0–23**(1) में अपवाद **अनु0–24** 14 वर्ष से कम आयु के बालक का कारखाना आदि में नियोजन का प्रतिषेध।

अनु0–25(1) सबसे पहले प्रतिबन्ध लगाए गए हैं। इसके बाद सभी व्यक्तियों को 1. अन्तःकरण की स्वतन्त्रता का समान हक 2. धर्म के अबाध रूप से मानने और आचरण का समान हक । 3. प्रचार करने का समान हक दिया गया हैं। **अनु0 25**(2) राज्य को धर्म के संबन्ध में विधि बनाने की शक्ति है। स्पष्टीकरण (1) कृपाण धारण करने के सम्बन्ध में। स्पष्टीकरण (2) हिन्दुओं के प्रति निर्देश का अर्थ सिक्ख, जैन, बौद्ध धर्म के प्रति निर्देश है।

अनुच्छेद–26 सबसे पहले प्रतिबन्ध हैं। फिर प्रत्येक धार्मिक सम्प्रदाय को या उसक अनुभाग को अधिकार है।

अनुच्छेद–27 किसी व्यक्ति को धर्म को बढ़ाने के लिए कर देने के लिए बाध्य न करना।

अनुच्छेद्–28 (1) सरकारी संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा देने पर रोक। (2) ऐसी शिक्षण संस्था जिसका प्रशासन राज्य करता है और उसकी स्थापना किसी ऐसे विन्यास या न्यास के अधीन हुई जिसमें धार्मिक शिक्षा

देना आवश्यक है। (3) किसी संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए बाध्य न किया जाना।

अनुच्छेद–29 (1) भाषा, लिपि, संस्कृति के आधार पर अल्पसंख्यकों को अधिकार है। अनु0 29 (2) केवल राज्य द्वारा पोषित या राज्य निधि से सहायता पाने वाली शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश से किसी नागरिक को धर्म आदि के आधार पर वंचित नहीं किया जाएगा।

अनुच्छेद्–30 (1) अल्पसंख्यक वर्गो को धर्म पर आधारित शिक्षण संस्था स्थापित करने और उसका प्रशासन का अधिकार है। खण्ड (1क) संविधान के 44वे संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा जोडा गया। अल्पसंख्यक वर्गो की शिक्षण संस्थाओं के अर्जन पर उचित मुआवजा देने के लिए राज्य को विधि बनाने की शक्ति है। अनु0 30 (2) राज्य पर नियन्त्रण है कि वह सहायता देने में भेदभाव नहीं करेगा।

अनुच्छेद् 31 संपत्ति का अनिवार्य अर्जन (संविधान के 44वे संशोधन अधिनियम, 1978 द्वारा निरसित)

अनुच्छेद् 31क कुछ विधियों की व्यावृत्ति हे जैसे– 31क (1)(क) राज्य द्वारा सम्पदा या अधिकारो को अर्जित करने वाली विधि अनुच्छेद 14 या 19 के उल्लंघन के आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी। 31क (1)(ख) राज्य द्वारा प्रबन्ध करने के लिए लोक हित में संपत्ति का अर्जन करने वाली विधि अनुच्छेद 14 या 19 के उल्लंघन के आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी। 31क (1)(ग) दो या अधिक निगमों को समायोजित करने वाली विधि अनुच्छेद 14 या 19 के उल्लंघन के आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी। 31क (1) (घ) निगमों के पदाधिकारियों के अधिकारों या शेयर धारकों के मत देने के अधिकार को समाप्त या परिवर्तित करने वाली विधि अनुच्छेद 14 या 19 के उल्लंघन के आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी। 31क (1)(ड़) किसी खनिज या खनिज तेल के संबंध में किए गए ऐसे करार, पटटे या अनुज्ञप्ति से पेदा होने वाले अधिकारों को समाप्त या रद्द करने वाली विधि अनुच्छेद 14 या 19 के उल्लंघन के आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी। 31ख. अनुसूची 9 में डाले गए अधिनियमों और विनियमों को या उनके उपबन्धों को कभी भी किसी भी मौलिक अधिकार के उल्लंघन के आधार पर शून्य नहीं समझा जाएगा। 31ग. नीति निर्देशक सिद्धान्तों को प्रभावी करने वाली विधि इस आधार पर शून्य नहीं समझी जाएगी कि वह अनुच्छेद 14 या 19 के असंगत है और नीति को प्रभावी करने वाली विधि को किसी भी न्यायालय में इस आधार पर चुनौती नहीं दिया जाएगा कि वह ऐसी नीति को प्रभावी करती है। 31घ. राष्ट्र विरोधी क्रियाकलाप के संबंध में विधियों की व्यावृत्ति। (संविधान के 43वे संशोधन अधिनियम, 1977 द्वारा निरसित)।

अनुच्छेद् 32(1) भाग तीन में दिए गए अधिकारों का प्रवर्तित कराने के लिए **समावेदन करने के अधिकार** की गारण्टी है। अनु0 32(2) उच्चतम न्यायालय को रिट जारी करने की शक्ति है। अनु0 32(3) संसद, रिट जारी करने की शक्ति को किसी अन्य न्यायालय को देने के लिए विधि बना सकती है। 32(4) समावेदन करने के अधिकार की गारण्टी को निलम्बित नहीं किया जा सकती है।

अनुच्छेद्–33 भाग तीन में दिए गए अधिकारों को सशस्त्र बलों आदि के सम्बन्ध में निर्बन्धित या निराकृत करने की संसद की शक्ति है। अनुच्छेद्–34 संसद किसी ऐसे सरकारी सेवक को, जिसने आपात के दौरान कार्य किया है, क्षतिपूर्ति देने के लिए विधि बना सकती है। संसद आपात् के दौरान सेना विधि के अन्तर्गत दिए गए दण्डादेश, दण्ड, समपहरण या किए गए अन्य कार्य को विधि मान्य कर सकती है।

अनुच्छेद्–35(क), अनुच्छेद् 16(3), 32(3), 34 के अधीन विधि बनाकर उपबन्ध करने की शक्ति केवल संसद को है राज्य विधानमण्डल को नहीं। जिन कार्यों को भाग तीन में अपराध बनाया गया है उनके लिए दण्ड देने की व्यवस्था करने वाली विधि बनाने की शक्ति केवल संसद को है राज्य विधानमण्डल को नहीं। 35(ख) यदि अनुच्छेद् 16(3), 32(3), एवं 34 में दिए गए कार्यों का उपबन्ध करने वाली विधि पहले ही से प्रर्वतन में तो वह तब तक लागू रहेगी जब तक संसद उसे परिवर्तित, निरसित या संशोधित न कर दे।}[14]

संविधान के भाग तीन में 12 से 35 तक के अनुच्छेद् शामिल हैं। इस भाग में कुल 24 अनुच्छेद् थे संशोधनों के पश्चात् कुल 28 अनुच्छेद् हो गए हैं। इन सभी में कुल 68 खण्ड् एवं पैरा हैं। इन अनुच्छेदों के लगभग 15 खण्डों में राज्य को कानून बनाने की शक्ति दी गई है। कुछ खण्ड ऐसे हैं जो राज्य पर नियन्त्रण रखने के लिए बनाए हैं। कुछ खण्ड नागरिकों को हक प्रदान करते हैं। कुछ खण्ड नागरिकों को संरक्षण देते हैं। केवल अनुच्छेद् 19 के छः खण्ड नागरिकों को अधिकार प्रदान करते हैं ये ऐसे अधिकार हैं जिनमें राज्य का कोई कर्त्तव्य नहीं है। अनुच्छेद् 26 धार्मिक सम्प्रदाय या उसके अनुभागों को अधिकार देता है। अनुच्छेद् 29 एवं 30 ऐसे अल्पसंख्यकों को अधिकार देतें हैं जो भाषा, लिपि और संस्कृति में कम हैं। अनु0 32(1) अधिकार की गारण्टी देता है। अनु0 32(2) उच्चतम न्यायालय को रिट आदि जारी करनक की शक्ति देता है। अनु0 32(3) के अधीन संसद रिट आदि जारी करने की शक्ति को उच्चतम न्यायालय उच्च न्यायालय से भिन्न किसी न्यायालय को दे सकती है। संविधान के मौलिक अधिकार के अध्याय, विधिशास्त्रियों के कथनों एवं उपबन्धों का शाब्दिक निर्वचन करने के बाद यह स्पष्ट है कि आम आदमी के लिए मौलिक अधिकारों की बात पूर्णतः सत्य नहीं है। इसलिए डॉ0 बी0 आर0 अम्बेडकर का संविधान सभा के सदस्यों द्वारा मौलिक अधिकारों पर की गयी आलोचना के जबाव में यह कहना कि मौलिक अधिकर राज्य की देन हैं बिल्कुल सत्य है। संविधान के मौलिक अधिकारों को आम जनता के मौलिक अधिकार बताना जनता के साथ धोखा है। भारत का संविधान सरकार के सभी अंगों को स्थापित करने तथा उसके कार्यों पर नियत्रण रखने का सर्वोतम लिखित दस्तावेज है।

सन्दर्भ :

[1] डीन रॉस्को पाउण्ड, समसामयिक घटनाचक्र प्री. उ0प्र0 न्यायिक सेवा, संस्करण 2018, पृ0–25

1.वेड एण्ड फिलिप्स कान्सटिट्यूशन, पृ0 1

[3] डॉ0 ओमप्रकाश गावा, संविधान वाद : बदलते संदर्भ, हिन्दी माध्यम कार्यावयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय पृ0 1

[4] डॉ0 ओमप्रकाश गावा, संविधान वाद : बदलते संदर्भ, हिन्दी माध्यम कार्यावयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय पृ0 3

[5] डॉ0 एन0 वी0 परांपये, विधिशास्त्र एवं विधि के सिद्धान्त, सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी, 19वां संस्करण, 2019, पृ0 381

[6] डॉ0 एन0 वी0 परांपये, विधिशास्त्र एवं विधि के सिद्धान्त, सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी, 19वां संस्करण, 2019, पृ0 382

[7] डॉ0 एन0 वी0 परांपये, विधिशास्त्र एवं विधि के सिद्धान्त, सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी, 19वां संस्करण, 2019, पृ0 391–392

[8] डॉ0 एन0 वी0 परांपये, विधिशास्त्र एवं विधि के सिद्धान्त, सेण्ट्रल लॉ एजेन्सी, 19वां संस्करण, 2019, पृ0 392

[9] बहस संविधान सभा, पुस्तक संख्या–4 पृ0 1087

[10] बहस संविधान सभा, पुस्तक संख्या–4 पृ0 1090

[11] 30 अगस्त, 1947 मौलिक अधिकारों की पूरक रिपोर्ट, बहस संविधान सभा पुस्तक संख्या–2 पृ0 12–16

[12] 30 अगस्त, 1947 मौलिक अधिकारों की पूरक रिपोर्ट, बहस संविधान सभा पुस्तक संख्या–2 पृ0 21

[13] 30 अगस्त, 1947 मौलिक अधिकारों की पूरक रिपोर्ट, बहस संविधान सभा पुस्तक संख्या–2 पृ0 21

[14] एस0के0 पाण्डेय एवं आर0 के0 नरूला द्विभाषी संस्करण,13वां संस्करण, 2022, इलाहाबाद प्रकाशन, एलनगंज प्रयागराज पृ0 4–22।

***

भारतीय समाज में जाति की भूमिका

डॉ. कनिका पाण्डेय *

भारतीय समाज में जाति की अहम् भूमिका है। पूरी भारतीय सामाजिक व्यवस्था, के मूल में जाति है। अपने प्रारम्भिक चरण में भारतीय समाज वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। जाति व्यवस्था के स्थान पर इसे वर्ण व्यवस्था के नाम से सम्बोधित किया गया। सूक्ष्म दृष्टि से देखें जो वर्ण शब्द का प्रयोग आर्य और दास जैसे दो वर्गों पर आश्रित था। जिसमें काले और गोरे के भेद को दर्शाया गया। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में इसे स्पष्ट किया गया है कि विश्व की सुख एवं समृद्धि के लिए 'विराट पुरुष ने अपने मुख सें ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, जाँच से वैश्य और पैर से शुद्र पैदा किया।'[1] अंग सम्बन्धी यह सामाजिक विभाजन तत्कालीन सामाजिक स्तर को स्पष्ट करता है। हिन्दू धर्मग्रन्थों में वर्ण व्यवस्था को श्रम विभाजन का अलग प्रमुख कारण माना गया द्य इसमें प्रत्येक वर्ष का अपना अलग कार्यक्षेत्र था । वर्ण व्यवस्था में नीति निर्धारण का मापदण्ड कर्तव्य और श्रम ही माना गया जिससे सामाजिक व्यवस्था किसी भी तरह से विखण्डित न हो। इस सन्दर्भ में डॉ राधाकृष्णन के विचार उल्लेखनीय हैं 'यदि सभी वर्गों के लोग अपने–अपने निश्चित कर्तव्य करते रहे तो वे उच्चतम अमिट आनन्द की अनुभूति कर सकते हैं।[2]

यहाँ यह 'स्पष्ट है कि भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्थाः सुख समृद्धि, शादी की दृष्टि सै निर्धारित की गई । जो सर्वमान्य और निर्विरोध होने के करण सराहनीय और प्रशंसनीय रही। इसके बाद जाति व्यवस्था अस्पृश्य, शोषण, पूंजीपति, श्रमिक जैसे अनेक वर्गों में विभक्त हुई । जाति व्यवस्था के संस्थापक मनु ने मनुस्मृति में जिस उद्देश्य से रचना की कालान्तर में उसमें अनेक तरह की विसंगतियों उत्पन्न हुई। कुछ विद्वानों ने इस व्यवस्था का तीखा प्रतिरोध किया और कहा 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र चारों वर्गों की उत्पत्ति शरीर के विविध अंगों से बनाकर मानव–मानव भेदभाव करना एवं एक वर्ग ब्राह्मण को असीमित अधिकार देना तथा दूसरे वर्ण (शूद्र) से दासता करवाना इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य था।[3] यह विरोध यहाँ पर स्पष्ट है 'मूलतः मनु की संहिता ब्राह्मणों की असीमित एवं अवैधानिक शक्तियों को न्यायोचित ठहराने की एक गहरी साजिश थी। हिन्दू समाज में अज्ञानी ब्राहमणों को भी ईश्वर के समान समझा गया एवं बिना किसी योग्यता व कार्य कुशलता के ब्राह्मण पुत्र जन्म के आधार पर ही ब्राह्मण माना गया।'[4] किसी भी चिन्तन या व्यवस्था के दो पक्ष होते हैं। सकारात्मक और नकारात्मक। जिस सकारात्मक, सामाजिक व्यवस्था को

* एसोसिएट प्रोफेसर, साहू रामस्वरूप महिला महाविद्यालय, बरेली, उ.प्र.

लेकर जाति व्यवस्था की स्थापना हुई उसके सकारात्मक कम नकारात्मक पक्ष अधिक उभरे। अलगाववाद की प्रतिक्रिया अधिक दिखाई पड़ी। द्रष्टव्य है यहाँ पर 'ब्राह्मणवाद ने वर्ण व्यवस्था के आदर्श को अपनी झूठी सामाजिक प्रतिष्ठा का साधन बना लिया, जिसको कायम रखने के लिए उन्होंने निम्न वर्गों पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये, अनेक निर्योग्यताएँ उनके ऑफर लादी गई तथा विभिन्न अन्धविश्वासों का सहारा लेकर उन्हें गुमराह करते रहे। इस प्रकार वर्ण व्यवस्था ने शोषण की भावना को अधिक बल दिया। समाज में असमानना एव अत्याचार जैसी सामाजिक बुराइयों को संरक्षण मिला। पारंपरिक जाति व्यवस्था में सामाजिक न्याय तथा परिवर्तन के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः वर्ण व्यवस्था एवं जातिवाद सामाजिक शुद्धता एवं एकता के विपरीत है।'[5]

जाति व्यवस्था का प्रमुख आधार जन्म है। संस्कार, रहन सहन और खानपान इस सन्दर्भ में कुछ पंक्तियाँ उल्लेखनीय है 'जाति व्यवस्था मुख्यतः जन्म के आधार पर सामाजिक संस्तरण और खंड विभाजन की एक गतिशील व्यवस्था है जो खाने पीने विवाह, व्यवसाय और सामाजिक सहवासों के सम्बन्ध में अनेक या कुछ प्रतिबन्ध को अपने सदस्यों पर लागू करती है। जाति व्यवस्था सामाजिक भारतीय समाज पर एक कलंक हैं जो नागरिकों में असमानता का भेदमान पैदा करती है। निम्न एवं अस्पृश्य (दालित) जातियों के लोग भय की स्थिति में जी रहे हैं। इन जातियों के सदस्य यदि सामाजिक अयोग्यताओं, धार्मिक भेद भाव और राजनीतिक दमन के विरुद्ध आवाज उठाते हैं तो उसे सामाजिक व्यवस्था का उल्लंघन समझा जाता है।'[6] जातिगत भेद भाव ने अस्पृश्य वर्ग को जो जन्म दिया वास्तव में मानव के अन्दर प्रक्षिप्त अमानवीय, ह्रदयलीन प्रवृत्ति का परिचायक रहा। क्योंकि उन्हें अत्यधिक प्रताड़ना मिली अस्पृश्य दलितों को निम्न स्तर का नागरिक माना जाता है। देश के अनेक भाग में उन्हें मानव से कम तथा जानवरों से भी बदतर समझा जाता हैं। आज धर्म निर्पेक्षतावाद लोकतन्त्र और लोगों में समाजवादी एवं वैज्ञानिक विचारों के प्रसारित होने के बावजूद भी जातिवाद एक जीवन पद्धति बना हुआ।'[7]

शिक्षा एवं चेतना के प्रभाव में समकालीन सामाजिक परिस्थतियों में पहले की अपेक्षा जातिगत भेदभाव में सुधार हुआ है पर प्रश्न, किस स्तर तक। आरक्षण और समान अवसर और सुविधाओं के कारण यह सुधार सिर्फ मंच और कागजों तक सम्भव हुआ है। इस अलगाववाद ने प्रेम और सौहार्द के नाम पर आक्रोश और प्रतिस्पर्धा को बढ़ाया हैं। इस विषय में श्रीनिवास की नवीन विचारधारा है कि 'शिक्षित भारतीयों में यह सुविस्तृत धारणा है कि जाति अपनी आन्तिम सांस ले रही है और नगरों में रहने वाले उच्च शिक्षा प्राप्त उच्च वर्गों के लोग इसके बन्धन से मुक्त हैं परन्तु ये दोनों धारणाएँ गलत हैं ये लोग भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्धों का चाहे अनुसरण न करते हों, जाति धर्म के बाहर विवाह करते हैं, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि ये

जाति बन्धनों से पूर्णतः मुक्त हैं।[8] वर्ण के बीच की खाई अस्पृश्यता कहा जा सकता है जिसने एवं जाति मानव के ह्रदय को तार तार किया है। 'अस्पृश्यता की प्रक्रिया में न केवल उच्च जाति का सदस्य अस्पृश्य दालन जाति के व्याक्की को नीच निकृष्ट समझता है अपितु उसे छूना तथा देखना भी पाप समझता है। अस्पृश्यता एक अतिसंवेदनशील प्रश्न है। भारतीय समाज में जातिगत स्तर पर सर्वाधिक असमानताएँ तया निर्योग्यवाएं अस्पृश्यता की अवधारणा में निहित हैं।'[9]

जो चिन्तक अस्पृश्यता को किसी जाति एवं धर्म विशेष से जोड़कर देखने के अभ्यस्त हैं वह असत्य है। निराधार है क्योंकि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने इसका 'डटकर विरोध किया और सामाजिक सद्भावना और एकता को व्यापक स्तर प्रदान किया। उनके सत्य, अहिंसा, प्रेम जैसे मानव दर्शन के मूल में छुआछूत की भावना को दूर करना था। अहिंसा अपने शाब्दिक और सामान्य अर्थ में किसी को न मारना या किसी को कष्ट न पहुंचाना है। भगवान बुद्ध, महावीर, मनु की दृष्टि में अहिंसा का सही अर्थ ही यह है। किन्तु महात्मा गांधी के अनुसार आहिंसा का अर्थ किसी की हत्या न करना ही नहीं है।, क्रोधवश अथवा स्वार्थपूर्ति के लिए किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाना, उसकी हत्या करना या उसे घायल करना ही है और ऐसा न करना ही अहिंसा है।'[10] महात्मा गाँधी की इस मानवतावादी विशद् चिन्तन दृष्टि ने उन लोगों को करारा जवाब दिया जो अस्पृश्यता या शोषणा को हिन्दूवाद की देन मानते हैं । वे सामाजिक विसंगतियाँ हैं जो समय के साथ साथ पूर्वाग्रह से ग्रसित लोगों से पनपती रही हैं। प्रभात सुखर्जी के अनुसार '' स्पष्ट रूप से अस्पृश्यता का प्रथम लक्षण है कि वे हिन्दू जातियों के लिए अस्पृश्य हैं तथा द्वितीय हिन्दू आबादी से पृथक आवास, हिन्दू जातियों के साथ सहभोज एवं वैवाहिक सम्बन्धों का निषेध सामायिक (लक्षण है ।''[11]

यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि अस्पृश्यता एक तरह से जाति व्यवस्था की विकृतियों से उत्पन्न मानव जाति के लिए कलंक है। इसमें निम्न जाति के सदस्य से उच्च जाति के सदस्य को स्पर्श कर लेने मात्र से वह अपवित्र मान लिया जाता है। फिर उसे पवित्र होने के लिए कुछ संस्कार निर्धारित किये गये । यद्यपि अब इसमें परिवर्तन आया है किन्तु उसका स्थान मनोवैज्ञानिक अस्पृश्यता ने ले लिया है। भारतीय समाज का कोई भी ऐसा क्षेत्र दिखाई नहीं पड़ता जहाँ जातिगत श्रेष्ठता, जातिगत व्यवहार और अस्पृश्यका की अवधारणा न हो । वर्ण, जाति, अस्पृश्यना की समाप्ति आज इतना : आसान नहीं। क्योंकि यह उच्च वर्ग की मानसिक अवचेतना में गहन स्तर पर अवस्थित है। अम्बेडकर ने यह स्वीकार किया कि व्यक्ति के लिए अधिकार वरदान सदृश है। यह जन्मजात और वंशानुगत होता है। मानव को कुछ शाश्वत अधिकार मिले हुए हैं। उन्होंने अपना सामाजिक, आर्थिक संगठन का सिद्धान्त इसी बात को दृष्टिगत रखकर प्रतिपादित किया कि व्यक्ति और उसके अधिकारों का कितना महत्व है।

उनके अनुसार सरकार की संरचना इसलिए हुई कि वह अन्याय, उन्पीड़न और अत्याचार को रोके। अधिकारों रक्षा केवल कानूनों से ही नहीं हो सकती, किन्तु समाज में नैतिक और सामाजिक चेतना की आवश्यकता है। यदि अधिकारों के पालन करने की भावना विद्यमान हैं तो अधिकार समाज में सुरक्षित रह सकते हैं। यदि समुदाय ही मौलिक अधिकारों के विरोध में तत्पर है तो कोई कानून, संसद या न्यायपालिका उसकी रक्षा करने में सक्षम नहीं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज शासकीय, प्रशासकीय, संस्थागत स्तर पर इसमें सुधार हुआ है। और सामाजिक स्तर पर भी अपने कर्तव्य और अधिकारों के प्रति चेतना जागृत हुई है।

सन्दर्भ :

1. ऋक सूक्त संग्रह मेरठ साहित्य भंडार पृ. 164
2. सर्वपल्ली राधाकृष्णन : इस्टर्न रिलीजन्स एंड वेस्टर्न थाट : पृ. 13
3. जी. एस. धुएँ : कास्ट एण्ड क्लास इन इण्डिया प्रा 14
4. आर. टी. एच. ग्रिफिथ : हिम्स ऑफ द ऋग्वेद : पृ 165
5. एम. एन. श्रीनिवास : कास्ट इन इण्डिया एंड अदर एशेज : पृ. 54
6. सर्वपल्ली राधाकृश्न वेस्टर्न रिलीजन्स एण्ड वेस्टर्न : पृ.14
7. पी. एन. प्रभु । हिन्दू सोशल ऑर्गनाइजेशन : पृ. 22
8. सर्वपल्ली राधाकृष्णन द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ, पृ. 245.
9. बी. आर. अम्बेडकर । एनिहिलेशन ऑफ कास्ट : पृ. 150
10. महात्मा गांधी : हिन्दू धर्म : पृ. 199.
11. दलिन रिबरेशन टूडे मासिक लखनऊ, दिसम्बर, पृ. 15.

***

भारतीय कृषि में नवीन नीति

*डॉ. वीरेन्द्र कुमार दुबे**

सारांश

प्रागैतिहासिक काल से ही मानव जीविकोपार्जन के लिए कृषि कार्य पर निर्भर रहा है। आधुनिक समय में औद्योगीकरण व नगीकरण की गति तीव्र होने पर भी कृषि की महत्ता कम नहीं हुई है। भारत जैसे विकासशील देश में विद्यमान समस्याएँ जैसे – मंहगाई, बेरोजगारी, ग्रामीण–नगरीय प्रवास जनसंख्या वृद्धि, क्षेत्रीय असंतुलन आदि को दूर करने के लिए कृषि क्षेत्र के सुनियोजित विकास पर विस्तृत अनुसंधान कार्य की आवश्यकता है। प्रस्तुत शोध–पत्र का अध्ययन इसी की एक कड़ी है। कृषि शब्द एक अत्यन्त व्यापक शब्द है। कृषि के माध्यम से मानव भूमि का उपयोग करके खाद्यान्न तथा उससे आधारित उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त करता है। कृषि के अन्तर्गत पशुपालन को समाहित किया जाता है। भारत के आर्थिक विकास में कृषि की भूमिका अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है। कृषि हमारे देश में केवल जीविकोपार्जन का साधन या उद्योग धन्धा ही नहीं है बल्कि भारतीय अर्थव्यवस्था के रीढ़ की हड्डी है। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरु ने कहा था कि "कृषि को सर्वाधिक प्राथमिकता देने की आवश्यकता है। यदि कृषि असफल रहती है तो सरकार एवं राष्ट्र दोनों ही असफल रहते है।"

संकेत शब्द : *कृषि विकास की भूमिक, कृषि की नयी विकास विधि, कृषि अर्थव्यवस्था, नवीन रणनीति, राष्ट्रीय कृषि नीति, भूमि उपयोग।*

प्रस्तावना :

भारत के आर्थिक विकास में कृषि की महत्वपूर्ण भूमिका है तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था तो पूर्णरूपेण कृषि पर भी निर्भर है। कृषि एक ऐसा विकल्प है जिसका विकास करके आर्थिक कठिनाइयों से बचा जा सकता है।

भारत में कृषि के विकास के लिए कृषि के समग्र स्वरूप तथा उसमें उपयोग की जाने वाली तकनीक का अध्ययन आवश्यक है। कृषि को बढ़ावा देने के लिए नवीन रणनीति का भी ज्ञात होना आवश्यक है।

भारत में छठें दशक के मध्य से आरम्भ की गयी कृषि रणनीति के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। भारतीय कृषि 52 प्रतिशत जनसंख्या की प्रत्यक्ष रूप से रोजगार दे रखी है तथा इसके अतिरिक्त करोड़ों लोग इस व्यवसाय से जुड़े हुए है। इसी बात को ध्यान में रखते हुए

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर (भूगोल), श्री दुर्गा जी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चण्डेश्वर, आज़मगढ़ (उ.प्र.)

प्रस्तुत शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य भारतीय कृषि के विकास में नवीन रणनीति को तैयार करना है।

उद्देश्य :

1. कृषि में प्रयुक्त होने वाली नई विकास विधि का अध्ययन करना।
2. कृषि के महत्व का अध्ययन करना।
3. राष्ट्रीय कृषि नीति का अध्ययन करना।
4. भूमि उपयोग का अध्ययन करना।

आंकड़ों के स्रोत : प्रस्तुत अध्ययन के लिए आंकड़ों का संकलन द्वितीयक स्रोत से किया गया है। कृषि सम्बन्धी आंकड़े विभिन्न पुस्तकों से प्राप्त किये गये है।

अध्ययन क्षेत्र : भारत गणराज्य दक्षिण एशिया में स्थित भारतीय उपमहाद्वीप का सबसे बड़ा देश है जिसका क्षेत्रफल 3287263 वर्ग किलोमीटर है तथा जनसंख्या की दृष्टि से भी भारत दक्षिणी एशिया में अग्रणी है। यह पूरी तरह से भारतीय प्लेट पर स्थित है जो भारतीय आस्ट्रेलियाई प्लेट का उपखण्ड है। भारत पूर्ण रूप से उत्तरी गोलार्द्ध में स्थित है। भौगोलिक दृष्टिकोण से विश्व का सातवाँ बड़ा देश है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ है। यहाँ की कुल 61 प्रतिशत लोग कृषि कार्य में लगे हुए है तथा कुल क्षेत्रफल के लगभग 51 प्रतिशत भाग पर कृषि का कार्य किया जाता है। विश्व में चावल उत्पादन में चीन के बाद भारत का दूसरा स्थान है।

विश्लेषण एवं व्याख्या : भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था एवं सामाजिक व्यवसाय का प्रमुख आधार है। कुल कार्यशील जनसंख्या के 65 प्रतिशत भाग कृषि में लगा हुआ है। कृषि का राष्ट्रीय आय में महत्वपूर्ण योगदान है। सरकारी आंकड़ो के अनुसार देश की सकल राष्ट्रीय आय में कृषि एवं उससे सम्बन्धित क्षेत्र का हिस्सा 14 प्रतिशत है। भारत में छठें दशक के मध्य से आरम्भ की कृषि रणनीति के फलस्वरूप कृषि उत्पादन में भारी वृद्धि हुई है। कृषि उत्पादन में हुई यह वृद्धि उन्नतशील बीजों, रासायनिक खादो, सिंचाई की सुविधा में वृद्धि तथा नवीन तकनीकों के प्रयोग के फलस्वरूप हुई है। कृषि कवासि की नवीन रणनीति का प्रयोग 1960–1961 में गहन कृषि कार्यक्रम के नाम से देश के चुने गये सात जिलों में एक मार्गदर्शक परियोजना के रूप में शुद्ध किया गया जिसे बाद में चलकर अन्य जिलों में भी लागू कर दिया गया। 1966 में हरित क्रान्ति के आगमन से भारत में पारम्परिक कृषि व्यवहारों का प्रतिस्थापन औद्योगिक, प्रौद्योगिकी एवं फार्म व्यवहारों में किया जाने लगा जिसके कारण कृषि की दशा में तेजी से विकास हुआ जिसका परिणाम देखने को मिला कि देश में खाद्यान्न की उपज जो 1950–51 में मात्र 5 करोड़ थी, वह 2015–16 में बढ़कर 25.316 करोड़ हो गयी। इसके अतिरिक्त गैर खाद्यान्न एवं व्यावसायिक फसलों के

उत्पादन में भी वृद्धि दर्ज की गयी। देश में पिछड़ी हुई कृषि को गति प्रदान करने के लिए योजना लागू की गयी। प्रथम पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल 1951 में लागू हुई जिसमें कृषि के विकास को सर्वोच्च वरीयता प्रदान की गयी तथा इसके विकास के लिए पूरी योजना पर व्यय होने वाले कुल परिव्यय का 37 प्रतिशत रखा गया। द्वितीय एवं तृतीय में कुछ कमी दर्ज की गयी, परतु बाद में इसमें वृद्धि होती गयी और भारतीय कृषि निर्वाह स्तर से ऊपर उठकर आधिक्य स्तर पर आ चुकी है। इसको बढ़ावा देने के लिए राष्ट्रीय कृषि नीति को लागू किया गया। सबसे पहले 22 दिसम्बर 1992 को कृषि नीति का प्रस्ताव संसद में प्रस्तुत किया गया। जुलाई 2000 के अन्तिम सप्ताह में भारत सरकार ने अपनी राष्ट्रीय कृषि नीति घोषित की है, जिसके दस्तावेज में कुल 48 अनुच्छेद है, जो दीर्घकालीन कृषि, खाद्य एवं पोषण सुरक्षा, प्रौद्योगिकी सृजन एवं हस्तान्तरण आदान प्रबन्धन, कृषि के लिए प्रोत्साहन, कृषि निवेश, संस्थागत संरचना एवं प्रबन्ध सुधार नामक मदों में विभाजित है।

जहाँ तक बात कृषि के विकास में भूमि उपयोग की है तो उसके बनावट में परिवर्तन आया है। 1950–51 में गैर कृषि कार्यो के लिए भूमि का उपयोग 94 लाख हेक्टेयर था जो 2009–10 में बढ़कर 264 लाख हे0 हो गया। कृषि के अन्तर्गत भूमि का क्षेत्रफल भी पिछले 68 वर्षो में बढ़ा है। 1950–51 में 11.87 करोड़ हे0 भूमि पर कृषि की जाती थी जो बढ़कर 14 करोड़ हे0 हो गयी है, जिसके कारण बेकार पड़ी भूमि की मात्रा में कमी आयी है। जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि होगी वैसे–वैसे भूमि में भी बढ़ोत्तरी होगी इस नाते भूमि उपयोग के लिए एक बड़ी नीति तैयार करने की आवश्यकता है।

नवीन कृषि नीति की समस्या : नई कृषि नीति के बनने के फलस्वरूप कुछ फसलों के उत्पादन बढ़े है तो कुछ पर इसका प्रभाव न के बराबर देखने को मिला है। पूँजीवादी कृषि को बढ़ावा दिया गया है। जमीनी सुधार की अवहेलना की गयी है। कृषि में यन्त्रों के प्रयोग के कारण श्रमिकों की मांग पर विपरीत प्रभाव पड़ा है।

निष्कर्ष : भारत में कृषि के नीति में सुधार लाने के लिए भूमि सुधार कार्यक्रम को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। छोटे किसानों को कम ब्याज पर ऋण की सुविधा होनी चाहिए। श्रम प्रधान तकनीक को विकसित करना चाहिए। बिजली परिवहन आदि की सुविधा उपलब्ध है। फसलों के उचित मूल्य को देकर किसानों को प्रोत्साहित करने जैसी आवश्यकता की जरूरत है, जिसमें नवीन कृषि नीति को प्रोत्साहन मिल सकता है।

संदर्भ :

1. विकीपीडिया
2. डॉ0 जे0पी0 मिश्रा – भारत की आथिक नीतियां।
3. डा0 जे0सी0 पन्त एवं डा0 जे0पी0 मिश्रा – भारतीय आर्थिक समस्याएं।
4. डॉ0 चतुर्भुज मेमोरिया – भारत का भूगोल।
5. Journal of Integrated Development and Research, June, 2017.

***

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास में लोक संस्कृति का स्वरूप

*रामप्रकाश पटेल**

मनुष्य समाज में ही जन्म लेता है। उसका प्रत्येक क्रिया–कलाप समाज से ही जुड़ा होता है और समाज में रहते हुए रीतियों, परम्पराओं एवं विश्वासों को लोक से ग्रहण करता है। अतः यह कहने में कोई दुराव नहीं है कि मनुष्य के सांस्कृतिक स्रोत का आधार लोक ही है। जैसा कि हमे सभी परिचित ही हैं साहित्य समाज का दर्पण होता है इसलिए जनता की चित्तवृत्ति समाज में परीक्षित होते हुए साहित्य में दिखती है।

'लोक–संस्कृति' दो शब्दों से मिलकर बना है 'लोक' और 'संस्कृति'। 'लोक' शब्द की निष्पत्ति संस्कृत के 'लोक दर्शने' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर हुई है। धातु का अर्थ है देखना। 'लोक दर्शने' धातु में लट् लकार के अन्य पुरुष के एकवचन का रूप होगा– लोकते।अतः लोक शब्द का अर्थ हुआ–देखने वाला। इस प्रकार लोक का अर्थ जो समस्त जन समुदाय को देखने का कार्य करता हो। हिंदी में तो लोक शब्द से लोग की व्युत्पत्ति मानी जाती है जिसका तात्पर्य होता है–आम जनता। इस सम्बन्ध में डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– ''लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।ये लोग परिष्कृत रुचि संपन्न और सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन में अभ्यस्त होते है और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं उनको उत्पन्न करते हैं।"[1]द्विवेदी जी का यह बिल्कुल स्पष्ट मत है की लोक केवल गांव तक ही सीमित नहीं है उसका क्षेत्र नगरों तक भी है जहां व्यावहारिक ज्ञान सीखने के लिए आज भी किताबों का सहारा नहीं लिया जाता है।

डॉ0 बच्चन सिंह लिखते हैं– "लोक–संस्कृति का मतलब सिर्फ ग्राम–संस्कृति नहीं है बल्कि नगरों में रहने वाले आम आदमी की भी संस्कृ ति है। लोक–संस्कृति में केवल साहित्य (लोकगीत, लोककथा) ही नहीं आते बल्कि चित्र, संगीत, नृत्य, नाट्य, हस्तकौशल आदि भी आते हैं।"[2]

दोनों विद्वानों के कथनों से स्पष्ट है कि लोक–संस्कृति का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। हमारा मत है कि लोक–संस्कृति की व्याप्ति संसार के कोने–कोने तक है।जहां तक लोक शब्द के प्रयोग का सवाल है इसमें कोई दो राय नहीं है कि यह शब्द प्राचीन काल से प्रयोग होता आ रहा है। वेद से लेकर महाभारत तक में इसके साक्ष्य मिलते हैं। जहां वेदों में लोक शब्द

---

* शोध-छात्र, हिन्दी विभाग

के लिए जन का प्रयोग हुआ है वहीं महाभारत में साधारण जनता के लिए।लोक एक ऐसा चक्र है जो हमें भूत और वर्तमान से जोड़ता है। इसलिए हमारे पूर्वजों से चली आ रही मान्यताएं नई पीढ़ी तक पहुँचती हैं।

'संस्कृति' शब्द अपने आप में बहुत ही व्यापक है। इससे यह ज्ञात होता है कि मनुष्य का उठना–बैठना, खान–पान, रहन–सहन और सोच–विचार किस तरह का है। यह उसकी संस्कृति को देखकर कोई व्यक्ति जान सकता है। अंग्रेजी के 'कल्चर' शब्द का साम्य है संस्कृति। इसका अर्थ तहजीब, शिष्टता, कृषि, खेती, कास्त, उत्पादन और तरक्की इत्यादि होता है। संस्कृति शब्द की निष्पत्ति 'कृ' धातु में 'सम' उपसर्ग लगाने से होती है।

संस्कृति को दो अर्थों में देखा जा सकता है– एक व्यापक, दूसरा संकीर्ण। व्यापक अर्थ में देखा जाए तो यह नृविज्ञान के रूप में होता है जिसका सीधा–सीधा मतलब यह होता है कि सामाजिक परम्परा से प्राप्त समस्त ज्ञान व्यावहारिक रुप से सिखते हैं। हिंदी साहित्य कोश, भाग–1 में संकीर्णता के क्षेत्र को धीरेन्द्रवर्मा स्पष्ट करते हुए लिखते हैं– "संस्कृति को उन गुण समुदायों के रूप में जाना जाता है जो व्यक्ति को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाती है।"[3]

संस्कृति के संबंध में 'हजारी प्रसाद द्विवेदी' 'अशोक के फूल' में लिखते हैं" संस्कृति मानव की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है।"[4] समाज में उपस्थित मानव का विकसित रूप और सांस्कृतिक जीवन इन्हीं रूपों में प्रकट होता है। इस प्रकार संस्कृति साधना से विकसित होती है और संस्कृतिनिष्ठ समाज में ही साधना फलती–फूलती है। संस्कृति अन्तः जल की तरह प्रत्येक देश और जाति समुदाय के जीवन में सदैव प्रवाहित होती रहती है। जीवन–दर्शन का मूल आधार ही संस्कृति है। संस्कृति प्राचीन काल से अविरल ढंग से बहती चली आ रही है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति को लेकर यह बात बिल्कुल सत्य है कि यह बहुत से घात प्रतिघात को झेल कर भी जीवित है जबकि अन्य बहुत सी संस्कृतियां अब केवल नाम मात्र को बची हैं।

संस्कृति पर विचार करने के उपरांत अब लोक और संस्कृति के अंतः संबंधों पर विचार कर लेना चाहता हूँ। इस बात में कोई लेकिन, परंतु नहीं है की लोक और संस्कृति एक दूसरे के अभिन्न अंग है या यूं कहे कि एक दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। इसलिए यदि हम लोक–जीवन को ही लोक–संस्कृति कहें तो गलत ना होगा।

इसे स्पष्ट करते हुए डॉक्टर विद्या चौहान ने लिखा है–"लोक का अर्थ सरल, स्वाभाविक मानव समाज है जिसकी भावनाओं, विचारों, परम्पराओं, क्रियाओं एवं मान्यताओं में वास्तविक कल्याण के तत्व विद्यमान रहते हैं। इसी को हम लोक संस्कृति भी कह सकते हैं।"[5] प्रत्येक काल की संस्कृति उसके लोक में हमेशा रहती है। लोक हमेशा किसी देश के भीतरी सुंदरता को दिखाता है जबकि संस्कृति बाहरी सौंदर्य को प्रकट करता है।

परम्परा से चले आ रहे लोक–जीवन में जन्म से लेकर मृत्यु तक विविध प्रकार के संस्कार होते हैं। उन संस्कारों में अनुष्ठान तथा अनुक्रम, पर्व–उत्सव, त्यौहार, रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान, गीत–संगीत इत्यादि प्रकार के लोक विश्वासों से संस्कृति बनती है।मनुष्यों के आचार–व्यवहार से बहुत सी बातें जुड़ी हुई होती हैं जिससे लोक की परम्पराएं और रीति–रिवाज बनते हैं। इसे हम सांस्कृतिक जीवन की अभिव्यक्ति के रूप में भी ले सकते हैं। कहने का मतलब यह है कि संस्कृति के सभी तत्व लोक में मौजूद रहते हैं। यदि लोक में परिवर्तन होगा तो संस्कृति भी प्रभावित होगी। इसलिए यह कह सकते हैं कि लोक और संस्कृ ति एक दूसरे में समाहित हैं। अतः लोक और संस्कृति एक सिक्के के दो पहलू हैं जो एक दूसरे से जुड़े हुए हैं।लोक और साहित्य का एक–दूसरे से गहरा संबंध है। इसलिए किसी भी कृति पर लोक का गहरा असर होता है, क्योंकि किसी भी युग का साहित्य लोक की उपेक्षा करके जीवन्त नहीं हो सकता। इसलिए यह देखना महत्त्वपूर्ण हो जाता है कि लेखक अपनी कृति में किस तरह का समाज रचता है और उसमे लोक–संस्कृति को किस ढंग से प्रयोग करता है। कहने का आशय यह है कि लेखक लोक–जीवन से सम्बन्धित तत्व को अपनी रचनाओं में जितना जगह दे पाता है, वह कृति उतनी ही जीवन्त होती है। इसलिए किसी भी कृति में लोक–संस्कृति का महत्त्व बढ़ जाता है।

वस्तुतः यह स्पष्ट है कि तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आर्थिक रूप हमेशा से लोक जुड़ता रहा है। इसलिए लोक और साहित्य का प्रत्येक काल में अभिन्न सम्बन्ध रहा है।समाज और साहित्य का सम्बन्ध कुछ इस तरह से है–जैसे धरती का फूल से। इसे और भी स्पष्ट करते हुए 'इतिहास और आलोचना' में नामवर सिंह लिखते हैं कि "समाज से साहित्य का संबंध बहुत कुछ वही है जो धरती से फूल का है। फूल धरती से उत्पन्न होता है इसका मतलब यह नहीं है कि उसके डाल–पाँत पंखुड़ी, वर्ण, गंध आदि मिट्टी के हैं कि उससे मिट्टी की सी सौंधी गंध आती है और रंग भी मटमैला होता है। धरती का रूप–रस फूल में नया वर्ण, गंध उत्पन्न करता है। इसी तरह साहित्य में भी समाज ज्यों का त्यों नहीं झलकता, बल्कि रूपांतरित रूप में अंतर्निहित रहता है।"[6] अतः लोक और साहित्य एक दूसरे में समाहित हैं। समाज और साहित्य में चोली दामन का संबंध है। इसीलिए लोक और साहित्य एक दूसरे के पूरक हैं। लोक की तमाम प्रवृत्तियां जैसे आकांक्षाएं, चेतनाएं, विचारधारा, परिवेश, स्थिति, देशकाल–वातावरण इत्यादि साहित्य में देखने को मिलती हैं।

प्राचीन काल से समाज में लोक–विश्वास या अधंविश्वास की परम्परा रही हैं, आज भी समाज में लोक–विश्वास या अंधविश्वास के तत्व देखने को मिलते हैं। मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में लोक–संस्कृ तिव्यापक रूप सेदिखाई देती है। जोशीजी ने अपने कथा–साहित्य में

लोक–तत्वों का खूब उपयोग किया है। कुरू–कुरू स्वाहा... उपन्यास को देखा जाये तो इसमें लोक–विश्वास की अद्‌भूत कथा कही गयी हैं। यहाँ अंधे और कोढ़ी के जोड़ी को राम मिलाए जोड़ी कहा जाता है। कहने का आशय यह है कि ऐसी जोड़ी जिसका कोई मेल ना हो और यदि ऐसे लोग एक दूसरे के साथ मिल जाते हैं तो इसे राम मिलाएँ जोड़ी कहा जाता है। ''परमप्रिय जोशी, लोक–संस्कृति ने अंधे और कोढ़ी की जोड़ी को राम–मिलायी ठहराया है। हमारे यशस्वी पूर्वज, शव और शक्ति को दिव्य युगल घोषित कर गए हैं। पाश्चात्य मनीषियों ने भी 'ब्यूटी और बीस्ट' को आदर्श युगल के रूप में प्रस्तुत किया है।''[7]

इसी तरह जोशी जी के दूसरे उपन्यास 'कसप' में लोक–विश्वास एक उदाहरण देखने को मिलता हैं, होता कुछ यूँ है कि विष्णुदत्त शास्त्री अपनी भाँजी दया का विवाह देवीदत्त से करना चाह रहे थे। दया की ओर से सब कुछ विष्णुदत्त ही थे क्योंकि पिता का छाँव बचपन से ही दया के जीवन से उठ गया था। इसलिए विष्णुदत्त एक प्रकार से ममिया श्वसुर हुए।

'क्याप' उपन्यास में लोक–विश्वास की एक ऐसी परम्परा देखने को मिलती है जो सामजिक भेदभाव की सूचक है। इस तरह की घटनाएं आज भी समाज में देखने को मिलती हैं। डूम जाति का आदमी भोजन–पानी तो दूर सवर्ण की छाया भी नहीं छू सकता था। यदि डूम सवर्ण के यहाँ चला गया तो उस स्थानको गोमूत्र और गोबर से पवित्र किया जाता था। कोई कमजोर नजर वाला सवर्ण अपना कोई बिरादर समझकर अभिवादन कर लिया तो यह डूम के लिए भंयकर अपशकुन माना जाता है, जिससे भयभीत होकर डूम तुरन्त अपने फटेहाल कपड़ों का एक हिस्सा फाड़कर आग में जला कर श्राप से मुक्ति प्राप्त करता है।

जोशी जी के उपन्यास क्रमशः 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी', 'हमजाद', 'क्याप','मैं कौन हूँ', 'कपीशजी', 'वधस्थल' और 'उत्तराणिकारिणी' इत्यादि में लोक–संस्कृति का उपयोग किया गया है। इससे कथा के विकास और पठनीयता में वृद्धि हुई है। 'हरिया हरक्यूलीज की हैरानी' में कुमायूँ क्षेत्र के साथ–साथ गुमालिंग देवता की खोज के दौरान बौद्ध संस्कृति का भी समावेश मिलता है।

क्याप' उपन्यास में रहन–सहन के मामले देहाती बोली और भाषा के लोक संस्कृति का रूप दिखाई देता है। किताबों का जलाना तो सरस्वती का अपमान समझा जाता है। हमारी धार्मिक मान्यताओं में सरस्वती देवी ज्ञान की देवी हैं। कका की मृत्यु के बाद उनकी किताबों को लेकर मेरी माँ को एक विचार आया कि क्यों ना ककाकी अनबिकी पत्रिकाओं का विस्तर बना दिया जाये। उसने ऐसा ही किया। सारी पत्रिकाओं को इस बिस्तर पर बना दिया। वह और बहन सोते थे। कका की किताबों से उसने सिरहाना बनाया और बाकि अनबिकी पत्रिकाओं को लेकर उसने पुराने ऊनी चिथड़ों से

खोल–सा बनाकर हमारे लिए रजाई सिल दी।"उन्होंने कका की अनबिकी पत्रिकाओं को फर्श पर बिछाकर मेरे और मेरी भुलि यानि छोटी बहन के लिए बिछौना बना दिया। कका की किताबों से उसने सिरहाना बनाया और बाकी अनबिकी पत्रिकाओं के लिए उन्होंने पुराने ऊनी चिथड़ों से एक खोल–सा बनाकर हमारे लिए रजाई सिल दी।"[8]

जोशी जी का उपन्यास 'कौन हूँ मैं' आकार में बहुत बड़ा है। इसमें लोक के तत्व देखने को मिलता है। हमारे समाज में बहुत पहले से ही गुरु और शिष्य की परम्परा मिलती है। जब गुरु शिष्य को दीक्षा देता है तब वह विधिवत गुरु का चेला बन पाता है। यह हमारी लोक–संस्कृति की बहुत बड़ी विशेषता है। गुरु अपने हाथों से चेले के बदन पर राख मल रहे हैं चेला ध्यान लगाकर बैठा है। समय आ जाने पर तुझे मन्तर दूंगा। ऐसा गुरु चेले से कहता है। अमरनाथ की गुफा में बाबा और चेला ध्यान लगाकर बैठे हैं। इधर साधु–संत समाज में मंत्र दीक्षा देने की बात फ़ैल गयी। इसलिए शाम तक काफी भीड़ हो गयी। पूजा–अर्चना के बाद बाबा ने चेले के कान में मंत्र फूंका और मुझसे मंत्र दोहराने को कहा। अब मैं चेला विधिवत बन गया। "बाबाजी ने अपने हाथों से मेरे बदन पर और मेरे चेहरे पर राख मली। राख मलते हुए बोले, आज मैं भी उपवास रखूँगा और तू भी। अमरनाथ जी के शिवलिंग के सामने तेरे को ध्यान लगाकर बैठना होगा मेरे साथ मुहूर्त आ जाने पर तेरे को मन्तर दूँगा। दिनभर बाबाजी और मैं अमरनाथ की गुफा के भीतर ध्यानमग्न बैठे रहे। मंत्रदीक्षा दिए जाने की बात फैल चुकी थी इसलिए सायंकाल अन्य साधु–संत और कुछ उत्सुक तीर्थयात्री भी गुफा के बाहर आकर बैठ गए। पूजा–अर्चना के बाद बाबाजी ने मेरे कान में मंत्र फूँका और मुझसे मंत्र दोहराने को कहा। अब मैं विधिवत उनका चेला बन गया।"[9]

'कसप' उपन्यास में भारत एक लोकतान्त्रिक देश है। देश संविधान से चलता है। देश में चुनाव होता है। चुने हुए सदस्य–संसद जाते हैं। संसद–सदस्य लोग सरकार बनाते है। सातवें दशक तक आते–आते समृद्धि तेजी से बढ़ी। लोग पढ़–लिखकर ऊँचे–ऊँचे पदों पर पहुँचने लगे थे। कुछ ऊंची जातियों में उन्नति का ग्राफ तेजी से बढ़ रहा था। उसके पीछे राजनीति व्यवस्था काम कर रही थी। यही कारण है कि मैत्रेयी शास्त्री जैसी कितने औरतें सड़क से संसद तक सफ़र करके कला और संस्कृति की उच्च संरक्षिका बन सकी।

इसी तरह से ट–टा प्रोफेसर उपन्यास में षष्टीबल्लभ पन्त और कथावाचक को देख सकते हैं। जहाँ सातवें दशक में देश ने बड़ी प्रगति की वही स्वयं कथावाचक साधारण स्कूल मास्टर से एक बड़ी पत्रिका का संपादक बन गया और वैसे ही ट–टा प्रोफेसर स्कूल अध्यापक से स्कूल मालिक बन गये थे। यह सभी राजनीतिक दूरदर्शिता का परिणाम था। सरकार ने उन्नति करने के लिए आम जनता के हित में ऐसे नियम–कानून बनाएँ जिससे आम आदमी के आय में वृद्धि हुई। "मैंने तय पाया कि प्रोफेसर ट–टा कॉमिक या कैसी भी किसी महान कथा के नहीं, साधारण पत्रकारिता के पात्र हैं। उनकी कहानी

लाखों ऐसे देशवासियों की ही कहानी है, जिन्होंने सातवें दशक में बड़ी प्रगति की। मैं स्वयं भी उनमें से ही था। जैसे मैं एक साधारण स्कूल के मास्टर से एक बड़ी पत्रिका का सम्पादक बन चला था वैसे ही प्रोफेसर ट–टा स्कूल अध्यापक से, स्कूल मालिक बन गए थे।"[10]

किसी भी देश की समृद्धि अर्थ और व्यापार से पता चलता है यदि प्रति व्यक्ति आय देश की अच्छी है तो समझिए देश उन्नति पर है। देश में गरीबी का स्तर घट रहा है। इससे अंदाजा लगाया जाता है कि समाज कितना संपन्न है। समाज की सामाजिक और आर्थिक स्थिति कैसी है। यह सब कुछ निर्भर करता है देश की आर्थिक स्थिति और व्यापारिक दशा पर।

'कसप' उपन्यास में पढ़े–लिखे लोगों का समाज है। नौकरी प्राप्त करने हेतु एक शहर से दूसरे शहर युवा वर्ग संघर्ष करता है। विष्णुकांत शास्त्री के सभी पुत्र एवं पुत्रियाँ सरकारी नौकरी में लगे हुए हैं। डी०डी० के कक्का का लड़का बब्बन भी सरकारी क्लर्क है। केवल डी०डी० जगत का उभरता हुआ कलाकार है जो हॉलीवुड से लेकर बॉलीवुड तक छाया हुआ है। हॉलीवुड में उसने कई व्यावसायिक फिल्मे बनाकर इतिहास रच दिया है। सत्तर के दशक में भारत आर्थिक रूप से तेजी से उभरा जिसके कारण एक बहुत बड़ा मध्यवर्ग उभरा। इसकी पहुँच सरकारी तंत्र से लेकर कला के उन तमाम हिस्सों तक रहा जो अब तक मध्य वर्ग के लिए सपने जैसा दिख रहा था।

हमजाद उपन्यास में टोपन के पिता जी मोरांवाली में मास्टर थे। तिलक के वालिद जमींदार घराने के थे परंतु एक मुस्लिम कन्या से शादी करके आफत मोल ले लिए। टोपन अपना खर्चा–वर्चा छोटे–मोटे धंधे करके निकालता था। तिलक उसके साथ रहकर उसकी मदद करता था। देश के बंटवारे के बाद वह मुंबई आकर बहुत बड़ा आदमी बन गया। इसीलिए फिल्म इंडस्ट्री में टी०के० खुदा की हैसियत रखते थे। एक बात और वह हजारों नामों से जाने जाते थे। "बम्बई की फिल्म इंडस्ट्री में खुदा की हैसियत रखने वाले मिनिस्टर टी०के० नारकियानी भी खुदा झूठ ना बुलवाये, एक हजार नामों से जाने जाते थे।"[11]

मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में लोकगीत की परम्पराएं भी देखने को मिलती हैं। इनके पहले उपन्यास कुरू–कुरू स्वाहा में माँ भगवती का एक गीत उद्धरित किया गया है जिसका अर्थ उन सब में समझ की कमी नहीं है, लेकिन वे संसार की जन्म–मरण की परम्परा बनाए रखने वाली भगवती महामाया के प्रभाव द्वारा ममतामयी भंवर से युक्त मोह के गहरे गर्त में गिराए जाते रहें है। इसलिए इसमे आश्चर्य की कोई बात नहीं है– ''ममतावर्न्ते, मोहगर्ते निपातिताः। महामाया प्रभावेण संसारस्थितिकारिणा।''[12] इसी तरह इस उपन्यास में जोशी जी ने कुमाऊँनी लोकगीत का अँग्रजी में अनुवाद करके फिल्म समीक्षिका डौली को सुनाया।

लोक संस्कृति की एक बहुत बड़ी खूबी यह है कि अलग–अलग समयों पर अलग–अलग गीत लिखें गये हैं। 'कसप' उपन्यास में काम करते समय औरतें गाती हैं कि हमारी बेटियाँ काम करते समय नहीं काँपती वो तो

कूश की डार है जो हिल रहीं हैं ''वह गाती है, काज गीत का एक पंक्ति, हम नहीं कप्पै बिटिया हमारी, ये तो कम्पै है कूश की डारी रे।''[13]

इस प्रकार हम देखते है कि मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में लोक–संस्कृति व्यापक रुप से वर्णित की गयी है। प्रायः सभी उपन्यासों लोक–संस्कृति के तत्व घूले–मिलें हैं। ये तत्व आख्यान के अभिन्न हिस्से है। इन आख्यानों के पात्रों और चरित्रों के जीवन–दर्शन आचरण–बर्ताव, रहन–सहन, खान–पान, रीति–रिवाज और आचार–विचार में लोक–संस्कृति के तत्व समाहित हैं। इनके बगैर ये आख्यान इतनी ऊँचाई पर नहीं पहुँच पाते। लोक संस्कृति के इन आख्यानों से गहरे जुड़ाव ने मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास को लोक प्रिय और लोक ग्राह्य बना दिया है।

सन्दर्भ :

1. जनपथ (त्रैमासिक पत्रिका) वर्ष–1 अंक–1, हजारी प्रसाद द्विवेदी, अक्टूबर 1952, (काशी हिन्दू विश्वविद्यालय), पृ0–65
2. लोक संस्कृतिः आयाम एवं परिप्रेक्ष्य, महावीर अग्रवाल, शंकर प्रकाशन, म0प्र0, सं0–1978, पृ0–72–73
3. अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोक भारतीय प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण, 2006, पृ0–58
4. हिन्दी साहित्य कोश, भाग–1, सम्पा0 धीरेन्द्र वर्मा, ज्ञानमण्डल प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 1984, पृ0–712
5. लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, विद्या चौहान, प्रगति प्रकाशन आगरा–3, प्रथम संस्करण, 1972, पृ0–41
6. इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली,प्रथम संस्करण, 2009,पृ0–145–146
7. कुरु–कुरु स्वाहा..., मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, संस्करण सातवा, पृ0–19
8. क्याप, मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, संस्करण–दूसरा, पृ0–12
9. कौन हूँ मैं, मनोहर श्याम जोशी, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2006, संस्करण–पहला, पृ0–19–20
10. ट–टा प्रोफेसर, मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, संस्करण–पहला, पृ0–82
11. हमज़ाद, मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, संस्करण–पहला, पृ0–17
12. कुरु–कुरु स्वाहा..., मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, संस्करण सातवा, पृ0–31
13. कसप, मनोहर श्याम जोशी, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2018, संस्करण सातवाँ, पृ0–30

***

भारत में महिला सशक्तिकरण : एक राजनीतिक दृष्टि

*डॉ. ब्रजेन्द्र सिंह**
*निशा देवी भारती***

महिला सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें महिलाओं को पुरूषों के समक्ष लाकर उनके प्रति होने वाले सभी प्रकार के भेदभाव को समाप्त करके उन्हें स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराने के प्रयासों का पुनर्वलन किया जाता है ताकि वे अपनी परम्परागत दब्बू प्रकृति के आवरण से बाहर निकलकर आत्मनिर्भर एवं स्वावलम्बी बन सकें। यह प्रयास उनकी योग्यता का चतुर्दिक सशक्तिकरण करता है ताकि उनकी अभिरूचि स्पष्ट हो सके, संसाधनों का समुचित उपयोग किया जा सके और परिवार एवं समुदाय में सहभागी सम्बन्धों का पूरा लाभ उठाया जा सके।

महिला पूरी आबादी का आधा हिस्सा है, अतः सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक सशक्तिकरण की बात हो और महिलाओं का जिक्र न हो तो बात अधूरी लगती है।

महिला सशक्तिकरण से यहाँ हमारा अर्थ शक्ति और संसाधनों से है ताकि महिलाएं स्वयं अपने लिए स्वतन्त्र निर्णय ले सकें, अथवा दूसरों द्वारा अपने विरूद्ध किए गये निर्णयों का विरोध कर सकें। जिसमें महिलाओं को जागरूक करके उन्हें आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक और स्वास्थ्य सम्बन्धी साधनों को उपलब्ध कराया जाने से है, ताकि उनके लिए सामाजिक न्याय और पुरूष महिला समानता का लक्ष्य हासिल हो सके, महिला सशक्तिकरण की राष्ट्रीय नीति का उद्देश्य महिलाओं की प्रगति, विकास एवं आत्मशक्ति को सुनिश्चित करना है।

दुनिया में ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ महिलाओं की उपेक्षा कर आर्थिक विकास सम्भव हुआ हो। महिलाओं को विकास की मुख्यधारा से जोड़े बिना किसी समाज राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की कल्पना नहीं की जा सकती है। आज अनवरत संघर्ष के बलबूते में महिलाओं ने सत्ता के सर्वोच्च शिखर तक चढ़कर हर क्षेत्र में स्वयं को पुरूषों के समकक्ष साबित किया है। जहाँ शहर की महिलाएं बुद्धि के हर क्षेत्र में स्वयं को पुरूषों के बराबर साबित कर रही हैं वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में भी महिलाओं में साक्षरता बढ़ी है और वे स्वरोजगार के जरिए आत्मनिर्भरता की ओर कदम बढ़ा रही हैं और वे गांव में पंचायत स्तर पर भी अपनी उपस्थिति प्रदान कर रही हैं। महिलाओं की आर्थिक स्थिति सुधरी है,

---

* प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, 'सल्तनत बहादुर महाविद्यालय, बदलापुर, जौनपुर, उ.प्र.।
** राजनीति विज्ञान विभाग, 'सल्तनत बहादुर महाविद्यालय, बदलापुर, जौनपुर, उ.प्र.।

वे नये जोश के साथ रसोईघर से बाहर निकलकर सामाजिक बन्धन को भी तोड़ा है। ये सुधार मुख्य रूप से महिला सशक्तिकरण का द्योतक है।

अक्सर ऐसा देखा गया है कि हम जब भी महिलाओं के विकास एवं उन्नति की बात करते हैं तब उसको पुरूष की तुलना के प्रारूप में ही बांधते नजर आते हैं। स्त्री की समानता और स्वतंत्रता के संदर्भ में भी ऐसा देखने को मिलता है। इस सन्दर्भ में प्रारम्भ से आज तक के विवेचन इसी प्रकार के तथ्य सामने लाते हैं। जबकि स्त्री सशक्तिकरण इसी सम्पूर्ण सामर्थ्य के लिए किया गया प्रयास है कि स्त्रियां अपनी स्थिति तथा कार्य के सम्बन्ध में निर्णय लेने के अधिकार का प्रयोग करें। क्योंकि वास्तविकता का स्वरूप कुछ और ही है। अधिकारिता देने से प्राप्त होने वाली नहीं इसकी सार्थकता तो पाप्त होनी वाली नहीं इसकी सार्थकता तो प्राप्त करने में है।

जहाँ तक भारत में महिला सशक्तिकरण के प्रयासों का प्रश्न है तो इसका बीजारोपण भारतीय संविधान का निर्माण करते समय ही हो गया जब महिलाओं को पुरूषों के समकक्ष मानते हुए उन्हें विधिक, राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक समानता प्रदान की गयी। डॉ0 अम्बेडकर जी संविधान लिखने से पूर्व हर क्षेत्र से वंचित स्त्रियों की दशा देख उन्होंने कहा कि ''गृहस्थी रूपी गाड़ी के स्त्री पुरूष दो पहिए होते हैं ये दोनों पहिए समान होने चाहिए। इनमें कोई विभेद नहीं होने चाहिए। छोटा–बड़ा नहीं होना चाहिए। इस वास्ते जितना अधिकार पुरूष को है उतना अधिकार स्त्री को भी मिलना चाहिए। शिक्षा प्राप्त करने, ज्ञानार्जन का अधिकार पुरूष को है, स्त्री को भी होना चाहिए।'' यह सब डॉ0 अम्बेडकर ने भारत के संविधान में लिपिबद्ध कर दिया है। यह उनकी ही देन है कि आज देश में स्त्रियां बड़े से बड़े पदों पर तैनात हैं चाहे वह शिक्षा का क्षेत्र रहा हो, चाहे वह राजनीतिक अथवा आर्थिक क्षेत्र रहा हो सबमें पुरूषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर स्त्रियाँ कार्य कर रही हैं इनकी बन्दिश की सारी बेड़ियां काट दी। वे बेड़ियां थी जो 'मनु' ने अपने संविधान में लिखा था जिनका उल्लेख छः शास्त्रों, अट्ठारह पुराणों, रामायण, महाभारत आदि में बखूबी के साथ वर्णित है। महिला वर्ग को तो मनुष्य की उपभोग की सामग्री बताकर घर की चहारदीवारी में बन्द कर दिया गया का कि ''अति वृष्टि जिमि फूटि क्यारी, जिमि स्वतंत्र होय बिड़ति नारी'' (तुलसीकृत रामचरित मानस से) स्त्री को स्वतंत्र मत छोड़ो यह बिगड़ जायेगी। बिगड़ने का अभिप्राय इस शिल्पी का क्या था कहा नहीं जा सकता, इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया जिसका शासन लभग पूरे संसार पर था जिसके राज्य में सूर्य कभी छिपता ही न था। श्रीलंका की राष्ट्रपति श्रीमती भण्डार नायके, अपाला, गार्गी जो महान विदुषा थी जिन्होंने याज्ञवल्क्य जैसे महान विद्वान को धूल चटा दी थी क्या ये बिगड़ी हुई औरतें थीं? शायद शिक्षित होकर अपने अधिकार को समझ न लें, स्वतंत्र होकर कार्य न करने लगें ताकि मनुष्य की दासता को, उसकी गुलामी को ठोकर मारकर, स्वतंत्र चिन्तन करके कार्य न करने लगे।

माता–पिता ने अन्धे, लूले, लंगड़े, अपाहिज, बेवकूफ के पल्ले में लड़की को बांध दिया और उसी को पति परमेश्वर मान कर पूजा करने लगी। शिक्षित होकर वह ऐसे को स्वीकार नहीं करेगी। शायद उसके बिगड़ने का कारण उस शिल्पी के दिमाग में यही रहा होगा।

शिक्षा मानव की बेशकीमती सम्पत्ति है। शिक्षा और ज्ञान को न कोई चुरा सकता है और न कोई बांट सकता है जैसा कि कहा जाता है कि ''शिक्षा है अनमोल रतन, पढ़ लिखकर कर लो जतन'' जैसा कि बाबा साहब डॉ0 भीमराव अम्बेडकर ने कहा था कि शिक्षा एक शेरनी का दूध है जिसको पीने के बाद व्यक्ति, बोलना नहीं दहाड़ता है। किसी भी राष्ट्र की उन्नति के पथ पर अग्रसर करने के लिए उसके रथ में शिक्षा का पहिया होना उतना ही आवश्यक है जितना जीने के लिए ऑक्सीजन। डॉ0 अम्बेडकर ने महिला शिक्षा पर विशेष बल दिया और कहा कि यदि एक महिला शिक्षित होगी तो वह अपने पूरे परिवार को शिक्षित कर सकती है क्योंकि मनुष्यों की प्रथम पाठशाला उसका घर परिवार होता है। इस तरह प्रत्येक घर के लोग शिक्षित हो जायेंगे। ज्योतिबा राव फूले अपने पत्नी श्रीमती सावित्री बाई फूले को पढ़ाकर महिलाओं के लिए एक स्कूल खोला जिसमें अपनी पत्नी को शिक्षिका बनाया इसीलिए सावित्री बाई फूले को भारत में प्रथम महिला शिक्षिका होने का गौरव प्राप्त है।

महिलाओं के सशक्तिकरण की प्रक्रिया में चौथी पंचवर्षीय योजना के बाद से उल्लेखनीय रूप से परिवर्तन आया। 'महिलाओं का विकास' के मुद्दे का स्थान महिलाओं का सशक्तिकरण ने ले लिया। संविधान के 73वें एवं 74वें संशोधन द्वारा पंचायती राज संस्थाओं तथा स्थानीय नगर निकायों के एक तिहाई पद महिलाओं के लिए आरक्षित कर दिया जाना इस दिशा में सर्वाधिक क्रान्तिकारी कदम था। 31 जनवरी, 1992 को राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन हुआ जिसके माध्यम से सदियों से पिछड़े, शोषित एवं उपेक्षित वर्ग के विकास पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। वर्ष 2001 में भारत सरकार ने महिला सशक्तिकरण वर्ष घोषित किया तथा राष्ट्रीय महिला शक्ति सम्पन्नता नीति 2001 घोषित की जिसके लक्ष्य निम्नलिखित थे–

क) महिलाओं की पूर्ण क्षमता की प्राप्ति के लिए महिलाओं के पूर्ण विकास हेतु सकारात्मक आर्थिक तथा सामाजिक नीतियों के माध्यम से वातावरण का सृजन करना।

ख) राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा सिविल सभी क्षेत्रों में पुरूषों के साथ समान आधार पर महिलाओं द्वारा समस्त मानवाधिकारों तथा मौलिक स्वतंत्रताओं का सैद्धान्तिक तथा वस्तुतः उपयोग करना।

ग) राष्ट्र के सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक जीवन में महिलाओं की भागीदारी तथा निर्णय स्तर तक समान पहुँच।

घ) सभी स्तरों पर स्वास्थ्य की देखभाल, स्तरीय शिक्षा, जीविका तथा व्यावसायिक, स्वास्थ्य तथा सुरक्षा तथा सार्वजनिक पदों इत्यादि में महिलाओं की समान पहुँच।

ङ) महिलाओं के साथ होने वाले सभी प्रकार के भेदभावों के उन्मूलन के उद्देश्य से कानूनी प्रणालियों का सुदृढ़ीकरण।

च) पुरूषों तथा महिलाओं दोनों की सक्रिय भागीदारी द्वारा सामाजिक रवैये और प्रथाओं में परिवर्तन।

छ) विकास प्रक्रिया में महिला परिप्रेक्ष्यों को शामिल करना।

ज) महिलाओं तथा बालिकाओं के साथ होने वाली हिंसा के सभी रूपों तथा भेदभावों का उन्मूलन।

झ) सिविल समाज, विशेषकर महिला संगठनों के साथ भागीदारी बनाना तथा उनका सुदृढ़ीकरण आदि। भारत ने वैश्विक भावना के अनुरूप महिलाओं के सशक्तिकरण हेतु किए गए निम्नलिखित प्रावधानों को अंगीकार किया है–

- महिलाओं के विरूद्ध सभी प्रकार के भेदभाव का समापन कन्वेशन (1993) को स्वीकार करना।
- कार्यवाही हेतु मैक्सिको योजना (1975)
- नैरोबी रणनीतियाँ (1985)
- बीजिंग घोषणा पत्र (1985)
- बीजिंग घोषणा–पत्र एवं कार्यवाही हेतु प्लेटफार्म पर आने की पहल को नई दिशा देना।

समाज के समुचित एवं सर्वांगीण विकास में महिलाओं का योगदान कभी भी कम नहीं रहा, परन्तु यह एक विडम्बना ही है कि समाज में उन्हें बराबरी का दर्जा शायद ही कभी प्राप्त हुआ है। इस बारे में डॉ0 अम्बेडकर ने कहा है कि ''भारतीय नारी श्रम से नहीं घबराती किन्तु आसुओं की चिंता करते हुए यह असमान व्यवहार, अपमान, शोषण से अवश्य डरती है।'' दूसरी ओर स्वामी विवेकानन्द ने कहा है कि स्त्रियों की अवस्था में सुधार लाए बिना विश्व कल्याण असम्भव है, जैसे कि एक पंख से उड़ान भरना। नोबेल पुरस्कार विजेता एवं प्रसिद्ध अर्थशास्त्री प्रो0 अमर्त्यसेन ने अपनी पुस्तक ''प्दकपं म्बवदवउपब क्मअमसवचउमदज ंदक ैवबपंस व्चचवतजनदपजल'' में लिखा है कि ''महिला सशक्तिकरण से न केवल महिलाओं के जीवन में निश्चित रूप से सकारात्मक असर पड़ेगा, बल्कि पुरूषों और बच्चों को भी इससे लाभ होगा।''

सशक्तिकरण का पहला आयाम महिलाओं में आत्मविश्वास और स्वाभिमान जाग्रत करने से सम्बन्धित है। पुरूष और महिला की सामाजिक स्थिति में अन्तर यूँ तो समूचे समाज में मौजूद है, किन्तु ग्रामीण समाज में हालत और बदतर है। शहरों में तो शिक्षा समाज सुधार आन्दोलन और

प्रचार प्रसार माध्यमों के प्रभाव से महिलाओं में अपने अधिकारों के प्रति समानता एवं स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त हुआ है, परन्तु ग्रामीण समाज में औरतें परिवार और समाज के शोषण का शिकार हैं। लड़कियों का जन्म अभिशाप माना जाता है और कुछ समुदायों में तो पैदा होते ही उन्हें मार दिया जाता है। लड़कों तथा लड़कियों के लालन–पालन में भेदभाव के कारण लड़कियों को लड़कों की तुलना में कम पौष्टिक भोजन मिलता है, जिससे वे बचपन में ही अकाल मृत्यु का शिकार हो जाती हैं या दुर्बलता के कारण अस्वस्थ रहती हैं। सामाजिक कुरीतियों, बाल विवाह, दहेज प्रथा, घरेलू हिंसा, नशाखोरी आदि के प्रभाव से महिलाएं सामाजिक आर्थिक एवं मानसिक दृष्टि से दबी रहती हैं।

श्रीमती विमला बाथम ने दिनांक 06 अगस्त 2018 को उ0प्र0 राज्य महिला आयोग के अध्यक्षा का कार्यभार ग्रहण किया और केन्द्र में वर्तमान अध्यक्षा रेखा शर्मा जी को बनाया गया है।

राष्ट्रीय महिला आयोग भारतीय संसद द्वारा 1990 में पारित अधिनियम के तहत 10 जनवरी 1992 में गठित एक सांविधिक निकाय है यह एक ऐसी ईकाई है जो शिकायत या स्वतः संज्ञान के आधार पर महिलाओं के संवैधानिक हितों और उनके लिए कानूनी सुरक्षा उपायों को लागू कराती हैं।

महिला सशक्तिकरण के लिए अनेक संवैधानिक प्रावधान किए गये हैं। उदाहरण के लिए अनुच्छेद 14, 15, 16 एवं 23 मौलिक अधिकार 38, 39, 42 (राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त) आदि हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1929, हिन्दू महिलाओं के सम्पत्ति के अधिकार अधिनियम 1937, हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, विशेष विवाह अधिनियम 1954, दहेज प्रतिबन्ध अधिनियम 1961/86, प्रसूति सुविधा अधिनियम 1961, बीड़ी एवं सिगार कर्मकार अधिनियम 1966, समान पारिश्रमिक अधिनियम 1976, बाल विवाह निषेध अधिनियम 1976, स्त्री अशिष्ट निरूपण अधिनियम 1988, सती निषेध अधिनियम 1987, प्रसव पूर्व निदान तकनीक अधिनियम 1994, भारतीय तलाक (संशोधन) अधिनियम 2001, घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम 2005, अनैतिक व्यापार (निरोधक) संशोधन विधेयक 2006, कार्य–स्थल पर यौन उत्पीड़न से महिलाओं का संरक्षण विधेयक 2007 आदि। उत्तर प्रदेश सरकार ने महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए 2007 में 'राज्य महिला आयोग' पुनर्गठित किया इसके अलावा पीड़ित महिलाएं आयोग द्वारा संचालित निःशुल्क हेल्प लाइन नंबर 1800–180–5220 पर अपनी शिकायत दर्ज करा सकती हैं। विगत वर्षों में महिला आयोग के सभी पदाधिकारियों द्वारा नियमित रूप से बैठकें हुई। वर्ष 2002, 03, 04 के लम्बित तथा वर्तमान वर्ष में प्राप्त 26,173 उत्पीड़न के मामलों की सुनवाई की गयी। 14151 मामलों का अन्तिम रूप से निस्तारण किया जो इस अल्प कार्य अवधि के लिए एक उपलब्धि है इसके साथ कई जागरूकता शिविरों का आयोजन

किया जा रहा है और महिलाओं के लिए अब 108, 1090 हेल्प लाइन नंबर देकर उनकी शिकायतों का निस्तारण किया जा रहा है।

आज स्थिति यह है कि पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं को 33 प्रतिशत स्थानों के विरूद्ध 40 स्थानों पर महिलायें निर्वाचित हो रही हैं। इससे स्पष्ट होता है कि महिलायें घूँघट एवं परम्पराओं के पर्दे से बाहर आकर समाज को सफल नेतृत्व दे रही हैं। इसी महिला सशक्तिकरण के कारण सन् 2009 में स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था में महिलाओं हेतु 50 प्रतिशत स्थान आरक्षित कर दिये गये हैं अब महिलाओं को आगे बढ़ने का स्पेश मिल चुका है, जिनकी उन्हें दरकार थी। जगह मिलते ही उन्होंने दिखा दिया कि वे पुरूषों से किसी क्षेत्र में न केवल होड़ ले सकती हैं बल्कि बाजी भी मार सकती हैं, क्योंकि पिछले वर्ष 2010 के लोकसभा चुनाव में 556 महिला उम्मीद्वार खड़ी हुई जिसमें से जनता 59 को चुनकर लोकसभा भेजी और मंत्रिमण्डल में 9 महिलाओं को चुना। संसद में महिलाओं की भागीदारी का यह आज तक का सबसे बड़ा रिकार्ड है। यह युवा शक्ति के हाथ में नेतृत्व सौंपने की कोशिश का ही यह परिणाम है कि 59 में 17 महिलायें 40 से कम उम्र की हैं।

महिलायें हमारे समाज का एक प्रमुख अंग हैं अतएव इन्हें विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जाना नितान्त आवश्यक है। महिलायें देश का गौरव बढ़ाने में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी पहचान बनाने और सशक्तता को साबित करने में सफल सिद्ध हुई हैं। ऐसी प्रमुख महिला हस्तियों में श्रीमती प्रतिभा पाटिल जो भारत की पहली महिला राष्ट्रपति बनीं, सोनिया गाँधी जो कांग्रेस की राष्ट्रीय अध्यक्षा हैं, सुषमा स्वराज, जयललिता तथा सुश्री मायावती जो प्रथम दलित मुख्यमंत्री उ0प्र0 हैं जो तीसरी बार इस पद पर आसीन हुई थी, आदि शामिल हैं। नारी सशक्तिकरण के प्रतीक के रूप में मानवाधिकार के लिए अपनी आवाज को सदैव बुलन्द रखने वाली चौसठ वर्षीय लोकसभा अध्यक्ष मीरा कुमार का भी नाम प्रमुख हैं, जिन्होंने साबित कर दिया कि नारी सशक्तिकरण अब राजनीतिक गलियारों का मुद्दा नहीं बल्कि पन्द्रहवीं लोकसभा की हकीकत है। यह पहला अवसर जब संसद में न केवल 50 से अधिक महिलाओं ने प्रवेश किया बल्कि मीरा कुमार के रूप में एक कुशल नारी ने सशक्त नारी बनकर पहली लोकसभा अध्यक्ष के रूप में इतिहास रचने का अविस्मरणीय कार्य किया।

इसी क्रम में उ0प्र0 की पूर्व मुख्यमंत्री सुश्री मायावती को आयरन लेडी के नाम से जाना जाता है जो एक सशक्त महिला हैं जो हमेशा अपने निर्णय पर अडिग रहती हैं। यहाँ तक कि आंतरिक्ष क्षेत्र में कल्पना चावला ने अपनी बहादुरी का परिचय देते हुए महिलाओं का झण्डा अंतरिक्ष में बुलन्दा किया वहीं महिला सशक्तिकरण से सार्वजनिक क्षेत्र में जो मुकाम किरण बेदी ने हासिल किया वह मुकाम पुरूष भी हासिल नहीं कर पाये। वर्तमान में करीब सात स्वयं सहायता समूह कार्यरत हैं। महिलाओं ने स्वयं सहायता

समूहों के रूप में एकजुट कार्य करते हुए अपनी सफलता सिद्ध कर दी। इन संगठनों को विविध सरकार प्रायोजित कार्यक्रमों जैसे नाबार्ड महिला कोष, यू0एन0डी0पी0 आदि के तहत सहायता उपलब्ध करायी जाती हैं महिलाओं में आर्थिक क्रान्ति की लहर अधिकतर शहरों में ही देखने को मिलती हैं। यह नहीं कि ग्रमीण महिला कामकाजी नहीं हैं परन्तु फिर भी वे आत्मनिर्भर नहीं हैं। इसका सबसे बड़ा कारण है उनका असंगठित होना। ग्रामीण महिला अधिकतर संगठित क्षेत्र में कार्य करती हैं इसलिए उन्हें बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ता है असुरक्षात्मक माहौल में कठोर श्रम के बावजूद उन्हें बहुत कम मजदूरी मिलती है और उन्हें कई सुविधाओं से वंचित रखा जाता है। जबकि भारत एक कृषि प्रधान देश है जिसकी 72 प्रतिशत जनसंख्या कृषि, कुटीर उद्योग, हथकरघा जैसे कार्यों से जुड़ी है। देश के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि क्षेत्र में महिला श्रमिकों द्वारा किये जाने वाले कार्य बुवाई, निराई–गुड़ाई, चारे की कटाई अनाज निकलवाने आदि तक सीमित हैं इसके अतिरिक्त महिलाएं मुर्गी पालन और मधुमक्खी पालन के कार्य भी करती हैं।

इस प्रकार भारत में ग्रामीण विकास, रोजगार संवर्द्धन व विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं को हल करने के लिए तथा महिला के विकास के लिए कई योजनाओं का क्रियान्वयन वर्तमान सरकार द्वारा किया जा रहा है जो हैं– समेकित बाल परियोजना, पूरक पोषण आहार योजना, गोदभराई योजना, मातृ एवं शिक्षा रक्षा कार्ड, अति गरीब महिलाओं को प्रसव पूर्व सहायता राशि, जननी सुरक्षा योजना, प्रसव परिवहन एवं उपचार योजना, प्रसव सहयोगी योजना, राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम, अन्नप्राशन योजना, जन्म दिवस योजना, किशोरी बालिका दिवस योजना, गांव की बेटी योजना, कन्या साक्षरता प्रोत्साहन योजना, बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ, मुख्यमंत्री कन्यादान योजना, समस्याग्रस्त महिलाओं की सहायता, महिला जागृति शिविर, विपदाग्रस्त महिलाओं की पुनः स्थापना के लिए प्रशिक्षण केन्द्र की स्थापना, उषा किरण योजना, सम्पूर्ण ग्रामीण रोजगार योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना, मनरेगा योजना, दीनदयाल योजना, राष्ट्रीय परिवार सहायता योजना, महिला डेयरी परियोजना, रानी दुर्गावती अनुसूचित जाति/जनजाति स्वरोजगार योजना आदि।

केन्द्र द्वारा संचालित योजना– सुकन्या समृद्धि योजना, बालिका समृद्धि योजना, सी.बी.एस.ई. उड़ान स्कीम।

माध्यमिक शिक्षा के लिए लड़कियों के लिऐ प्रोत्साहन की राष्ट्रीय योजना–

धनलक्ष्मी योजना राज्य द्वारा, हरियाणा की लाडली योजना, मध्य प्रदेश की लाडली लक्ष्मी योजना, महाराष्ट्र सरकार की माजी कन्या भाग्यश्री योजना, पश्चिम बंगाल की कन्या श्री प्रकल्प योजना, कनार्टन भाग्यश्री योजना।

इस प्रकार केवल संविधानिक प्रावधानों या अधिकारों के जोड़–घटाव से ही वांछित परिणाम प्राप्त नहीं किए जा सकते। बल्कि महिला सशक्तिकरण केवल तभी प्राप्त किया जा सकता है जब महिलाओं की भूमिका के सम्बन्ध में उचित अनुमान लगाने हेतु एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण किया जा सके।

17वीं लोकसभा चुनाव में 724 महिला उम्मीद्वार थीं जिसमें विजयी उम्मीद्वारों में महिलाओं की कुल संख्या 78 है। महिला सांसदों की अब तक की इस सर्वाधिक भागीदारी के साथ ही नई लोकसभा में महिला सांसदों की संख्या कुल सदस्य संख्या का 17 प्रतिशत हो गयी है। महिला सांसदों की सबसे कम संख्या 9वीं लोकसभा में 28 थी। चुनाव आयोग द्वारा लोकसभा की 542 सीटों के लिए शुक्रवार को घोषित पूर्ण परिणाम के आधार पर सर्वाधिक 40 महिला उम्मीद्वार बीजेपी के टिकट पर चुनाव जीती वहीं कांग्रेस के टिकट पर सिर्फ पार्टी की वरिष्ठ नेता सोनिया गाँधी ने महिला उम्मीद्वार के रूप में रायबरेली से जीत दर्ज की। इसके अलावा केन्द्रीय मंत्री स्मृति ईरानी ने अमेठी में कांग्रेस अध्यक्ष राहुल गाँधी को शिकस्त देकर ऐतिहासिक जीत दर्ज की है। इसके साथ ही साथ अनुप्रिया पटेल, प्रज्ञा ठाकुर, मीनाक्षी लेखी, किरण खेर रीता बहुगुणा जोशी आदि प्रमुख भाजपा सांसद हैं। इसके अलावा अन्य पार्टियों ने भी महिला उम्मीद्वार खड़ा किये थे– कांग्रेस ने 54, बीजेपी ने 53, बीएसपी 24, तृणमूल कांग्रेस ने 23, निर्दलीय 222 उम्मीद्वार थीं।

इसी प्रकार वर्तमान उत्तर प्रदेश के विधानसभा चुनाव महिलाओं के लिए वाकई अच्छा रहा। आजादी के बाद से प्रदेश में सबसे ज्यादा कुल 48 महिलायें इस बार विधानसभा पहुंची हैं। पिछली बार इनकी संख्या 44 थी। यह महिला सशक्तिकरण की ही देन है। 2017 की यू0पी0 विधानसभा में महिला मंत्री 3 थीं परन्तु 2022 के चुनाव में 5 महिलाओं को योगी मंत्रिमण्डल में जगह मिली हैं इसमें बेबीरानी मौर्य कैबिनेट मंत्री, गुलाब देवी राज्य मंत्री स्वतंत्र प्रभार इसके अलावा प्रतिभा शुक्ला राज्यमंत्री, रंजना तिवारी राज्यमंत्री, विजय लक्ष्मी गोत्म राज्यमंत्री।

वास्तव में स्वतंत्रता प्रदान करने से कोई स्वतंत्र नहीं होता। आवश्यकता तो इसकी है कि स्त्रियाँ अपनी शारीरिक, मानिसक, बौद्धिक, आर्थिक स्वतंत्रता की आवश्यकता महसूस करें और उसके लिए प्रयत्नशील हों और साथ ही साथ अपनी स्वतंत्रता का प्रारूप भी सावधानीपूर्वक, विवेकपूर्वक तय करें। यह किसी भी स्थिति में पुरूष विरोधी होने की बजाय पुरूष सहयोगी होना चाहिए, क्योंकि सम्पूर्ण विमर्श के मूल में आधी आबादी की स्वाभाविक उन्नति की बात हो रही है वह भी इस संदर्भ में कि सम्पूर्ण विश्व का विकास स्त्री–पुरूष के स्वाभाविक विकास पर निर्भर करता है न कि इस बात पर कि स्त्री–पुरूष से आगे हो या पुरूष स्त्री से आगे। भारतीय समाज में महिला सशक्तिकरण लाने के लिए महिलाओं के खिलाफ

बुरी प्रथाओं के मुख्य कारणों को समझना और उन्हें हटाना होगा जो कि समाज की पितृ सत्तात्मक और पुरूष युक्त व्यवस्था है, जरूरत है कि हम महिलाओं के खिलाफ पुरानी सोच को बदलें और संवैधानिक और कानूनी प्रावधानों में भी समय–समय पर बदलाव लायें।

निष्कर्षः–

21वीं सदी है, यह परिवर्तन की आहट है कि महलाएँ सफलता के शिखर पर आरूढ़ हो रही हैं। कामयाबी के साथ उनकी सामाजिक व आर्थिक तस्वीर लगातार बदल रही है। समाज के सभी पुरूष वर्चस्व वाले क्षेत्रों में महिलाओं ने शानदार प्रवेश किया है। वर्तमान स्थिति में महिला ने जो साहस का परिचय दिया है वह आश्चर्यजनक है। समाज के हर क्षेत्र में उसका परोक्ष–अपरोक्ष रूप में प्रवेश हो चुका है। आज तो कई ऐसी संस्थाएँ हैं जिन्हें केवल नारी ही संचालित कर रही है। जिस महिला को मध्य युग में बेड़ियों में जकड़ दिया गया था उस युग से आज तक उसके संघर्ष की कहानी बड़ी ही लम्बी एवं चुनौतीपूर्ण है परन्तु वह सफल हो रही है और आगे भी सफल होगी। यह संविधान की देन है, चाह कर भी कोई उसके बढ़ते कदम को थाम नहीं सकता।

संदर्भ :

1. श्रीवास्तव, सुधारानी, 'मानव अधिकार और महिला उत्पीड़न' कामनवेल्थ पब्लिकेशन, नई दिल्ली (2003)
2. समाज कल्याण, अक्टूबर 1998 महिला एवं बाल विकास विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय।
3. सक्सेना, प्रगति, मार्च 2001 'इक्कीसवीं सदी का नारीवाद' हंस पूर्णांक 174 अंकः 8, नई दिल्ली।
4. दोषी, एस.एल., जैन, पी.सी., संरचना और परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 2003
5. गिरिश खरे– महिला सशक्तिकरण की हकीकत, प्रभात खबर पटना, 9 फरवरी 2011
6. एम. अखिलेश व शुक्ला संध्या (2016) महिलाओं का विकास एवं सशक्तिकरण, गायत्री पब्लिकेशन, रीवा।
7. यू0पी0 खबर– गूगल पर– 21.03.2017
8. नवभारत टाइम्स– 24 मई, 2019
9. नवभारत टाइम्स– 12 मार्च, 2022

***

भारत के प्रमुख 24×7 टेलिविजन समाचार चैनलों का वस्तुनिष्ठ अध्ययन

*सेवा सिंह बाजवा**
*विरेन्द्र सिंह***

सारांशः- स माचार चै नल स माज का दर्प ण हो ते हैं समाज में घ टित हो ने वा ली घटनाओं से अवगत करवाते हैं। समाचार आधारित स्टेलाईट चैनल विभिन्न भा षाओं एवं प्रमुख क्षेत्रीय भाषा में प्रसारण दिन-प्रतिदिन करते हैं। इस शोध पत्र में भारत के 24X7 स माचार चै नलों का व स्तुनिष्ठ अ ध्ययन कि या ग या है। स माचारों को किस स्वरूप में पि रोकर प्रसारित कि या जाता है कि स चैनल की पंहुच व द र्शक वर्ग को कैसे किसी चै नल के सा थ बांधे रखने का का र्य ये चै नल क रते हैं। सूचना कि सी भी दर्शक के लि ए अ तिआवश्यक है । स माचार की निष्प क्षता, व स्तुनिष्ठता व यथा र्थता उसके चै नल प र नि र्भर क रती है । सू चना व स माचारों का प्रभा व द र्शकों के साथ, समाज के लोगों प र भी प्रत्यक्ष तौर पर उनकी निजी जिंदगी पर पड़ता है। स माचार चैनल कि सी भी स माचार को एक उत्पा द के रू प में बे चने का का म क रने लगे हैं, उसका एकाधि कारात्मक उप योग क रते हुए बि ल्कुल भी न हीं हि चकिचाते। चिल्ला चिल्ला कर बुलंद आवाज में बोलियां लगाते नजर आते हैं।

बीजक शब्दः- समाचार चैनल, सूचना, स्टैलाईट, निष्पक्षता, वस्तुनिष्ठता

परिचयः- भारत में टेलिविजन के लिए सन् 1959 के सितंबर माह की 15 तारीख बहुत ही महत्वपुर्ण है। क्योंकि इस दिन भारत में टेलिविजन का पर्दापण हुआ था। 1968 में प्रतिमा पुरी के द्वारा समाचार प्रस्तुति के साथ ही दूरदर्शन पर समाचारों का प्रसारण आरम्भ हो गया। इसके साथ ही धीरे-धीरे समाचार बुलेटिन की संख्या में भी वृद्वि होने लगी और 1977 में तीन समाचार बुलेटिन का प्रसारण होने लगा। जिसमें दो हिन्दी और एक अंग्रेजी में। 1982 में रंगीन प्रसारण के साथ ही दूरदर्शन के समाचार बुलेटिनों में भी हिन्दी, अंग्रेजी संस्कृत और उर्दू के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं में समाचार प्रसारित होने लगे। चुनाव पर आधारित कार्यक्रमों में चुनाव विश्लेषण के कारण टेलिविजन समाचारों के महत्व को अधिक बल मिलने लगा। चुनाव विश्लेषण के विशेषज्ञ रहें प्रणव रॉय और विनोद दुआ के चुनिंदा शब्दों और तीखे अंदाज के साथ शालिन प्रस्तुति ने खबरों के विश्लेषण से दर्शकों में नए विचार, जिज्ञासा और खबरों को जानने का रोमांच हिलोरे लेने लगा। जिसके कारण समाचारों को देखने व जानने वाले एक वर्ग का निर्माण होने लगा। लोग देर रात तक जाग कर भी इन कार्यक्रमों के द्वारा अपने मस्तिष्क की खुराक को पूर्ण करते थे। इसी को देखते हुए भारत में निजी समाचार चैनलों के लिए अपार संभावनाए दिखने लगी और धीरे-धीरे अनेक निजी समाचार चैनल दर्शकों के लिए प्रसारित होने लगे।

---

* Professor, Deptt. of Journalism and Mass communication, CDLU
** Research Sacholar, Deptt. of Journalism and Mass Communication, CDLU

एनडीटीवी इंडिया: 24 घण्टें समाचार प्रसारित करने वाला हिन्दी समाचार चैनल जिसकी टैग लाईन 'खबर वही जो सच दिखाए'। प्रणव राव ने 1988 में एनडीटीवी के नाम से समाचार प्रोडक्शन की शुरूआत की। डा. देवव्रत सिंह ने अपनी पुस्तक भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में लिखा है कि चुनाव विश्लेषण का कार्य करने वाले प्रणव राय को 'द वर्ल्ड दिस वीक' कार्यक्रम ने आम लोगों में लोकप्रिय बना दिया। अंग्रेजी भाषा में प्रसारित होने वाले इस कार्यक्रम को शहरी क्षेत्र के लोागें ने खूब पसंद किया। समाचार प्रसारण के क्षेत्र में 1995 में दूरदर्शन चैनल पर 30 मिनट के कार्यक्रम 'द न्यूज टुनाइट' समाचार कार्यक्रम के साथ आया। इस समाचार चैनल के प्रमुख कार्यक्रम में 9 बजे प्राईमटाईम वीद रवीश कुमार जो एक घण्टें का समाचर विश्लेषण आधारित कार्यक्रम है। इसके साथ की न्यूजप्वांईट जिसे अभिज्ञान प्रकाश हॉस्ट करते है। बडी खबर 6 बजे सप्ताह के सातों दिन निधी कुलपती के द्वारा उस दिन की सबसे बड़ी या महत्वपूर्ण खबर के साथ कार्यक्रम को प्रस्तुत किया जाता है। ऐसे ही हम लोग, मुकाबला आदि कार्यक्रम भी प्रसारित होते है। इनमें राजदीप सरदेसाई, अर्णव गोस्वामी, बरखा दत्त, सोनिया वर्मा, पंकज चौधरी, रूपाली तिवारी, विक्रम चंद्रा, कमाल खान, संकेत उपाध्याय आदि।

वर्ष 2005 में एनडीटीवी ने अपना बिजनेस समाचार आधारित चैनल एनडीटीवी प्रोफिट भी आरंभ किया। 2016 में एनडीटीवी ने यूनाइटेड किंगडम में एनटीवी इंडिया और एनडीटीवी स्पाइस नामक दो अलग-अलग चैनल प्रारंभ करने का निर्णय लिया। शरीक खान, तरूण परयानी, नगमा सहर, कादम्बिनी शर्मा इस चैनल के साथ कार्य करते रहे हैं। रवीश कुमार के शो प्राइम टाइम पर आरोप लगते रहें हैं कि यह प्रधानमंत्री मोदी की तीखे शब्दों में आलोचना करते हैं। बीजेपी के समर्थकों एवं कार्यकर्ताओं द्वारा इसकी आलोचना की जाती है। परंतु कंपनी ने इसे **विच-हंच** कहा है। इसके कारण रवीश कुमार को भी अनेक बार संकट के दौर से गुजराना पड़ा है। इस के वर्तमान शो में देश-प्रदेश, गुडमोर्निंग इंडिया, क्राईम रिपोर्ट, सवाल इंडिया का संकेत उपाध्याय के साथ, पांच की बात, देश की बात, कॉफी एंड क्रीष्टो, हॉट टॉपिक, खबरों की खबर, बड़ी खबर, क्या आप जानते हैं, सिटी सेन्टर, सिटी एक्सप्रेस, इंडिया एट नाईन, सेल गुरू, आदि।

आज तक: इंडिया टुडे ग्रुप ने वीडियो मैगजीन के माध्यम से 1988 में वीडियो ट्रैक की शुरूआत की और दूरदर्शन के मेट्रो चैनल पर 1995 में रात के समय में 'आज तक' समाचार आधारित कार्यक्रम के साथ हुई। समाचारों के जानकार पत्रकार सुरेंद्र प्रताप सिंह ने अपनी जिम्मेंदारी इस कार्यक्रम के साथ बहुत ही बेहतर तरीके से निभाई। हिंदी भाषी दर्शकों को यह कार्यक्रम खूब भाने लगा जिसके कारण दर्शकों की जबान पर भी इस कार्यक्रम का नाम यकायक ही आने लगा और यह कार्यक्रम सब का पसंदीदा कार्यक्रम बन गया। पत्रकार और एंकर सुरेंद्र प्रताप सिंह की वाणी और आर्कषक अंदाज में कही गई सूक्ती 'ये थी खबरें आज तक, इंतजार कीजिए कल तक'ने भी शीघ्र ही दर्शकों के मध्य में अपने आपको स्थापित कर लिया। इस चैनल के प्रमुख पत्रकार एवं एंकर राहुल देव, संजय पुगलिया, आशुतोष, दिबांग, अंजू गुलेरिया, दीपक चौरसिया, राजेश बादल, विजय विद्रोही, रोहित सरदाना, अंजना ओम कश्यप, राहुल कंवल, श्वेता सिंह आदि ।

आजतक तेज या तेज न्यूज भी 24 घण्टे का हिन्दी समाचार चैनल है जो 22 अगस्त 2005 से 4 सितंबर 2021 तक इसी नाम से प्रसारित होता रहा। परन्तु 5 सितंबर 2021 से यह गुड़ न्यूज टूडे के नाम से प्रसारित होने लगा है। आजतक चैनल पर प्रसारित होने वाले प्रमुख कार्यक्रमों में 10 तक, खबरदार, हल्लाबोल, दंगल, सास बहू और बेटियां, सीधी बात कार्यक्रम में प्रभु चावला के द्वारा किसी प्रमुख व्यक्ति के बारे में तीखे अंदाज में सवाल जवाब के माध्यम से गंभीर जानकारियां भी प्रस्तुत की जाती रही, लेकिन 2015 में आज तक के एक पत्रकार को छोटे बच्चे को पैसे देकर शराब खरीदने की वीडियो के कारण शर्मिंदा भी होना पड़ा। डिजीटल प्लेटफार्म पर भी इसके सब्सक्राइबर्स की संख्या खूब है।

जी न्यूजः दिसम्बर 1994 में एस्सेल के चैयरमैन व जी न्यूज के संस्थापक सुभाषचंद्र गोयल ने एलटीवी का शुभारंभ किया लेकिन कुछ समय बाद इसी चैनल को जी इंडिया और उसके बाद सन् 1998 में इसे चौबीस घण्टें प्रसारित होने वाले जी न्यूज के नाम से प्रारंभ किया। 1999 के नवम्बर में जी न्यूज ने अब तक का चुनाव संबंधी सबसे लंबा 72 घण्टे का लाईव प्रसारण किया। यह प्रसारण इस न्यूज चैनल के लिए एक वरदान साबित हुआ। इस चैनल के साथ उस समय शैलेष सिंह, राकेश खैर व शाजी ज़मान , राजू संथानम ने अपनी जिम्मेंदारी निभाई और सुभाषचंद्रा को एक सफलता दिलवाने में सक्षम हुए।

इसमें कुछ व्यक्तियों को अलग अलग जिम्मेदारी सौंपी गई जिसके दौरान खबरों को बड़ी जल्दी से दिखाने और कम्पयुटर आधारित न्यूज को ग्राफिक्स और सॉफटवेयर के द्वारा उच्च गुणवता के साथ प्रसारित करने का निर्णय लिया गया। जी न्यूज पर प्रसारित होने वाले प्रमुख कार्यक्रमों में एक मिनट एक खबर, जी स्पेशल, नमस्ते इंडिया, न्यूज खटाखट, डीएनए, एजेंडा इंडिया का, देश हित, ताल ठोक के, फर्स्ट ऑन जी, जी वर्ल्ड एक्सक्लुसिव, जी कवर स्टोरी , जनता की अदालत आदि शो के माध्यम से समाचारों को प्रसारित किया जाता है। सुधीर चौधरी, रोहित सरदाना, राजकमल चौधरी, अदिति त्यागी, मीमांसा मलिक, अमन चोपड़ा, शीरीं शेरी, सचिन अरोड़ा, प्योधि शशि, अदिति अवस्थी, राहुल सिन्हा इस चैनल के साथ जुड़े रहें।

एबीपी न्यूज: । फरवरी 1998 में स्टार न्यूज के नाम से 24 घंटे का समाचार चैनल शुरू किया। स्टार न्यूज इंडिया के लिए एक अच्छी खासी मोटी रकम एनडीटीवी के प्रोडक्शन हाउस के माध्यम से प्रणव राय को दी। प्रणव राय ने 2003 तक सफलतापूर्वक इस कार्य को पूर्ण किया। अबतक यह अंग्रेजी और हिन्दी भाषा में प्रसारण करता था लेकिन अब से हिन्दी भाषा में ही समाचारों का प्रसारण करने 31 मार्च 2003 से स्टार न्यूज नए स्वरूप में री-लाँच हुआ। स्टार न्यूज के नए कार्यक्रम नेशनल रिपोर्टर, देश-विदेश, स्टार रिपोर्ट, सिटी-60 दर्शकों को लुभाने वाले कार्यक्रम थे। इसके साथ बीर के तीर, आज की बात, अकबर का दरबार प्रमुख पत्रकारों के शो काफी लोकप्रिय शो रहें। 2005 में कुछ समय के लिए टीआरपी की दौड़ में भी नम्बर एक का स्वाद चखने का मौका भी मिला। 1 जून 2012 से स्टार न्यूज को एबीपी न्यूज के रूप में जाना जाने लगा। इसके दूसरे चैनलों में एबीपी माझा, एबीपी आनंद, एबीपी गंगा आदि हैं। इस के प्रमुख एंकर एवं रिपोर्टर सुमित अवस्थी, शोभना यादव, रोमाना इसरखान, रूबिका लियाकत, शिखा ठाकुर,

कुमकुम बिनवाल, प्रतिमा मिश्रा, शगुन शर्मा,अखिलेश आनंद के साथ निम्न प्रकार के कार्यक्रम प्रस्तुत किए जा रहे है।सास बहु और साजिश, खबर फिल्मी है, मातृभूमि, हुंकार, खबर फटाफट, भारत की बात, इंडिया चाहता है, मास्टरस्टोक, घंटी बजाओं, सनसनी, आर-पार, खबर दिन भर, एबीपी रिपोर्टर, खबर 9 बजे, नमस्ते भारत आदि।

इंडिया टीवी: 1997 में रजत शर्मा और उनकी पत्नी रितु धवन ने इंडिपेंडेंट न्यूज सर्विस की स्थापना की जो इंडिया टीवी की मूल कंपनी है। 20 मई 2005 से रजत शर्मा ने इंडिया टीवी की शुरूआत की। इससे पहले रजत शर्मा जी टीवी के लिए जनता की अदालत कार्यक्रम प्रस्तुत किया करते थे। इस चैनल की पहचान एक प्रकार से स्टिंग ऑपरेशनों के तौर पर की जाने लगी। इस चैनल पर ही आप की अदालत कार्यक्रम के द्वारा रजत शर्मा प्रमुख हस्तियों को कटघरें में लेकर सवाल-जवाब आधारित कार्यक्रम को जनता के लिए रोचक एवं मनोरंजक बनाता है। जिसे जनता के द्वारा खूब सराहा गया।

भ्रष्टाचार जैसे मुद्दे पर तरूण तेजपाल आज का तहलका, रजत शर्मा आपकी अदालत और जीने की राह जैसे कार्यक्रम इस चैनल की शान रहें हैं। इंडिया टीवी 'आप की आवाज' नारे का उपयोग किया जाता है। इस चैनल में रजत शर्मा के साथ सौरव शर्मा, सुरभी आर. शर्मा, पंकज भार्गव, मीनाक्षी जोशी, ज्योति मिश्रा, अमित पाटिल, हुसैन रिज्वी व ज्योतस्ना पाटनी की टीम चैनल के दर्शकों को प्रतिदिन अच्छे कंटेंट के साथ शो प्रस्तुत करते हैं। जिनमें आज की बात रजत शर्मा के साथ, सुपर 100, जागो इंडिया, भविष्यवाणी, कोरोना से जंग बाबा रामदेव के संग, सुपरफास्ट 200, स्पेशल रिपोर्ट, कुरूक्षेत्र, जवाब दो, हकीकत क्या है, आप की अदालत, चक दे इंडिया, आजा गुडलक निकालें, जैसे प्रमुख शो को प्रसारित करता है। चुनाव के दौरान एवं खेल के दौरान यह चैनल खबरों को विश्लेषण के साथ प्रसारित करता है।

सीएनएन-आईबीएनः अंग्रजी भाषा में प्रसारित होने इस चैनल को राघव बहल के द्वारा स्थापित किया गया। वर्तमान में इसका स्वामित्व नेटवर्क 18 और टर्नर इंटरनेशनल के पास है। सीएनएन विश्वव्यापी प्रसारणकर्ता है। जबकि नेटवर्क 18 भारतीय और स्थानीय प्रसारण को अधिक महत्व देता है। सीएनएन-आईबीएन18 रीब्राण्ड के नाम से 18 अप्रैल 2016 से प्रसारण करने लगा। इस चैनल में रिलांयस की भी भागीदारी है। इसके प्रमुख शोज में न्यूज18 हैडस्टार्ट, 8एम एक्सप्रैस, द मॉर्निंग न्यूज, न्यूज 18, आफर्टनून प्राइम, इंडिया 360, लेट नाईट एडिशन, न्यूज एपीसैंटर, एपीसैंटर टूनाईट, द क्रस, फेसऑफ टूनाईट, व्यूप्वांईट, वर्ल्ड व्यू वीद सुशान हैदर, इ वीक थैट वाज नॉट, टेक एंड ऑटो शो, ऑफ सैन्टर, नाउ शोविंग, विर्चऑसीटी आदि प्रमुख कार्यक्रम है। ईटीवी के नाम से प्रसारित टीवी वर्तमान में टीवी18 नेटवर्क के लोगो के साथ प्रसारित हो रहे हैं। आईबीएन7 एक हिंदी समाचार प्रसारण चैनल है जो कि दैनिक जागरण ने 2005 में लाँच किया। राजदीप सरदेसाई, अजय उपाध्याय, आशुतोष, अजीत साही, प्रशांत टंडन, संजीव पालीवाल, प्रबल प्रताप सिंह जैसे पत्रकारों की टीम दर्शकों को समाचारों के साथ जोड़ने का कार्य करती है। इसके सहयोगी चैनल 15 क्षेत्रीय चैनलों के साथ 26 राज्यों में प्रसारण करते हैं। लगभग 1200 पत्रकारों के साथ भारत के कोने कोने तक पहुंचने का प्रयास रहता है।

न्यूज 24 – थींक फर्ट्k, बीएजी नेटवर्क के चैनल न्यूज 24 हिन्दी न्यूज चैनल को दिसम्बर 2007 में लॉन्च किया गया। यह चैनल भारत में तीव्र गति से हिन्दी भाषी दर्शकों का पसंदीदा चैनल बना। इसके दूसरे सहयोगी चैनल ई24, जो बॉलीवुड से संबंधी समाचारों और समसामयिक घटनों को प्रसारित करता है। दर्शन 24 जोकि धार्मिक प्रसारण करता है। अनुराधा प्रसाद बीएजी फिल्में और मीडिया लिमिटिड की प्रबंध निर्देशक है। वर्तमान में इसके डिजिटल प्रसारण यूट्यब चैनल पर एक करोड़ दर्शक बन चुके हैं। कालचक्र, मॉर्निंग न्यूज, स्पेशल न्यूज, न्यूज 100, राष्ट्र की बात, माहौल क्या है, सबसे बड़ा सवाल, प्राइम टाइम एम्सक्लूसीव, दस की डिसक्री, नॉन स्टॉप 9 आदि प्रमुख कार्यक्रम प्रसारित होते हैं। यह चैनल क्षेत्रीय समाचारों को अपने डिजिटल प्लेटफार्म पर प्रसारित कर रहा है। न्यूज24 बिहार और झारखण्ड, न्यूज छतीसगढ़, न्यूज24 पंजाब और हरियाणा, न्यूज 24 राजस्थान व न्यूज उत्तरप्रदेश इनमें प्रमुख हैं। संदीप चौधरी, मयंक गुप्ता, आशा मिश्रा, अनुराधा प्रसाद, विशाल अंग्रीश आदि की टीम प्रमुख है।

टाइम्स नाउः 31 जनवरी 2006 में चैनल टाइम्स नाउ का प्रसारण प्रारम्भ हुआ। रायटर्स के साथ मिल कर भारत के प्रतिष्ठित समाचार-पत्र समूह ने इसे शुरू किया। इस चैनल का स्लोगन फिल द न्यूज का उपयोग किया। अर्णव गोस्वामी को एडीटर इन चीफ बनाकर इस चैनल की जिम्मेदारी सौंपी गई। सम्पूर्ण भारत में यह भुगतान देकर देखा जाने वाला चैनल रहा। 2016 तक यह भारत का सबसे अधिक देखा जाने वाला अंग्रेजी समाचर चैनल रहा है। टाइम समूह के दूसरे चैनलों में जूम, ईटी नाउ, मूवीज नाउ, रॉमेडी नाउ, एमएन प्लस, एमएनएक्स, मिरर नाउ के साथ साथ टाइम नाउ नवभारत व ईटी नाउ स्वदेश हिन्दी न्यूज चैनल है। इसमें राहुल शिवशंकर, मरूफ राजा, नवीका कुमार, पद्मजा जोशी, सुशांत सिन्हा, अंकित त्यागी, मीनाक्षी खंडवाल प्रमुख पत्रकार हैं।

रिपब्लिक भारतः 2 फरवरी 2019 को रिपब्लिक मीडिया नेटवर्क के चैनल के तौर पर अर्णव गोस्वामी ने प्रारम्भ किया। अर्णव गोस्वामी इसके एडिटर इन चीफ भी है। इस चैनल पर टीआरपी में गड़बडी करने के आरोप भी लगे है। इस पर एक पार्टी के पक्ष में पत्रकारिता करने के आरोप लगते रहे हैं। अर्नब गोस्वामी, श्वेता त्रिपाठी, श्वेता श्रीवास्तव, शाजिया निसार, निधि वासंदानी, विवेक शांडिल्य, ज्योत्सना बेदी, एश्वर्या कपूर, सुचरिता कुकरेती, आचार्य विक्रमादित्य आदि इस चैनल के साथ संबंधित है। इस चैनल पर पत्रकारिता कर रहे बहुत से पत्रकारों की समाचार प्रस्तुती पर भी सवाल खड़े हुए हैं। इन के द्वारा शारीरिक भाषा, गुस्से एवं उत्तेजना भरे व्यवहार ने दर्शकों को काफी नाराज किया है।

दूरदर्शन न्यूज या डीडी न्यूजः- डीडी न्यूज भारत का एकमात्र समाचार चैनल है। जो 3 नवम्बर 2003 से 24 घण्टें के समाचार प्रसारित करता है। प्रसार भारती के स्वामित्व में यह समाचार चैनल भारत के विभिन्न समाचारों को हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत के साथ उर्दू भाषा में भी समाचारों का प्रसारण करता है। डीडी न्यूज मन की बात, पॉजीटीव इंडिया, खबर दुनिया की, सीधा संवाद, वर्ल्ड कॉन्नेक्ट, वार्तावली, टोटल हेल्थ, द सोशल कॉनेक्शन, तेजस्विनी, रंग-तरंग, जीनेक्सट, दो टूक, चर्चा में, कैंडीड कनवर्शेशन, गुड न्यूज इण्डिया, इंडिया फर्स्ट, लेट एडिशन, जानने का हक, आमने

सामने आदि कार्यक्रमों को प्रसारित करता है। इसके प्रमुख पत्रकारों एवं एंकर शोभना जगदीश, सुनीत टंडण, अविनाश कौर सरीन, सम्मी नारंग, सरला महेश्वरी, नीलम शर्मा, वेद प्रकाश, निधी रविन्द्रन, विनोद दुआ व रीनि सीमोन खन्ना रहें। इस चैनल के माध्यम से सामाजिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक धटनाओं को प्रमुखता के साथ दिखाता है। इंटरनेशनल प्रसारक के तौर पर कुछ शोज जैसे नाटक, कॉमेडी श्रृंखला, टॉक शो, वृतचित्र का प्रसारण किया जाता है।

इण्डिया न्यूजः- इण्डिया न्यूज आईटीवी नेटवर्क मीडिया समूह के द्वारा स्थापित किया गया। कार्तिकेय शर्मा जो विनोद शर्मा के सुपुत्र है इसके मालिक है। इस समूह के 12 समाचार चैनल हैं जिनमें इण्डिया न्यूज प्रमुख है। अजय शुक्ला इस चैनल के एडिटर इन चीफ है। इण्डिया न्यूज के सहयोगी चैनल के तौर पर इंडिया न्यूज हरियाण, इंडिया न्यूज उत्तरप्रदेश-उतराखण्ड, इंडिया न्यूज राजस्थान, इंडिया न्यूज गुजरात, इंडिया न्यूज मध्यप्रदेश- छतीसगढ़, न्यूजएक्स, न्यूजएक्स कन्नडा, न्यूजएक्स ओडिया, एनई न्यूज, इंडिया न्यूज पंजाब, इंडिया न्यूज जॉय बंगला, इंडिया न्यूज बिहार-झारखण्ड, इंडिया न्यूज जय महाराष्ट्र आदि। अभी हाल ही में कार्तिकेय शर्मा संसद के सदस्य के तौर पर चुने गये है।

निर्ष्कषः-भारत में 24 घण्टें के समाचार चैनलों के प्रसारण ने दर्शकों को अपनी पसंद और समय के अनुसार टेलिविजन समाचार देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। अनेक मीडिया समूह विभिन्न भाषाओं और विषयों को आधार बनाकर चैनलों का प्रसारण करते हैं। समाचार चैनलों ने विविधता के साथ-साथ अपना अलग ही दर्शक वर्ग बना लिया है। जिसने दर्शकों को विशेष समाचारों के साथ जोड़ने का काम किया है। दूरदर्शन पर समाचारों को संतुलित, सारगर्भित व सूचनात्मक तौर पर प्रसारित किया जाता है वहीं निजी चैनलों पर समाचारों को पैकेज के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा है। जहां पहले समाचार चैनलों में स्टीक और सदे हुए शब्दों एवं समानात्मक भाषा का उपयोग करते थे वहीं अब खासतौर पर प्राईम-टाईम की चर्चाओं में उत्तेजक, भड़काऊ और अमर्यादीत भाषा का उपयोग करने लगे है। चैनल पहले की अपेक्षा समाचार कम और परिचर्चा अधिक टीवी सक्रीन दिखाई जाने लगे हैं। कुछ चैनल के एंकर तो मेहमानों को नीचा दिखाने के लिए ही उन्हें परिचर्चा में आमंत्रित करते प्रतीत होते है।अपनी भाषा पर संयम, शालीनता व अपनापन कहीं नहीं दिखाई देता। वास्तव में समाचार बुलेटिन का स्वरूप ही बदल गया है। आधुनिक समय की मांग को देखते हुए सभी चैनलों ने अपने डिजिटल प्लेटफार्म भी तैयार कर लिए हैं। जिसमें वे यूटयूब, ट्विटर, टेलिग्राम, वेब पोर्टल व वेब साइट आदि अन्य सोशल माध्यमों का प्रयोग भी मीडिया समूहों के द्वारा किया जाने लगा है ताकि किसी घटना के घटते ही उनकी खबर दर्शकों तक पहुंच सके। सभी मीडिया चैनलों ने अपनी अपनी मोबाईल एप्प भी तैयार की हुई है जिसके माध्यम से भी दर्शकों/ उपभोगकर्ताओं तक पहुंचा जा सकता है। अब यह कहना की डिजिटल माध्यमों के बढ़ते प्रभाव के कारण समाचार चैनल अब प्रत्येक व्यक्ति के मोबाईल में उपलब्ध है कोई गलत नहीं है। यह भी सत्य है की समाचार चैनल किसी भी देश की राजनीती पर गहरा प्रभाव डालते हैं तभी अनेक चैनलों का स्वामीत्व प्रत्यक्ष या

अप्रत्यक्ष आधार पर राजनैतिक व्यक्तियों के पास हैं। समाचारों के प्रसारण में तीव्रता के साथ अनेक प्रकार के प्रयोग भी दिन प्रतिदिन देखे जा सकते हैं।

संदर्भ :

1. डा. देवव्रत सिंह, भारतीय इलेक्ट्रॉनिक मीडिया
2. डा. श्याम कश्यप, खबरें विस्तार से भाग -1
3. डा. श्याम कश्यप, टेलिविजन की कहानी भाग -1
4. डा. विनीता गुप्ता, संचार और मीडिया शोध,
5. धनंजय चोपडा, संचार शोध और मीडिया
6. https://hi.wikipedia.org/wiki
7. https://www.news18.com/
8. https://en.wikipedia.org/wiki/List_of_news_channels_in_India #Hindi_news_channels
9. https://en.wikipedia.org/wiki/DD_News
10. https://en.wikipedia.org/wiki/NDTV_India
11. https://ndtv.in/
12. https://www.aajtak.in/
13. https://en.wikipedia.org/wiki/ABP_News
14. https://www.abplive.com/
15. https://en.wikipedia.org/wiki/News18_India
16. https://hindi.news18.com/
17. https://en.wikipedia.org/wiki/Republic_Bharat_TV
18. https://en.wikipedia.org/wiki/News_24_(Indian_TV_channel)
19. https://news24online.com/
20. https://www.apnimaati.com

***

शिवपुरी ज़िले के चित्रित शैलाश्रय एवं उनका अध्ययन

डॉ. शांतिदेव सिसोदिया *
कु. श्वेता सिंह अहिरवार **

सारांश

प्रागैतिहासिक शैलचित्र कला का उद्‌भव आदिमानव की गुफाओं से हुआ, जिसे प्रागैतिहासिक चित्रकला का नाम दिया गया। प्रारम्भिक मानव के जीवन को करीब से जानने के लिए प्रागैतिहासिक गुफाओं की चट्टानों पर निर्मित चित्रकला प्रागैतिहासिक मानव जीवन को समझने के लिए सबसे प्रामाणिक साक्ष्य माने जाते हैं। जिस प्रकार मध्यप्रदेश में मौजूद **भीमबैठिका, आदमगढ़, पचमढ़ी** इत्यादि प्रागैतिहासिक स्थलों में मौजूद शैलचित्र कला अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती है, ठीक उसी प्रकार शिवपुरी जिले में मौजूद प्रागैतिहासिक चित्रकला के माध्यम से इस क्षेत्र में रहने वाले मानव ने अपने दैनिक जीवन से संबन्धित विभिन्न प्रकार के चित्रों को उकेरा, जोकि प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल की विभिन्न घटनाओं और मानव संस्कृति के विभिन्न पहलुओं की दर्शाते है। इस शोध पत्र के माध्यम से शिवपुरी जिले की प्रागैतिहासिक शैलचित्र कला एवं उनसे संबन्धित पुरस्थलों की जानकरी प्रस्तुत की गयी है।

मुख्य शब्दः–– शिवपुरी, शैलचित्र कला, प्रागैतिहासिक काल, मध्यपाषाण काल, ताम्रपाषाण काल, ऐतिहासिक काल, सुपरइम्पोजीशन, पूरक शैली, शिकारगाह, भदैयाकुण्ड, भूराखोह, विची शैलाश्रय, कालोथरा, इमलिया, चोरपुरा/सुभाषपुरा, मोहनगड़ शैलाश्रय, टुण्डाभरखाखोह, रेखांकित मानव, चिड़िया, हिरण, युद्ध–दृश्य, ज्यामितिय रचनाएं, जंगली सूअर, दौड़ता हुआ घोड़ा, कृषि दृश्य, हाथ की छाप, पुष्प–अलंकरण।

प्रस्तावना

मध्य प्रदेश क्षेत्रफल के हिसाब से भारत का दूसरा सबसे बड़ा राज्य है। इसके प्रमुख शहर जबलपुर, ग्वालियर, रीवा और उज्जैन हैं। इस राज्य की सीमाएँ उत्तर प्रदेश को उत्तर–पूर्व में, छत्तीसगढ़ को दक्षिण–पूर्व, दक्षिण में महाराष्ट्र, पश्चिम में गुजरात और उत्तर–पश्चिम में राजस्थान की सीमा को स्पर्श करती है। मध्य प्रदेश के अंतर्गत आन वाला शिवपुरी जिला मध्य प्रदेश के उत्तरी भाग में स्थित है और लगभग 10278 वर्ग किलोमीटर के

* सा. प्राध्यापक, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर,म.प्र.।
** शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला, जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर,म.प्र.।

क्षेत्र में फैला है। इस जिले की सीमाएँ पूर्व में जिला दतिया और पश्चिम में राजस्थान दक्षिण में अशोकनगर दक्षिण–पश्चिम में गुना और उत्तर दिशा में ग्वालियर जिले को स्पर्श करती हैं। शिवपुरी जिले को 9 तहसीलों और 8 ब्लॉकों में विभाजित किया गया है।[1] प्रशासकीय कार्यकलापों की दृष्टि से शिवपुरी को अब नौ तहसीलों में बांटा गया है, जिनके नाम इस प्रकार हैं। ***1-कोलारस, 2-पोहरी, 3-शिवपुरी, 4-करैरा, 5-नरवर, 6-पिछोर, 7-खनियाधाना, 8-बदरवास 9-बैराड,*** जिनमें बैराड तहसील को अभी जोड़ा गया है।[2]

शैल चित्रकला प्रागैतिहासिक मानव की गतिविधियों और उसकी सांस्कृतिक की अभिव्यक्ति है। जो आज भी हमारे जीवन में अनिवार्य रूप से मौजूद है। शैलचित्र कला मानव जाति के सबसे प्रामाणिक रिकॉर्ड माने जाते है, यह मानव जीवन के क्रमिक विकास का एक व्यापक खाता माने जाते है,[3] जब मानव ने जीवन के निर्वाह के लिए भोजन इकट्ठा करने के लिए शिकार करना प्रारंभ किया था। क्योकि मानव एक सामाजिक प्राणी है और वह सामाज के साथ–साथ अपने व्यक्तिगत हितों की जरूरतों को भी पूरा करता है।

भारत में प्रागैतिहासिक चित्रों की खोज का श्रेय दो अंग्रेजो **अर्चिबाइल्ड कार्लाइल** और **जॉन कॉकबर्न** को जता है जिन्होने मिर्जापुर के पास कैमूर की पहाड़ियों में, जो विंध्य क्षेत्र में आता है, एक गैंडे के आखेट के चित्र को खोजा था।[4] वर्ष 1867 में '**आर्किबाल्ड कार्लाइल**' जो की भारत में **आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया** में एक अंग्रेज अधिकारी थे, इनहोने मिर्जापुर जिले में जोकि विंध्य क्षेत्र के अंतर्गत आता है, यहाँ के **'सोहागीघाट'** के पास कुछ शैलाश्रयों की दीवारों पर चित्रों को देखा था। लेकिन वर्ष 1906 में **विन्सेंट स्मिथ** ने कार्लाइल के एक दोस्त **आर.गैटी,** से उनके फील्ड नोट्स को इकट्ठा करके इस जानकारी को **'इंडियन एंटिकुटी'** में प्रकाशित कराया।[5]

जॉन कॉकबर्न ब्रिटिश सरकार के अफीम विभाग के एक अधिकारी के तौर पर कार्यरत थे। इन्होने चित्रित शैलश्रयों पर अपना पहला लेख वर्ष 1883 में प्रकाशित किया था इसके पश्चात कार्लाइल और कॉकबर्न ने वर्ष 1899 में भारत की रॉक आर्ट पर अपना दूसरा लेख प्रकाशित किया।[6] भारत में शैलचित्र कला के क्षेत्र में अनेक ब्रिटिश पुरातत्वेत्ताओं जैसे **फ्रैंके, सी.ए सिलबरैंड, सी.डब्ल्यू एंडरसन** और **पर्सी ब्राउन** द्वारा अध्ययन शुरू किया गया था, और बाद में इन प्रयासों को आगे जारी रखा था।[7] शिवपुरी जिले के विभिन्न क्षेत्रों से प्रागैतिहासिक चित्रकला के अनेक प्रमाण मिले हैं। जिनका शोधात्मक अध्ययन कर उनका वर्णन इस शोध पत्र में किया गया है।

शोध के उद्देश्य

मेरे शोधपत्र का उद्देश्य शिवपुरी जिले के प्रागैतिहासिक चित्रित शैलाश्रयों और उनमें निर्मित विभिन्न काल के चित्रों पर प्रकाश डालना है। शिवपुरी जिले में शोध सर्वेक्षण के दौरान अनेक ऐसे प्रागैतिहासिक कालीन स्थल देखे गये हैं, जहाँ विभिन्न काल खंडों से संबन्धित शैलचित्र मौजूद है, लेकिन इस जिले में मौजूद प्रागैतिहासिक स्थलों जिनमें **शिकारगाह, भदैयाकुण्ड, भूराखोह, विची शैलाश्रय, कालोथरा, इमलिया, चोरपुरा/सुभाषपुरा, मोहनगड़ शैलाश्रय, टुण्डाभरखाखोह,** इत्यादि स्थलों को स्थानीय लोगों की उपेक्षा के चलते अभी उतनी प्रसिद्धि नहीं मिल पायी है, जितनी मिलना चाहिए थी। मेरे शोध का उद्देश्य यही है, कि यहाँ के क्षेत्र में मौजूद प्रागैतिहासिक चित्रित शैलश्रयों को उतनी प्रसिद्धी मिलना चाहिए, जितनी की मध्यप्रदेश के दूसरे अन्य प्रागैतिहासिक स्थलों को मिली है।

चित्रित शैलाश्रय

शिवपुरी ज़िले के अंतर्गत जिन चित्रित शैलश्रयों का अध्ययन किया गया है, उनका वर्णन निम्न प्रकार है।––

शिकारगाह शैलाश्रय

शिवपुरी से लगभग 5 कि.मी. शिवपुरी–झाँसी मार्ग पर मुख्य मार्ग से उत्तर दिशा में 1 कि.मी. अन्दर **'शिकारगाह'** नामक स्थान पर स्थित है। दित्तीय अध्याय में इस स्थल का वर्णन किया गया है। यहां मार्ग से लगभग 50–60 फीट की ऊँचाई पर शैलाश्रय मौजूद है, जहां तक पहुँचने का रास्ता कठिन है। इस पहाड़ी पर तीन शैलाश्रय है। इस स्थान की खोज का श्रेय **जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर** के **"प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला"** को जाता है।[8]

इस क्षेत्र में केवल दो शैलाश्रय देखे गए है, जिनमें से दूसरा शैलाश्रय बड़ा है। यहाँ पर निर्मित चित्रों में अधिकतर चित्र गेरू रंग से निर्मित किए गये हैं। यहाँ पर निर्मित चित्रों में **हिरण, नीलगाय, कुत्ता जंगली भैंसा, जंगली सूअर, पुष्प** के अतिरिक्त कुछ मानव आकृतियां शैलाश्रय के अंदर की चट्टान पर निर्मित हैं। इसके अतिरिक्त कुछ चित्र प्राकृतिक कारणों से धुंधले पड़ चुके है। जबकि कुछ चित्र इस क्षेत्र में रहने वाले स्थानीय लोगों द्वारा शैलाश्रय के अंदर चूना पोत देने के कारण नष्ट हो गये हैं।

भदैयाकुण्ड शैलाश्रय

शिवपुरी के पूर्व में 3 कि.मी. की दूरी पर स्थित **'भदैयाकुण्ड'** नामक स्थान है। यह स्थल का नाम शिवपुरी के प्रमुख पर्यटन स्थल में आता है। इस स्थान पर दो शैलाश्रय है। लेकिन इस शैलश्रयों के चित्र गुजरते समय और प्राकृतिक कारणों से अस्पष्ट हो गए हैं, जबकि कुछ चित्र देख–रेख के अभाव में यहा के स्थानीय लोगों द्वारा नष्ट कर दिये गये हैं।[9] वर्तमान समय में अब यहाँ पर कोई चित्र दिखाई नहीं देते है।

भूराखोह शैलाश्रय

शिवपुरी के उत्तर में लगभग 8 कि.मी. आगरा–मुम्बई राजमार्ग पर मुख्य सड़क से लगभग 1 कि.मी. अंदर घने जंगलों के मध्य **'भूराखोह'** नामक यह स्थान स्थित है। यह स्थान भी शिवपुरी जिले के महत्वपूर्ण पर्यटन स्थलों में से एक है। यहां पर एक चित्रित शैलाश्रय देखा गया है, इस शैलाश्रय को प्रकाश में लाने का श्रेय **जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर** के **प्रा.भा.इ.सं. एवं पुरातत्व अध्ययनशाला** को जाता है।

वर्तमान में शैलाश्रय में एक शिव मंदिर है। इसी शिव मंदिर के अंदर की छत में शैलचित्र चित्रित हैं, जो वर्तमान में दीवारों पर चूना पुता होने के कारण बहुत धुंधले दिखाई देते है। यहां पर चित्रों को निर्मित करने के लिए लाल गेरूए रंग का प्रयोग किया गया है। चित्रों में **जंगली भैंसा, हिरण, मानव आकृतियां** चित्रित है। इन चित्रों को उनके निर्माण शैली के आधार पर **ताम्रपाषाण काल** से संबन्धित, चित्रों के अनुरूप माना जा सकता है।[10]

विची शैलाश्रय

शिवपुरी से पूर्व में 14 कि.मी. शिवपुरी–झांसी मार्ग से दक्षिण में 20 कि.मी. चलने पर विची गाँव स्थित है। इस गाँव के पूर्व में लगभग 150 फीट की ऊँचाई पर यह शैलाश्रय स्थित है। जिसमें अनेक चित्र निर्मित हैं।[11] यहां केवल एक ही शैलाश्रय है, जो काफी विशाल है। शैलाश्रय तक पहुंचने का रास्ता काफी कठिन है। इस शैलाश्रय में अनेक चित्र देखे गये हैं, जोकि लाल गेरूए एवं सफेद रंग से चित्रित किए गये है।

चित्रों में मुख्य रूप में **स्वास्तिक, हाथ की छाप के चिन्ह, जंगली सूअर, चिड़िया, मोर, वानस्पतिक रचना, नाव, नवग्रह वाला चौक, ज्यामितीय रचना, रेखांकित मानव आकृतियां, चौपड़, धार्मिक प्रतीक चिन्ह** तथा कुछ **पुष्प अलंकरण** चित्रित है। इसके अतिरिक्त कुछ स्पष्ट **मानव आकृतियां** है। निर्माण शैली की दृष्टि से यहाँ पर निर्मित चित्र उत्तर पुरापाषाण से लेकर ऐतिहासिक काल तक निर्मित किए गये है।

कलोथरा शैलाश्रय

शिवपुरी के उत्तर में लगभग 40 कि.मी. आगरा–मुम्बई राजमार्ग पर मुख्य सड़क से लगभग 1 कि.मी. पश्चिम दिशा में **'कालोथरा'** के शैलाश्रय स्थित है। यहां पहाड़ी पर केवल एक शैलाश्रय स्थित है, जिसमें चित्रों को निर्मित किया गया है।[12] शैलाश्रय तक पहुंचने का रास्ता काफी कठिन है। इस शैलाश्रय में हमें कुछ चित्र प्राप्त होते हैं, जो लाल गेरूए रंग से बनाये गये हैं। चित्रों में मुख्य रूप से **रेखांकित मानव, चौपड़ (चौसर) जानवर, घर, रेखांकित मानव आकृतियां, वानस्पतिक रचना,** एवं **धार्मिक प्रतीक** प्रमुख है। काल निर्धारण की दृष्टि से इन चित्रों को प्रागैतिहासिक एवं ऐतिहासिक काल में रखा जा सकता है।

इमलिया

वर्ष 2009 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, इमलिया गाँव शिवपुरी जिले के कोलारस तहसील में स्थित है, पदरखेड़ा इमलिया गांव की ग्राम पंचायत है। इस गाँव का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल **103.97** हेक्टेयर है। इमालिया की कुल आबादी **284** लोगों की है। इस गांव में लगभग 55 घर हैं। **'इमलिया'** गाँव के पास एक चित्रित शैलाश्रय मौजूद है। इस शैलाश्रय में ज्यामितिक आकृतियों का चित्रण अधिक किया गया है। यहाँ **गायों, हिरण** एवं अन्य **जंगली जानवरों** को **'रेखानुकृतियों शैली'** द्वारा चित्रित कर उन्हें रेखाओं द्वारा अलंकृत किया गया है। गायों का चित्रण **'पूरक शैली'** में काले रंग से किया गया है, जबकि मानव आकृतियों के चित्रण में **शहद इकट्ठा करने के दृश्य** का चित्रण देखने को मिलता है।[13]

चोरपुरा/सुभाषपुरा

शिवपुरी के उत्तर में आगरा–मुम्बई राजमार्ग पर लगभग 35 कि.मी. की दूरी पर **'चोरपुरा'** नाम का स्थान है। यहाँ के शैलाश्रय मुख्य मार्ग से ही दिखाई देते है। यहाँ पहाड़ी पर चार चित्रित शैलाश्रय मौजूद है। इस स्थान को प्रकाश में लाने का श्रेय स्वर्गीय **डॉ. व्ही.एस. वाकणकर** को जाता है, जिन्होंने इस स्थान की खोज वर्ष 1954 में की थी।[14] लेकिन वर्तमान में इस स्थान पर कोई भी चित्र प्राप्त नहीं होता है। जिससे लगता है देखरेख के अभाव में अथवा वर्षा के कारण चित्र नष्ट हो गए हैं।

मोहनगड़ शैलाश्रय

शिवपुरी के पूर्व में 14 कि.मी. शिवपुरी–झांसी मार्ग से 14 कि.मी. की पैदल चलने पर **'मोहनगड़'** नाम का गाँव स्थित है। मोहनगढ़ शिवपुरी मुख्यालय से 30 कि०मी० दूर स्थित है, वर्ष 2009 की जनगणना के आंकड़ों के अनुसार, **मोहनगढ़ ग्राम** पंचायत है। इस गाँव का कुल भौगोलिक क्षेत्रफल **792.08** हेक्टेयर है। जबकि यहाँ की कुल जनसंख्या **918** हैं। इस गाँव के पश्चिम दिशा में लगभग 1 कि.मी. की दूरी पर 100 फीट की ऊँचाई पर यह शैलाश्रय स्थित है।

इस शैलाश्रय में हमें अनेक चित्रों को **लाल गेरू** एवं **सफेद रंग** से चित्रित किया गया हैं, जिनमें **पशु** एवं **मानव आकृतियों** का चित्रण देखा जा सकता है।[15] चित्रों में मुख्य रूप से **रेखांकित मानव, चिड़िया, हिरण, युद्ध–दृश्य, ज्यामितिय रचनाएं, जंगली सूअर, दौड़ता हुआ घोड़ा, कृषि दृश्य, हाथ की छाप, पुष्प–अलंकरण** एवं अन्य **धार्मिक प्रती**क है। काल निर्धारण की दृष्टि से इन चित्रों को प्रागैतिहासिक काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक का माना जा सकता है।

टुण्डाभरखाखोह

शिवपुरी के उत्तर में लगभग 6 कि.मी. आगरा–मुम्बई राजमार्ग पर मुख्य सड़क से 10 कि.मी. पश्चिम दिशा की ओर घने जंगलों के मध्य **'टुण्डाभरखाखोह'** नामक स्थान स्थित है। इस स्थान को सर्वप्रथम प्रकाश में

लाने का श्रेय **जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर** के **"प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व अध्ययनशाला"** को जाता है।[16] बाद में इस स्थान का भ्रमण अन्य विद्वानों द्वारा किया गया था, जिनमें **श्री व्ही.एस. वाकणकर** का नाम उल्लेखनीय है।

यहाँ पर निर्मित अधिकतर चित्रों को निर्मित करने के लिए लाल गेरू रंग का प्रयोग किया गया है। जबकि कुछ चित्रों में सफेद रंग का प्रयोग देखने को मिलता है। शैलाश्रय में निर्मित चित्रों के विषय में मुख्य रूप से **शिकार के दृश्य, चिड़िया, मनुष्य, महिला आकृतियाँ, धार्मिक प्रतीक चिन्ह** एवं **जंगली जानवरों के शिकार** के दृश्य महत्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त दैनिक जीवन के चित्र जैसे **नृतक, वाद्ययंत्र, योद्धा, अश्वारोही** आदि के चित्र निर्मित किए गए हैं।

यहाँ पर प्राप्त चित्रों को **जे.पी. जैन** एवं **के.के. चक्रवर्ती** द्वारा **'रॉक आर्ट ऑफ इंडिया'** (स.) में प्रकाशित किया गया था। इसके अतिरिक्त यहाँ पर ब्राह्मी लिपि में एक अभिलेख भी अंकित है, जिसकी तिथि द्वितीय शती ई.पू. की है। सिन्हा के अनुसार इस अभिलेख का पाठ निम्न है– *'भागवतानं. किन्हर खितान कानं तड़ाकनं सयुक्ता'* जबकि भारत के प्रसिद्ध पुरातत्वेता व्ही.एस. वाकणकर के अनुसार इस प्रकार है– *'भागवतानं कीन्ह रखितानं भडाकानं सतभा तिकानं कोसिकी तेनं सिव रखितेन कज*।[17]

यहाँ के अधिकांशतः चित्रों को चित्रित करने में लाल रंग का प्रयोग किया गया है। परन्तु कुछ चित्रों में सफेद रंग का भी प्रयोग किया गया है। शैलाश्रय में मुख्य रूप से **शिकार के दृश्य, चिड़िया, मनुष्य** तथा **स्त्री आकृतियाँ, धार्मिक प्रतीक, जंगली जानवरों के शिकार** के चित्र हैं। इस शैलाश्रय में एक सर्प का चित्र है, जिसे लाल गेरूए रंग से बनाकर उसकी बाहरी रेखा सफेद रंग से बनाई गई है। काल निर्धारण की दृष्टि से यहाँ के चित्र **प्रागैतिहासिक काल** से लेकर **ऐतिहासिक काल** तक का माना जा सकता है।[18]

निष्कर्ष

प्रागैतिहासिक काल में जैसे–जैसे मानव के मस्तिष्क का विकास होता गया, वैसे ही उसके द्वारा निर्मित शैलचित्र कला और प्रयोग में लाये जाने वाले पाषाण उपकरणों के निर्माण एवं उसकी तकनीक का विकास होता गया। शिवपुरी क्षेत्र में रहने वाले मानव के क्रमिक विकास के चरण को यहाँ की शैलचित्र कला में देखा जा सकता है। मानव ने चित्रों को निर्मित करने से पहले शैलश्रयों के अंदर स्थान का चुनाव बहुत सूझ–बूझ से किया है, कुछ चित्रों में उनकी सजावट पर ध्यान न देकर उनके विषय वस्तु पर ध्यान अधिक बल दिया है। यहाँ के प्रमुख चित्रों में मानव समूह नृत्य, हिरण, नीलगाय, युद्ध करते मानव आकृतियों के अतिरिक्त ब्राह्मी लिपि के अभिलेख प्रमुख हैं। दैनिक आवश्यकताओं के अनुसार प्रागैतिहासिक मानव ने शिकार की आवश्यकता अनुसार अलग–अलग प्रकार के उपयोगी उपकरणों का निर्माण किया। कुछ स्थानों की शैलचित्र कला में लघु पाषाण उपकरणों

के प्रयोग एवं दैनिक कृषि कार्य का चित्रण मिलता है। यहाँ के कुछ चित्रों में एक्सरे तकनीक का प्रयोग मिलता है। कुछ चित्रों में मादा पशु के गर्भ में उसके बच्चे से साथ चित्रित किया बनाया है। सुपरिम्पोजीसन चित्रों में निश्चित स्थान पर एक बार चित्र बनाने के बाद पुनः उसी स्थान पर पहले वाले चित्र के ऊपर ही दूसरे चित्र को बनाया है। इस क्षेत्र के चित्रों के अध्ययन से पता चलता है, इस क्षेत्र के लोग अपने समकालीन रहने वाले लोगों से चित्र निर्माण की कला सीखते थे।

संदर्भ :

1. शिवपुरी डिस्ट्रिकट एडमिनिस्ट्रेशन रिपोर्ट 15 जनवरी(2016)के अनुसार पृ–14।
2. अपेक्षित, अरुण (2009)–––––शिवपुरी अतीत से आजतक पृ–14।
3. बी. के. दत्ता, इनटरोडकसन तो इंडियन आर्ट, 1979, कलकत्ता,पृ.–9।
4. प्रधान.एस.(2001)–––––रोक आर्ट इन ओडिसा, नई दिल्ली,पृ–3।
5. गुलाम हुसैन, एस.एम.(2015)–––––रॉक आर्ट हिस्ट्री ऑफ इंडिया एंड इट्स इम्पोर्टेंस इन इंडियन आर्कियोलॉजीरूएन इम्पिरिकल स्टडी,इंटरनेशनल जर्नल ऑफ मैनेजमेंट, टेक्नोलॉजी एंड इंजीनियरिंग खंड–5,अंक–2, दिसंबर, ISSN NO: 2249–7455,पृ.53–55।
6. प्रधान.एस.(2001)–––––वही,पृ–4।
7. वही,––––––––पृ–4।
8. शर्मा,आर.ए,(1996)–––––डाक्यूमेन्टेशन ऑफ राक शैल्टर्स इन ग्वालियर रीजन प्रिहिस्टोरिक आर्ट इन इंडिया (सं.), आर.के. शर्मा, पृ–150।
9. वही,––––––––पृ–150।
10. शर्मा,जितेन्द्र,(1999)–––––ग्वालियर मुरैना एवं शिवपुरी जिलों के शैलाश्रयों का अध्ययन, अप्रकाशित शोध प्रबंध, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर,पृ–95।
11. तेनवार,टीकम(2014)–––––ग्वालियर चम्बल क्षेत्र के पुरास्थलों का सांस्कृतिक अध्ययन,अप्रकाशित शोध प्रबन्ध,पृ–82।
12. जैन,कु.स्वीटी,(2012)–––––पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर शिवपुरी जिले के इतिहास का भौतिक पुर्नर्निमाण; एक ऐतिहासिक अध्ययन'', अप्रकाशित शोध प्रबन्ध, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर, पृ.–235।
13. तेनवार, टीकम(2014)–––––वही,पृ–83।
14. वाकणकर,व्ही.एस(1980)–––––ग्वालियर क्षेत्र के शैलाश्रयीन चित्र,ग्वालियर दर्शन,जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर द्वारा प्रकाशित,पृ. 311–13।
15. जैन,कु.स्वीटी,(2012)–––––वही, पृ.–235।
16. सिन्हा, विजया केशव,(1987)–––––भागवत अभिलेख टुण्डा भरखारखोह,वाकणकर अभिनंदन ग्रंथ, उज्जैन, पृ.92–93।
17. तेनवार, टीकम(2014)–––––वही,पृ–84।
18. सिन्हा,के०के,(1971–72)–––––पुरातत्व भाग–5,पृ–29–33।

***

एतिहासिक दृष्टिकोण से इटावा की शिक्षा, साहित्य, संस्कृति एवं सामाजिक व्यवस्था का अध्ययन

*डॉ. चन्द्रप्रभा**

विश्व की अनेक मानव सभ्यताओं का उदय नदियों के किनारे ही हुआ था। नदियों से मानव जीवन की समस्त आवश्यकताओं की आपूर्ति होती रही। नदी मानव जीवन की रीढ़ रही है। प्राचीन काल में इटावा जिले की उबड़–खाबड़ उपजाऊ भूमि गरम एवं शुष्क जलवायु तीव्र गति से बहने वाली नदियों और उनके किनारे के घने वनों के कारण यहां के निवासियों को सदैव ऐसी प्राकृतिक किन्तु विचित्र सुविधायें प्राप्त रही है, जिनके कारण ये भूखण्ड कन्नौज, पाटिलपुत्र, दिल्ली और आगरा के शासकों के लिये सदैव सिर दर्द रहा और राजनैतिक उथल–पुथल का एक केन्द्र रहा है।

जिले की घार, पचार, पार और प्राकृतिक भू–भाग की रचना से यहां के गौरवशाली और समृद्धि शाली इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है। यहां पर ईटों की बहुलता के कारण इसका नाम इटावा पड़ा। भविष्य पुराण में वर्णन है कि बटेश्वर से लेकर भरेह तक का क्षेत्र 'इष्टपथ' कहलाता था। कहा जाता है कि इष्टपथ आगे चलकर इष्टिकापुरी तथा इटावा के रूप में परिवर्तित हुआ। इटावा की उत्पत्ति संस्कृत के अटवी शब्द से हुई। अटवी का अर्थ 'वन' होता है। अटवी से अटव्या तथा अटव्या के अपभ्रंश के रूप से इटावा का प्रादुर्भाव हुआ होगा। कुछ भी हो इटावा एक प्राचीन एतिहासिक एवं सांस्कृतिक नगर रहा। यहां शैव, जैन, बौद्ध, सनातन, वैदिक, परम्परा के अनेक केन्द्र आज भी विद्यमान है।

मुस्लिम काल में यह भू भाग दिल्ली सुल्तानों की राजनैतिक कठिनाइयों का केन्द्र रहा। अंग्रेजी शासनकाल में सन् 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की अनेक महत्वपूर्ण घटनायें यही हुई। गांधी युग में भी यह प्रदेश अहिंसात्मक आन्दोलन का उत्तर प्रदेश अगुआ रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस प्रदेश का प्रत्येक खेड़ा, खार, टीला एतिहासिक महत्व से भरा पड़ा है।

सामाजिक दृष्टिकोण से जिले में बहने वाली नदियों का महत्व कम नहीं है। यमुना, चम्बल, क्वारी, पहुज, सेंगर नदियों के किनारे ही जिले की प्राथमिक बस्तियां स्थापित है। वैसे तो भारत ऋषियों मुनियों का देश कहा जाता है। ऐसे ही एक ऋषि से जुड़ी कहानी पचनद के इतिहास का बखान करती है। ये दुनिया का इकलौता स्थान है। जहां पांच नदियों का संगम है। पचनद में यमुना, चम्बल, सिंध पहुज, क्वारी नदिया बहती है। यहां के एक तपस्वी ऋषि की कहानी कुछ ऐसी थी कि खुद गोस्वामी तुलसीदास को

* विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र, पंचायत राज राजकीय महिला, स्नातकोत्तर महाविद्यालय, इटावा

उनकी ख्याति के चलते ऋषि की अग्नि परीक्षा लेनी पड़ी थी। मान्यता है कि जब तुलसीदास को प्यास लगी तो उन्होंने किसी को पानी पिलाने के लिये आवाज दी, ऋषि मुचकुंद ने अपने कमंडल से पानी छोड़ा जो कभी खत्म नहीं हुआ और फिर तुलसीदास जी को उनके इस प्रताप को स्वीकार करना पड़ा।

मौजूद है प्रमाण – पचनद के तट पर जालौन जिले की सीमा में बाबा साहब का मन्दिर है वहीं दूसरी तरफ नदियों के उस पार इटावा जिले में कालेश्वर की गढ़िया है। बाबा साहब यानि मुचकुंद महाराज गोस्वामी तुलसीदास के समकालीन थे और इतने सिद्ध संत थे कि स्वयं तुलसीदास भी उनसे मिलने पहुंचे थे इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि वर्तमान में जगम्मनपुर के राज परिवार में तुलसी दास की खड़ाऊ, माला और शंख सुरक्षित है जो किवे मुचकुंद महाराज के पास छोड़ गये थे। मुचकुंद महाराज की गाथा ऐसी मानी जाती है कि वो इतने सिद्ध संत थे कि खुद तुलसीदास को नतमस्तक होना पड़ा था।

प्राचीन काल में इटावा पॉचाल देश का एक अंग था जो स्वतंत्र जनपद था। चम्बल घाटी और यमुना का बीहड़ पूरे विश्व में प्रसिद्ध है। यह उत्तर प्रदेश राज्य के कानपुर मण्डल के अन्तर्गत आता है। क्षेत्रफल की दृष्टि से उत्तर से दक्षिण 70 किलीमीटर की लम्बाई और पूर्व से पश्चिम 66 किलो मीटर लम्बाई है। कुल क्षेत्रफल 2311 किलो मीटर है। इसकी सीमा उत्तर में कन्नौज और मैनपुरी जिला, पश्चिम में आगरा जिला, पूर्व में औरैया जिला से सीमा मिलती है।

प्राकृतिक संरचना की दृष्टि से इटावा चार भू–भागों में विभाजित किया गया है।

1. पचार–सेंगर नदी के उत्तर से फर्रुखाबाद जनपद की सीमा।
2. घार–दक्षिणी पूर्वी क्षेत्र में इटावा की तहसील का कुछ भाग भरथना और औरैया तहसील का कुछ भाग।
3. कारका–दक्षिणी हिस्सा इटावा–भरथना–औरैया का कुछ हिस्सा सेंगर और यमुना की बीच।
4. पारपट्टी–जनपद में दक्षिणी हिस्से में यमुना नदी से लेकर मध्य प्रदेश की सीमा तक तथा आगरा से जालौन की सीमा तक, यमुना चम्बल के किनारे वाले भू–भाग को पारपट्टी नाम से जाना जाता है।

लोक परम्परा एवं जनश्रुतियों के अनुसार इटावा एक पौराणिक जनपद है उपनिषद युग में ऋषियों, महाभारत कालीन कथाओं, बौद्धयुगीन स्मारकों, मुगलकालीन अवशेषों एवं ब्रिटिश कालीन प्रतीको तथा स्वतंत्रता संग्राम के योद्धाओं की कहानियों समेत इटावा की अपनी अलग पहचान है। पौराणिक काल से आधुनिक काल तक इटावा के संदर्भ में बिखरे सूत्र मिलते है उन्हें जोड़ने की चेष्टा कठिन भले लगती हो किन्तु उससे एक बात सिद्ध होती है कि इटावा एक नगर ही नहीं अपितु सभ्यता भी है।

शिक्षा एवं संस्कृति – शिक्षा और संस्कृति की दृष्टि से इटावा का अपना पुरातन इतिहास है। उपनिषद युग में महर्षि धौम्य का आश्रम इटावा में ही स्थित था जहां उनके शिष्यों अरूणी और उपमन्यु ने ज्ञान की सर्वोच्च साधना की। इटावा नगर के दक्षिणी सीमा पर यमुना के किनारे स्थित महर्षि धौम्य का आश्रम धूमनपुरा गांव के नाम से आज भी विद्धमान है जहां का कण–कण तथा ढलान भरी भूमि का प्रत्येक भाग यह कहानी दुहराता है यहां के खेत की मेढ़ टूट जाये तो वहां पर लेट कर भी बचाया जा सकता है। महाकवि गंग का गांव इकनौर आज भी इटावा की समृद्ध साहित्यिक परम्परा का साक्षी है। जनपद की पूर्वोत्तर सीमा का अंतिम गांव क्योंटरा विद्धता और धर्म साधना की दृष्टि से (छोटी काशी) कहा जाता रहा है। यहां ज्योतिष, व्याकरण, और साहित्य के अनेक विद्धान हुये है। इटावा नगर में भी यमुना किनारे स्थित 'श्री विद्यापीठ' देश के पांच प्राचीनतम पुस्तकालयों में से एक है। उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशक में इस पुस्तकालय के पास अपने निजी मोटर वाहन थे जिन पर सचल पुस्तकालयों का संचालन किया जाता था। यह स्थान आज भी इतना सिद्ध माना जाता है कि यमुनोत्तरी से लेकर प्रयाग तक केवल इटावा में ही यमुना उत्तर–दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चारों दिशाओं में प्रवाहित होती है।

उत्तर प्रदेश में शिक्षा के विकास तथा प्रभाव क्षेत्र की सघनता की दृष्टि से इटावा 'ए' श्रेणी का जिला माना जाता है। यमुना पार स्थित पार पट्टी को छोड़कर सम्पूर्ण जनपद में माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के अनेक केन्द्र है। ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग प्रत्येक ग्राम सभा में प्राथमिक पाठ्शालाये शासन की ओर से स्थापित की गयी है। प्रत्येक न्याय पंचायत स्तर पर शासकीय एवं व्यक्तिगत प्रबंध तंत्र के प्रयास से जूनियर हाईस्कूल विद्यालय खोले गये। जिले में उच्च शिक्षा के लिए कई संस्थान संचालित है।

सामाजिक व्यवस्था – अगर हम बात करे कि सामाजिक व्यवस्था कैसी थी तो उस समय बिरादरी पंचायतें, न्याय पंचायतें हुआ करती थी। ये पंचायते प्रायः दलितों और पिछड़े वर्ग के लोगों में थी। इन बिरादरी पंचायतों में उन मामलों का निर्णय होता था, जो पापाचार या दुराचार से संबंधित होते थे। वे बिरादरी के बड़े बूढ़े लोग विशेष अवसरों पर एकत्रित होते थे और अपनी बिरादरी के निर्णय किया करते थे। इन्हीं पंचों में स्व. श्री मनीराम एवं स्व. श्री मुंशीलाल थे जो अपनी न्याय प्रियता के लिये दूर–दूर तक जाने जाते थे। दूर–दूर प्रसिद्धि का कारण यही था कि पंचायत भले ही कई दिन तक चले परन्तु किसी के प्रति अन्याय की कोई संभावना नहीं रहती थी। दूर–दूर तक बिरादरी के चौधरी एकत्रित होकर मामलों का निपटारा करते थे।

जिले में कई जातियों की संख्या बहुत है जिसमें जाटव, ब्राह्मण, यादव, शाक्य, राजपूत, ठाकुर है। राजनीति के कारण जहां एक तरफ छुआछूत और भेदभाव जैसी बीमारी दूर हो रही है। वही पर जात–पात को बढ़ावा मिल रहा है। सामाजिक जीवन में बहुत सारी रूढ़ियां धीरे–धीरे

समाप्त हो रही है। इटावा में जनसंख्या की दृष्टि से देखा जाये तो सभी जातियों एवं प्रजातियों का केन्द्र होने के कारण लघु भारत प्रतीत होता है।

साधारण रूप से प्रत्येक घर में दिन में दो बार भोजन करने की प्रथा थी। दोपहर का भोजन 12 बजे से लेकर 2 बजे तक किया जाता था उसे दुपरिया कहते थे। सांयकालीन या रात्रि का भोजन यालू कहा जाता था जो शाम को सात बजे से 9 बजे रात के मध्य हो जाता था।

कलेऊ (प्रातराश) साधन सम्पन्न लोग तथा मजदूर लोग प्रातः 8 बजे कलेऊ किया करते थे। कलेऊ में सत्तू, अथवा लड्डू के साथ मट्ठा से किया जाता था। कभी–कभी कलेऊ में उबले हुये चने, रौसा, बाजरा या ज्वार होता था।

अटूट अस्थाओं और गहरे भाव भूमि से जुड़े इस जिले में अनेक देवी देवताओं और स्थानीय देवताओं में मान्यता है। गांव–गांव में हीरामन और पारस देव के स्थान है। हरदौल भी स्थापना कई स्थानों पर की जाती है। शरद और चैत्र की नवरात्रि में जवारे बोये जाते है तथा नवमी के दिन शक्ति की आराधना की जाती है। आंख मिचौली, गुल्ली डंड़ा, मगरटला, कबड्डी, गोली अता, पतंगबाजी चौपड़ और शतरंज के खेल यहां पर आज भी मनोरंजन के साधन है।

अगर बोलियो की बात की जाये तो बृजभाषा, कन्नौजी, बैसवाडी, बुंदेली ग्वालियरी और भदावरी प्रमुख बोलियां है। लोक गीत एवं लोक नृत्य में मुख्य रूप से आल्हा फाग, कजरी रसिया, ढोला, अचरी, लगुरियां भजन, कीतर्न, नौटंकी, ड्रामा तथा धमगजरा नृत्य प्रसिद्ध है।

साहित्य–साहित्य के क्षेत्र में इटावा जनपद काफी समृद्ध रहा है। मुगल काल के कवि गंग इटावा के प्रसिद्ध कवि हुये जिनकी जन्म स्थली प्राचीन इकनौर नगरी है। हिन्दी भाषा के जिला इटावा के प्रथम कवि के रूप में आप हिन्दी सागर के नव रत्नों में से एक हुये है। गंग अकबर बादशाह के दरबारी कवि थे। इनका जन्म संवत 1495 में हुआ था।

गंग का प्रमाणिक छंद की एक छलक

प्रथम विधाता ते प्रकट भये बंदी जन
पुनि प्रभु यज्ञ ते प्रकाश सरसात है।
भाने सूत शौनकन सुनत पुराण यह
यश को बखानु महासुख सरसात है।
चन्द्र चौहान केदार गौरी शाह जू के,
गंग अगवर के बखाने गुणगात है।
काग कैसे मास अज नास धन भरत को
लूटि धरै ताको खरा खोज मिट जात है।

इटावा के अन्य कवियों में कविदेव भीमसेन शर्मा, शिशुपाल सिंह शिशु प्रमुख है।

इटावा जनपद की बात हो और पुरबिया टोला का नाम न हो तो इटावा की बातें अधूरी सी रह जाती है। पुरबिया टोला इटावा की एक ऐसी जगह है जिस जगह से सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक क्षेत्र के पुरोधाओं ने अपनी धाक जनपद तक ही नहीं बल्कि पूरे भारत में रही है।

निष्कर्ष के रूप में कह सकते है कि सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक दृष्टिकोण से इटावा जनपद समृद्धशाली रहा है। सामाजिक रूप से सुदृढ़ सामाजिक व्यवस्था ने इटावा को हमेशा जातिगत हिंसा से दूर रखा है। इतिहास के पन्नों में इटावा जनपद धार्मिक रूप से, सामाजिक रूप से, राजनैतिक रूप से सुदृढ़ रहा है। पचनदे के रूप में महापवित्र स्थल भी इटावा जनपद में ही है। पूरे विश्व में यही एक ऐसा स्थान है जहां पांच नदियां एक स्थान पर मिलती है। साहित्य के क्षेत्र में इटावा जनपद का खास योगदान रहा है। यहां से अनेक कवि हुये है जिन्होंने अपना परचम केवल जनपद तक ही सीमित नहीं रखा बल्कि इनका परचम देश के साथ–साथ विश्व में भी रहा है।

संदर्भ :

1. कृपा नारायण पाठक, 2014 रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, इटावा। पृ0सं0 1
2. https://www.abplive.com/states/up-uk/know-where-is-the-confluence-of-five-rivers-in-the-world-why-this-place-is-called-maha-tirthraj-jalaun-utter-pradesh-ann-1942171
3. कृपा नारायण पाठक, 2014 रामप्रसाद एण्ड ब्रदर्स, इटावा। पृ0सं0 1
4. यथा, पृ0 135
5. यथा, पृ0 191
6. https://etawahnewslive.in/geographical-location-of-etawah/
7. https://etawahnewslive.in/etawah-culture-education-literature/
8. https://etawahnewslive.in/etawah-ka-itihas/

***

ललित नारायण मिश्र : एक सच्चे समाजवादी

*वीणा कुमारी**

व्यक्ति समाज में अकेला भी बहुत कुछ करता है। वह प्रकाश स्तम्भ बनकर कितने ही भटकों सही को सही राह दिखलाता है। उसकी सेवा और सत्यनिष्ठा जनता में एक अद्‌भूत कार्य–दक्षता भर देती है। फलतः वह व्यक्ति, व्यक्ति न रहकर समष्टि बन जाता है। पूरा लोक उसके व्यक्तित्व में समाहित हो जाता है। ऐसे ही व्यक्तित्व के धनी थे पं॰ ललित नारायण मिश्र। ललित नारायण मिश्र छात्र–जीवन से ही राष्ट्र–प्रेम और देश सेवा के ब्रती थे। वे एक सच्चे समाजिवादी थे। वे अपने सिद्धान्तों का बड़ी दृढ़ता से पालन करते थे। अर्थशास्त्र का विद्यार्थी होने के कारण उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं की गम्भीरता को समझा था और समाजवादी ढंग से उन्हें सुलझाने का रास्ता भी उन्हें भाया था।

मुख्य शब्द :– समाजवादी, अर्थव्यवस्था, आधारभूत, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र ।

परिचय :

पूर्व रेल मंत्री स्व॰ ललित नारायण मिश्र का जन्म मिथिला के कोशी क्षेत्र के एक सुख–सम्पन्न परिवार में माघ शुक्ल पक्ष वसंत पंचमी के दिन 02 फरवरी, 1922 ई॰ को हुआ था। पीड़ित मानवता की सेवा–भावना एवं जन–नेतृत्व की चिंगारी उन्हें पारिवारिक धरोहर के रूप में मिली। बाल्यकाल से ही बिहार के शोक के रूप में प्रसिद्ध कोशी नदी की विभीषिका, कोशी की अनियंत्रित एवं तीक्ष्ण धाराओं से भीषण बर्बादी, जान–माल की क्षति, महामारी, परिवहन संरचना के क्षरण को उन्होंने देखा था। कोशी की विनाशलीला के साथ साक्षात्कार के फलस्वरूप स्व॰ मिश्र के अवचेतन मन में सम्पूर्ण कोशी क्षेत्र का कायापलट करने एवं सर्वत्र विकास की गंगा बहा देने का संकल्प गहराई से अपनी जड़ें जमा चुका था। कोशी परियोजना, अल्प समय में ही बिहार में रेल लाइनों का जाल बिछाने की ओर रेल लाइनों के दोहरीकरण की योजना और उसका व्यापक क्रियान्वयन, फरक्का रेल–पुल, कलकत्ता में मेट्रो रेल लाइन के निर्माण का शुभारंभ, दरभंगा में मिथिला विश्वविद्यालय, आकाशवाणी केन्द्र, मधुबनी चित्रकला को अन्तरराष्ट्रीय बाजार में प्रतिष्ठित करने का कार्य ललित नारायण मिश्र के संकल्प–शक्ति के साक्षी हैं। ललित नारायण मिश्र ने स्वतंत्र भारत की लोकसभा में तत्कालीन केन्द्र सरकार का ध्यान कोशी क्षेत्र की समस्याओ के निराकरण के लिए काफी सक्रियता और तत्परता से दिलाया, जिसके कारण लोकसभा में उनका नामकरण 'कोशी मिश्र' हो गया था।[1] उन्होंने तत्कालीन प्रधानमंत्री पं॰ जवाहर लाल नेहरू के साथ कोशी क्षेत्र का सर्वेक्षण करके तत्कालीन नेपाल

* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

नरेश महेन्द्र विक्रम शाहदेव के साथ महत्वाकांक्षी कोशी योजना की रूप–रेखा तैयार की। वर्तमान कोशी परियोजना उनके भागीरथ प्रयासों का मूर्त रूप है। रेल मंत्री के रूप में उनकी सोच थी कि जहां रेल लाइने जायेगी, वहां विकास की गति तेज होगी। द्रुतगामी आर्थिक–औद्योगिक विकास के लिए उन्होंने यातायात, संचार, परिवहन व्यवस्था की संरचना को विकसित करने पर सर्वाधिक बल दिया। उनके रेल मंत्रीत्व काल में बिहार में रेल लाइनों का जाल बिछाने की योजनाओं का सर्वेक्षण, सूत्रपात एवं क्रियान्वयन चरमोत्कर्ष पर था जो वर्तमान एवं भविष्य में रेल मंत्रालय के लिए प्रकाश–स्तंभ है। सहरसा–दरभंगा को सड़क से जोड़ने की उनकी परिकल्पना अभी तक अधूरी है। ललित ललित नारायण मिश्र के चुम्ककीय, तूफानी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनकी योजनानुसार कठिन से कठिन कार्य त्वरित गति से निष्पादन करने की क्षमता थी। सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों की गरीबी, पिछड़ापन को दूर करने के लिए उन्होंने आजीवन अनवरत संघर्ष किया। उन्होंने कभी भी विश्रांति की आवश्यकता महसूस नहीं की। सदैव स्फूर्तिवान ललित नारायण मिश्र ऊर्जा, ताजगी के अक्षय स्रोत थे। उन्होंने अपने सार्वजनिक जीवन में सतत् लोक कल्याणकारी कार्यक्रमों को दृढ़तापूर्वक कार्यान्वित किया और जनता ने भी उन्हें अपना विपुल स्नेह और समर्थन दिया। अल्प समय में ही असंख्य विकास–कार्यों का सूत्रपात एवं संचालन करते हुए उनके व्यक्तित्व ने एक विराट लोक आंदोलन का मूर्त रूप अंगीकृत कर लिया था। ललित नारायण मिश्र का व्यक्तित्व–कृतित्व उनके पद से सदैव सर्वोपरि रहा। उनका आदर्श दानवीर कर्ण का आदर्श था। प्रतिदिन सैकड़ों लोगों की शिकायतें–समस्याओं पर अविलम्ब ठोस सकारात्मक कार्रवाई करने की उनमें विलक्षण क्षमता थी। सांप्रदायिकता–जातीयता से ऊपर पूरी मानवता की सेवा ही उनका समग्र, सम्पूर्ण जीवन–दर्शन था। अपने कट्टर से कट्टर विरोधियों एवं कटु आलोचकों की मदद भी उन्होंने मुक्त–हृदय से की। ललित बाबू ने अपने युग में राष्ट्रीय सत्ता–तंत्र में जिस बुलन्दी और शान से बिहार की ताकत का एहसास कराकर बिहार को महिमामंडित किया, उसकी पुनरावृत्ति वर्तमान एवं निकट भविष्य में संभव नहीं है। वह जिस विभाग के भी प्रभारी रहे, मंत्री रहे, केन्द्र एवं राज्य सरकारों के शासन–तंत्र के केन्द्र बिन्दु बने रहे। ललित नारायण मिश्र को अपनी जन्मभूमि की मिट्टी की सोंधी महक एवं समा से अद्‌भुत लगाव था। अति व्यस्त कार्यक्रम से समय निकालकर वह सदैव अपनी जन्मभूमि की सेवा के लिए प्रस्तुत रहते थे। वह भारतीय कला, संस्कृति, धर्म के महान पोषक थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में भारत–नेपाल में स्थित अनेक प्राचीन मंदिरों का पुनरुद्धार कराया।[2]

ललित नारायण मिश्र एक सच्चे समाजसेवी थे। वे अपने सिद्धांतों का बड़ी दृढ़ता से पालन करते थे। अर्थशास्त्र का विद्यार्थी होने के कारण उन्होंने भारतीय अर्थव्यवस्था की समस्याओं की गम्भीरता को समझा था और

समजवादी ढंग से उन्हें सुलझाने का रास्ता ही उन्हें भाया था। 1950 में उन्होंने पटना में पहला बिहार आर्थिक सम्मेलन का आयोजन किया। इसके बाद तो वे कभी पटसन की खेती से सम्बन्धित समस्याओं का हल निकालने में व्यस्त रहे तो कभी खाद्य समस्या को हल करने में। कभी राष्ट्रीय लघु उद्योग सलाहकार समिति में जाकर मजदूरों के हितों की रक्षा करते रहे और कभी कोयला और इस्पात उद्योगों से सम्बन्धित समस्याओं का हल खोजते रहे।[3]

कर्मचारियों के तो वे सच्चे हितैषी थे। वे चाहे श्रम तथा पुनर्वास राज्य मंत्री रहे या केन्द्रीय रक्षा उत्पादन मंत्री, विदेशी व्यापार मंत्री रहे या रेल मंत्री–उन्होंने मजदूरों के हितों को आंखों से ओझल नहीं होने दिया।

ललित नारायण मिश्र सभी क्षेत्रों के समान विकास में विश्वास रखते थे। रेल मंत्राालय का कार्य–भार संभालते ही उन्होंने अविकसित क्षेत्रों में रेल लाइनों के निर्माण के बारे में कहा कि परिवहन सहित आधारभूत विकास सुविधाओं की कमी के कारण ही कुछ क्षेत्र पिछड़े हुए हैं। इसलिए इन क्षेत्रों के विकास के लिए रेल लाइनों का निर्माण बहुत जरूरी है। उन्होंने अनेक पिछड़े क्षेत्रों में नई–नई लाइनों के निर्माण की योजनाएं बनाई और एक ऐसी ही लाइन समस्तीपुर–मुजफ्फरपुर का उद्घाटन करते हुए उन्होंने अपना बलिदान दिया।[4]

ललित नारायण मिश्र कुशल प्रशासक थे। उन्होंने 2 वर्ष से भी कम अवधि के लिए रेल मंत्रालय का कार्यभार संभाल और हड़तालों तथा अन्य उपद्रवों के बावजूद रेल विभाग की वित्तीय स्थिति को संभालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

ललित नारायण मिश्र की प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी की प्रगतिशील, सामाजिक और आर्थिक नीतियों में पूर्ण आस्था थी। वे रेल विभाग को छात्रों और युवकों को विशेष रियायतें देने के लिए कहते थे। उन्होंने शिक्षित बेरोजगारों को स्टेशनों पर बुक स्टाल देने में पहल की।[5]

उनको देश की अखण्डता, धर्मनिरपेक्षता, लोकतंत्र और समाजवाद में अटूट विश्वास था। ललित नारायण मिश्र, हड़ताल तथा आन्दोलनों को देश की अखण्डता और लोकतंत्र के लिए अच्छा नहीं समझते थे। यही कारण है कि उन्होंने इनका सामना बड़ी दृढ़ता से किया। उनका कहना था कि आन्दोलनों और हड़तालों से समस्याएं हल नहीं हो सकती हैं, वरन उन्हें परस्पर सद्भाव और सूझ–बूझ से ही हल किया जाना चाहिए।

वे अपने राष्ट्रीय जीवन में जनता की सेवा से ऊपर कोई चीज नहीं मानते थे। उनका कथन था कि ''जनता की सेवा करते हुए अगर मैं मर भी जाऊं तो भी क्या हर्ज है।'' उन्होंने लालफीताशाही खत्म करने और कर्मचारियों का जन–सेवा करने का सतत आह्वान किया।[6]

राष्ट्रीय नेताओं का जीवन आने वाली पीढ़ी के लिए एक आदर्श का जीवन होता है। इस कसौटी पर ललित नारायण मिश्र का जीवन खरा

उतरता है। वे जितने मधुर–भाषी थे उतने ही अधिक उदार और कोमल हृदय थे। वे इन्सानियत और सादगी के प्रतीक थे।[7]

निष्कर्ष :

निःसन्देह ललित नारायण मिश्र का सारा जीवन जनता की सेवा में समर्पित था। उन्होंने अपने छाल जीवन से ही देश और कांग्रेस के प्रति निष्ठा रखते हुए समाजवादी सोच में लगे रहे। बाद में वे संसद में आए और कई मंत्रालयों में प्रशासक के रूप में सराहनीय कार्य किया तथा संस्था और शासन का ठोस काम आखिर दिनों तक करते रहे।

3 जनवरी, 1975 को समस्तीपुर में बम विस्फोट में ललित नारायण मिश्र की शहादत व्यर्थ नहीं जा सकती है। उनके द्वारा कर्तव्य पालन के लिए स्थापित ऊंचे मापदंड, उनकी विराट मानवता की निःस्वार्थ सेवा–भावना एवं उनके द्वारा प्रज्वलित आर्थिक–औद्योगिक प्रगति के प्रति प्रतिबद्ध नेतृत्व–शक्ति की मशाल युग–युगान्तर तक विकास के पथ को प्रशस्त–आलोकित करती रहेगी।

सन्दर्भ :

1. प्रमील कुमार मिश्र; 'ललित नारायण मिश्र : एक प्रेरक व्यक्तित्व'' हिन्दुस्तान, 3 जनवरी, 1998
2. वही
3. चौधरी वंशी लाल; ललित नारायण मिश्र : एक सच्चे समाजवादी, (जगन्नाथ मिश्र (सं॰) स्मृति पुष्पांजली) पटना, 1997, पृ॰ 111
4. वही, पृ॰ 112
5. मदनेश्वर मिश्र; मिथिलाक विभूति : ललित नारायण मिश्र, पटना, 1983, पृ॰ 45
6. वही
7. उपेन्द्र ठाकुर एवं युगल किशोर मिश्र (सं॰); द हेरीटेज ऑफ इंडिया, तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी का 12 सितम्बर 1975 को भेजे संदेश में उद्धृत, एल॰ एन॰ मिश्रा कमोमरेशन भॉलुम, बोधगया, 1975

***